आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा

अर्थात्

सब रोगों की हानि रहित अचूक चिकित्सा विधि

लेखक

डा० फुन्दनलाल अग्निहोत्री, एम० डी०,

डी० एस०, ई० एम० आर० ए० एस० (लन्दन)

सरकार से पुरस्कार तथा क्षय चिकित्सा में ख्याति प्राप्त

यज्ञ चिकित्सा और शिक्षा विभाग से स्वीकृत

आरोग्य शास्त्र आदि पुस्तकों के रचयिता,

भू० पू० चीफ़ मेडिकल आफिसर

टी० बी० सेनेटोरियम

जबलपुर !

प्रकाशक:

ग्राम उद्योग ट्रस्ट, कानपुर

[प्रथम बार] १९५५ [मूल्य ७/-]

आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा

भाग १

विचार-खण्ड

डा० फुन्दनलाल अग्निहोत्री

पुस्तक के रचयिता

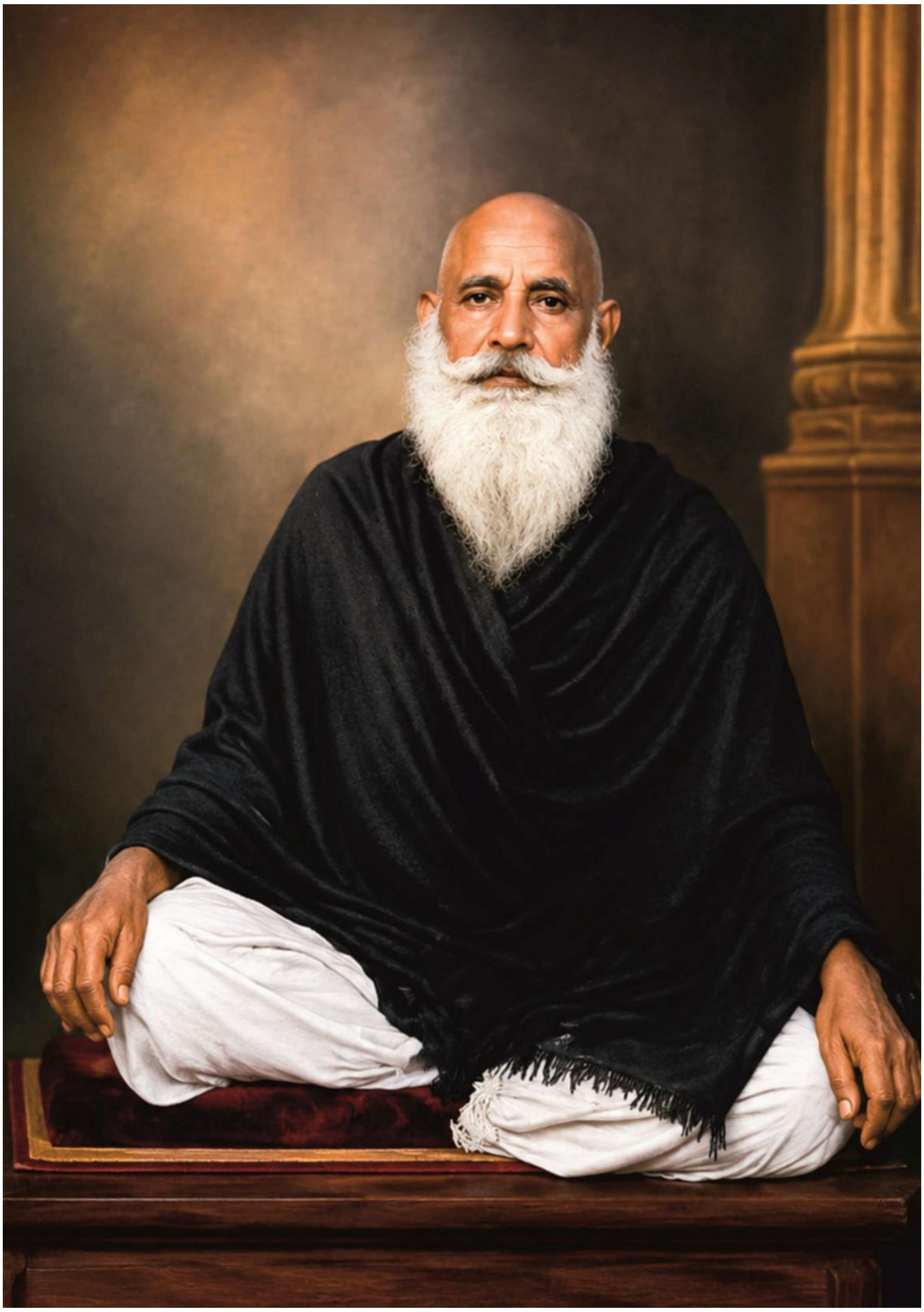

डा० फुन्दनलाल अग्निहोत्री एम० डी०,

डी० एस०, एल० एम० आर० ए० एस० (लन्दन)

प्रकाशकः–

ग्राम उद्योग ट्रस्ट, कानपुर

मुद्रकः–

उपासना प्रेस, कानपुर

— भूमिका —

इतिहास साक्षी है कि सब ही प्रचलित चिकित्सा विधियों का जन्मदाता आयुर्वेद है और सब ही विधियों के ज्ञाता पूर्ण ज्ञानी का नाम वैद्य, चिकित्सक अथवा डाक्टर है। वही इस भेद को समझाता है कि देश, काल, रोग और रोगी की अवस्था को दृष्टि में रखकर किस विधि का प्रयोग हितकर और किसका हानिकारक है। केवल धन कमाने के विचार से दवा बेचना और केवल हल्दी की गांठ रखकर पंसारी बनने का अभिमान करने के सदृश किसी एक विधि का थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर हर स्थान और हर प्रकृति में रोगों पर एक ही चिकित्सा विधि का प्रयोग कराते रहना और दूसरी सब विधियों का विरोध करना मनुष्य धर्म के विरुद्ध है।

अपने 50 वर्ष के अनुभव से देश की वर्तमान परिस्थिति में मैंने चिकित्सा के जिन साधनों को अब तक उपयोगी समझा है, उनमें से कुछ का उल्लेख इस पुस्तक में किया है। यह केवल दिग्दर्शन मात्र है। एक मनुष्य की शक्ति ही क्या। हाँ आशा है कि वेद, आयुर्वेद तथा देश के सच्चे हितैषी विद्वान मेरे इस काम को पूर्ण करेंगे। फिर भी इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है वह शास्त्र अनुभव और प्राकृतिक नियमों के आधार पर है। अतः शत प्रतिशत उपयोगी है और इश्तहारी पेटेन्ट औषधियों की भांति इन साधनों से कभी हानि का भय नहीं। जो सज्जन नमूना देखना चाहें वे केवल उपवास व वस्ती कर्म की परीक्षा करके ही इस प्राकृतिक विधि पर मुग्ध हो सकते हैं।

पुस्तक लिखने में जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, मैं उनका आभारी हूँ। पुत्री वीरवाला व विनोद वाला तथा पुत्र रवीन्द्र कुमार ने लिखाई में बहुत सहायता दी; मैं उनको आशीर्वाद देता हूँ तथा श्रीराम स्वरूप जी गुप्त एम०ए०,एम०एल०ए० संचालक ग्राम उद्योग ट्रस्ट पुखरायां ने पुस्तक प्रकाशित करने का भार लिया तथा श्री श्याम लाल जी गुप्त ने प्रूफ देखा, उनका भी मैं कृतज्ञ हूँ।

शुभ चिन्तक —

डा० अग्निहोत्री, प्रेमनगर बरेली

भारतीय लोकसभा के अध्यक्ष
श्री गणेश वासुदेव मावलंकर जी लिखित

आमुख

संसार में हर एक मानव सुख और शान्ति चाहता है। उसके लिये ही जीवन में सब काल इच्छा रखते हुए भी योग्य राह पर प्रयत्नशील न होने के कारण सुख और शान्ति तथा पूर्ण आयु प्राप्त नहीं होती। कितने ही मानव अल्प आयु होते हैं। शास्त्रकारों ने जो आयु की मर्यादा 125 वर्ष लिखी है और 100 वर्ष के बारे में "जीवेम शरदः शतम्" यह वाक्य सबका विज्ञान है।

पूरे 125 या 100 वर्ष जीवित रहने के लिये शरीर की रक्षा इसका पोषण और इसका स्वास्थ्य ठीक ढंग से होना चाहिये। आश्चर्य की बात यह है कि मनुष्य आयु की और अर्थ सम्पादन की ऊँची आकांक्षा रखता है किन्तु शरीर-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने का बहुत कम प्रयत्न करता है। इस प्रकार स्वास्थ्य के बारे में भी सामान्य तो क्या पढ़े लिखे गिने जाने वाले लोग भी इतना अल्पांश जानते हैं कि वे कुछ भी नहीं जानते हैं ऐसा कहने में अतिशयोक्ति न होगी। जो बात जीवन में बुनियादी है जिसके ठीक न होने पर जीवन का ही अन्त हो जाता है, ऐसी बात के बारे में – शरीर स्वास्थ्य के बारे में – अज्ञान छाया हुआ है। "शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्" यह युक्ति सब लोग जानते हैं; तब भी शरीर का और शरीर स्वास्थ्य की रीति रस्म जान लेने की कोई कोशिश नहीं करता यह बात आश्चर्य और दुःख की है।

जहां तक शरीर से काम ले सकते हैं वहां तक उसकी सामान्य बनावट क्या है उसका स्वास्थ्य किस प्रकार का है, उससे कितना काम लेना चाहिये, उसको कितना और किस प्रकार का आराम देना चाहिये, उसका विचार भी मन में नहीं आता है।

एक सामान्य निर्जीव यंत्र को जब काम में लाते हैं तब यंत्र की सफाई और यंत्र के सब भाग अच्छे रहें उसके लिये उस पर तेल लगाना इत्यादि सब देखते

हैं किन्तु मानव जीवन सफल करने के लिये ईश्वर ने जो देह रूपी इतना सुन्दर यंत्र दिया है इसके बारे में बिल्कुल लापरवाह रहते हैं।

योग्य आहार और विहार के अभाव से कुछ समय बाद शरीर में कुछ निर्बलता आती है। तब भी निर्बलता रूपी चेतावनी की हम अवगणना करते हैं और जब शरीर बिल्कुल निर्बल होता है तब शरीर के लिये कुछ प्रयत्नशील होते हैं और आखिर में अल्पायुशी ही होकर दुनिया छोड़ कर चले जाते हैं।

यदि प्रारम्भ से ही कुछ प्रयत्न होता है तब भी रोग का मूल कारण क्या है यह समझने की हम कोशिश नहीं करते हैं। डाक्टर या वैद्य हकीमों की दवाइयों से संतोष लेकर पर्याप्त प्रयत्न किया ऐसा हम मान लेते हैं। शरीर की सामान्य और उसके स्वभाव, धर्म के बारे में जो अज्ञान है इसी कारण हम ऐसा समझते हैं कि शरीर में चाहे जितनी खराबी हो तब भी दवाइयों से यह सब दूर हो सकती है और केवल दवाइयों के ऊपर श्रद्धा और आधार रखते हैं और जब बीमारी बढ़ती जाती है और मृत्युवश होते हैं तब इस घटना का बोझ ईश्वर पर डाल देते हैं।

कुदरत की रीति से यदि मनुष्य जीवन व्यतीत करे तब कुदरत ही स्वास्थ्य की रक्षा करने में मदद कर सकेगी और कुदरत की ही मदद से बीमारी मिट जावेगी न कि दवाइयों से। यह बात बहुतेरे लोगों की समझ में आ नहीं पाई है। इसलिये डाक्टरों वैद्यों हकीमों की समाज को जरूरत मालूम पड़ती है और उनके लिये काम भी ठीक ठीक परिमाण में होता है। जिस परिमाण में हमारे जीवन अद्यतन शास्त्रीय शब्दों से परिवर्तन हुआ है, जिस परिमाण में हम शहरों में बहुत विरोधी खान-पान-सहन इत्यादि में बढ़ते जाते हैं, उसी परिमाण में ही अनेक रोगों रोगों की बढ़ती होती है और आयु मर्यादा कम हो जाती है। पुराने जमाने के इतिहास में जब कहा है कि मनुष्य 125 वर्ष तक जिन्दा रहता था तब हम उसको अतिशयोक्ति मान लेते हैं। वयोवृद्ध वैदिक विद्वान पं० श्री. द. सातवलेकर जी ने एक बातचीत में कहा कि जब श्रीकृष्ण भगवान का निर्वाण हुआ तब उनकी आयु 120 वर्ष की थी और उनके पिता थे तो उनकी आयु 150 वर्ष की होनी चाहिये। यह कथन उन्होंने मेरे साथ की बातचीत में कहा। मुझसे पूछा – आपका

स्वास्थ्य कैसा है? मैंने कहा कि मेरी उम्र के परिमाण से ठीक है। उन्होंने मेरी आयु पूछी। 67 वर्ष बताने पर वह बोले कि 67 वर्ष की आयु तो महाभारत के काल में जवानी की गिनी जाती थी। इसी पर श्रीकृष्ण भगवान की बात कह कर वे आगे बोले कि दुख की बात यह है कि आयु बढ़ाने के लिये और स्वास्थ्य रखने के लिये हमारे आचार बर्ताव किस प्रकार होने चाहिये, खाने पीने की कौन सी मर्यादा और संयम रखने चाहिये, आसन व्यायाम इत्यादि किस प्रकार से करने चाहिये यह सब जो वेदों में और दूसरे पुराने ग्रन्थों में बताया है, वह सब आज हम भूल गये हैं और पश्चिमी देशों में इस ज्ञान की मांग हो रही है। यह ज्ञान सम्पादन करने के लिये वे लोग संस्कृत शिक्षण में लगे हैं और हम यहां संस्कृत की अवहेलना करते हैं। पुराने संस्कृत ग्रन्थों में ज्ञान है हम उसकी हंसी करते हैं।

कहने का मतलब यह है कि दवाई का उपयोग हो या न हो किन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि जिसकी तन्दुरुस्ती अच्छी होती है वे रोगों का भद्‌य स्थान नहीं होंगे या कम होंगे। इसीलिये श्रीकृष्ण भगवान ने गीता जी में "युक्ताहार विहार" यह रखकर और शरीर की रचना स्वास्थ्य का ज्ञान लेकर हम प्राकृतिक ढंग से रहने का प्रयत्न करें यह आवश्यक है।

लेकिन इस ढंग से रहने की कोशिश करते हुये भी गलतियां होना सम्भव है क्योंकि मनुष्य का ज्ञान थोड़ा है और अज्ञान अधिक। प्रयोग करते करते अनुभव लेते लेते मनुष्य आगे बढ़ रहा है। रोगी अवस्था में सम्पूर्णतया कुदरती आचरण की उपेक्षा हम नहीं रख सकते हैं। तब भी इतनी बुनियादी बात तो हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि स्वास्थ्य देने वाली दवाइयां नहीं हैं लेकिन कुदरत के अनुसार रोग निवारण के साधन हैं। इसी दृष्टि से इस ग्रन्थ में डा० फुन्दनलाल जी अग्निहोत्री ने प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन और चर्चा की है।

खान पान व्यायाम विश्राम आदि यथायोग्य होने पर भी कई रोग हो जाते हैं। रोग का मूल कारण देख कर और वह मूल कारण दूर करने की कोशिश करने पर ही शरीर का जो स्वाभाविक धर्म है उसी से स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति होती है

और इसी प्रकार से जल, वायु, विद्युत बगैरः ईश्वरदत्त प्राकृतिक वस्तुयें हैं। उनका उपयोग ठीक ढंग से करने पर हम पुनः स्वस्थ हो सकते हैं।

इस ग्रन्थ में जो साधन बताये हैं उनमें मुझे जो खास महत्व की बात लगी है वह है आँतों को स्वच्छ रखने की। नब्बे या पच्चानबे प्रतिशत रोगियों में यह देखने में आयेगा कि सब रोगों का मूल आँतों में भरी हुई गन्दगी ही है। उसके लिये उन्होंने वस्ती (एनीमा) की सिफारिश की है और कोलन की सफाई पर बहुत जोर दिया है। उन्होंने डाक्टर हॉल का उदाहरण दिया है। वे डाक्टर हॉल जवानी की छोटी उम्र में क्षय रोग से जब बीमार पड़े और सब डाक्टरों ने उनको असाध्य समझकर छोड़ दिया तब उन्होंने अपना केस अपने ही हाथ में ले लिया और उन्होंने सोचा कि विकारों का भण्डार कोलन है। इसी के भरे हुये होने के कारण इन कृमियों ने मेरे फेफड़े और यकृत आदि को रोगी बनाया है। अतः सर्व प्रथम कोलन की जो मेरे शरीर के मल की नली है सफाई होना आवश्यक है। इस प्रकार उन्होंने कोलन की सफाई चालू रक्खी और रोग मुक्त हो गये और एक नई चिकित्सा प्रणाली उन्होंने स्थापित की। 80 वर्ष की आयु तक पहुँचे; तब उन्होंने लिखा है; "अब भी मैं शक्तिशाली व स्वस्थ हूँ। मेरी आयु 80 वर्ष के निकट आ पहुँची है। मेरे शरीर का भार ढाई मन से अधिक है। मेरी शारीरिक और मानसिक शक्ति में उन्नति हुई है इत्यादि।"

एक विख्यात अमरीकन डाक्टर लिखते हैं "मैंने अधिक अन्वेषण से यह परिणाम निकाला कि शीघ्र वृद्धावस्था आ जाने और स्वास्थ्य बिगड़ जाने का मुख्य कारण भी यही कोलन की खराबी है। सम्भव है कि जन साधारण को यह विचार घबड़ाहट में डालने वाला हो किन्तु जब मैंने 284 मनुष्यों के कोलन का निरीक्षण ध्यान पूर्वक किया जो कि हर प्रकार के रोगों से जो इस देश में होते हैं मरे थे तो केवल 28 शवों के कोलन ऐसे निकले जिनके भीतर बहुत कड़े सिलेट की भांति रुकावट डालने वाले मल का अभाव था। शेष 256 थोड़े बहुत इसी प्रकार कोलन वाले रोग में ग्रस्त थे। इन 256 में अधिक संख्या उनकी थी जिनका कोलन अपनी स्वाभाविक अवस्था से दूना फैला और फूला हुआ था परन्तु इनके

भीतर बहुत छोटा सा छेद था जिससे वे मरते समय तक मल त्यागते रहे"। साथ ही डा० फुन्दनलाल जी ने सूर्य और वायु से रोग मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है, शरीर के स्वास्थ्य के लिये मनोबल, प्रसन्नता, ब्रह्मचर्य आदि का कितना बड़ा महत्व है, वह भी अच्छी रीति से बताया है। इस प्रकार से उनका यह ग्रन्थ प्राकृतिक चिकित्सा और उपचार का बिल्कुल शास्त्रीय ढंग का समर्थन करता है।

लेकिन उन्होंने हरेक चीज वेदों में थी ऐसा प्रस्थापित करने का जो प्रयास किया है उसमें मुझे तो शास्त्रीय पद्धति से ज्यादातर उनका वेदों पर का प्रेम और भक्ति मालूम होती है। जो उन्होंने कहा है वह सब वेदों में हो या न हो लेकिन वह सत्य है। और उनकी बात को स्वीकार करने से ही भारत जैसे गरीब देश में बिना खर्च या बहुत थोड़े खर्च से जनता के आरोग्य का और बीमारियों के उपचार करने का सवाल आसानी से और ऊंचे ढंग से और शास्त्रीय रीति से हल हो सकता है ऐसा दिखाई पड़ता है।

डाक्टर साहब ने बड़े प्रेम से ग्रन्थ मुझे पढ़ने को दिया और मैं उसका आमुख लिखूँ ऐसी इच्छा प्रकट की; लेकिन मेरे पास बहुत काम होने के कारण मैं ठीक समय पर ग्रन्थ पढ़ न सका और ज्यादा देर हुई। इसके लिये डा० फुन्दनलाल जी मुझे क्षमा करेंगे ऐसी आशा रखता हूँ।

सेवा कुटीर

अहमदाबाद नं० ६

७/५/५५

गणेश वासुदेव मावलंकर
(अध्यक्ष भारतीय लोक सभा)

समर्पण

परमपिता, सत्य ज्ञान के दाता प्रभू ! आप घट घट के व्यापक अन्तर्यामी और सबके कर्मों के यथार्थ फल दाता हैं। आज का मानव तेरे सत्य ज्ञान वेद की अवहेलना कर जिन शारीरिक और मानसिक वेदनाओं से पीड़ित हो रहा है, अपने बन्धुओं की इस पीड़ा से दुखी होकर आपके इस पुत्र ने जिस भावना से यह पुस्तक लिखी है, उसे आप ही सबसे अधिक जानते हैं। मुझ जैसे अज्ञान के हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न होना और उसके द्वारा यह कार्य सम्पादन कराना तेरी ही कृपा का फल है। अतः यह कृति आपके ही चरणों में समर्पित है।

शरणागत

लेखक

अनुक्रमणिका

प्रथम भाग

विचार खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1.	प्रस्तावना प्रचलित चिकित्सा प्रणाली और चिकित्सा के ढंग से जनता के कष्टों का वर्णन और उससे बचने के उपाय।	1—4
2.	चिकित्साशास्त्र प्रचलित चिकित्सा के सम्बन्ध में उसके ही विद्वानों की सम्मति तथा चिकित्सा शास्त्र के जन्मदाता वेद तथा आयुर्वेद के प्रमाण।	5—19
3	प्राकृतिक चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास तथा उसका वर्णन कि उसके लाभ देखकर किस प्रकार बड़े बड़े प्रसिद्ध ऐलोपैथिक डाक्टरों ने उसे अपनाया।	20—26
4	वैदिक जल चिकित्सा वेद तथा आयुर्वेद के जल चिकित्सा पर प्रमाण; प्रचलित जल चिकित्सा के अतिरिक्त नवीन विधियां।	27—34
5	अमरीका का न्यू हाईजीन ट्रीटमेन्ट अमरीका के डाक्टर हाल तथा डाक्टर टरनर के एनीमा पर आश्चर्यजनक अनुभव।	35—51
6	वस्ती कर्म एनिमा पर वेद तथा आयुर्वेद के प्रमाण।	52—55
7	सूर्य तथा वायु धूप और वायु की उपयोगिता पर वेद, आयुर्वेद तथा अर्वाचीन वैज्ञानिकों की सम्मति।	56—61
8	शरीर रूपी मशीन शरीर के अंगों का वर्णन, पाचन क्रिया किस प्रकार होती है; दाँत, आँख का कार्य। कोलन के साफ रखने से हम सर्वदा कैसे स्वस्थ रह सकते हैं।	62—70

9	**रोग का कारण-कृमि या विकार** रोग कृमि का असल तत्व, इस विषय में वेदशास्त्र के प्रमाण फिर भी रोग का मुख्य कारण विकार। विकार निकलते रहने से हम रोगी नहीं हो सकते।	71—77
10	**नाड़ी संस्थान** हमारी हर क्रिया चाल ढाल में सहायता देती है। उसके बल बढ़ाने के उपाय व्यायाम, ब्रह्मचर्य आदि।	78—80
11	**हवन यज्ञ** संक्रामक रोगों में हवन यज्ञ की उपयोगिता विशेष रूप से शहरों में।	81—85
12	**भोजन व उपवास** कौन सा भोजन स्वास्थ्यप्रद है? उपवास से क्या लाभ है? कब उपवास की आवश्यकता है? उपवास के पश्चात् क्या खायें?	86—93
12(क)	**भोजन का ज्ञान** किस प्रकार के भोजन से क्या लाभ होता है और किस पदार्थ में कौन विटामिन किस मात्रा में होता है?	94—101
12(ख)	**भोजन के विषय में प्राचीन विचार** किस मनुष्य को क्या भोजन उपयोगी है? किस रस में क्या गुण दोष हैं? किस प्रकार का भोजन कितने समय में पचता है।	102—106
12(ग)	**एक नवीन खोज** रक्त में 80 प्रतिशत खार तथा 20 प्रतिशत खटाई है। अतः इसके अनुसार भोजन हो। किन पदार्थों में क्षार व किन में खटाई है उनका विस्तृत वर्णन।	107—110
13	**औषधि प्रयोग और चिकित्सा सिद्धांत** प्राकृतिक चिकित्सा में जड़ी बूटी या होम्योपैथिक औषधि का क्या स्थान है।	111—118
14	**मनोबल** मानसिक भावों का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने के प्रत्यक्ष उदाहरण	119—122
15	**मानसिक प्रसन्नता** प्रसन्नता का स्वास्थ्य पर प्रभाव तथा प्रसन्न रहने के अचूक साधन	123—125
16	**ब्रह्मचर्य** ब्रह्मचर्य की वैज्ञानिक व्याख्या तथा उसके लाभ	126—130

भाग 2

चिकित्सा खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1.	चिकित्सा के साधन (1) उपवास (2) उपवास तोड़ना (3) वस्ती कर्म (एनीमा) (4) कटिस्नान अथवा कोनी साहब का हिपबाथ (5) उपस्थित स्नान अथवा नाड़ी स्नान (6) शीतोष्ण स्नान (7) बल वर्धकस्नान (8) लिंग स्नान (9) धार स्नान (10) संगम स्नान (11) तरारा (12) गर्म पानी का सेंक (13) धूप तथा वायु स्नान (14) भाप स्नान (15) गंजी स्नान (16) पानी व मिट्टी की पट्टी, कपड़े की गीली पट्टी, रीढ़ की गीली पट्टी, सारे शरीर की गीली पट्टी, (17) पैरों का गर्म स्नान (18)साधारण स्नान (19) जल नेती (20) इन क्रियाओं के सम्बन्ध में कुछ नियम (21) आम के पत्तों की चाय (22) किशमिश का पानी	131—150
2.	रोगों की चिकित्सा (1) नवीन रोगों की चिकित्सा विधि (2) जीर्ण रोगों की चिकित्सा विधि	151—157
3	रोगों के नाम से उनकी चिकित्सा, प्रतिश्याय अथवा सर्दी जुकाम (नजला)	158—160
4	ज्वर कन्टीन्यूड फीवर, इन्टरमीटेन्ट फीवर, रिमीटेन्ट फीवर, रिलैप्सिङ्ग फीवर, सादा ज्वर, जलन वाला ज्वर, तीव्र ज्वर, निर्बल कर देने वाला ज्वर, वृद्ध कर देने वाला ज्वर, आँतों का ज्वर, घातक ज्वर, तपेदिक जीर्ण ज्वर, कूतदार ज्वर, अछूते ज्वर, असली ज्वर, लाक्षणिक ज्वर, वात ज्वर का पूर्व रूप, लक्षण; पित्त ज्वर का पूर्व रूप, लक्षण; कफ ज्वर का पूर्व रूप लक्षण; वात पित्त ज्वर, लक्षण; कफ पित्त ज्वर, लक्षण; सन्निपात ज्वर के लक्षण और कारण; आगंतुक ज्वर के लक्षण; शस्त्र की चोट से उत्पन्न हुआ आगंतुक ज्वर; विषैली गैस व कृमि से उत्पन्न ज्वर; काम ज्वर; क्रोध ज्वर,	161—176

	शोक ज्वर अथवा मानसी ज्वर, भय ज्वर, विष ज्वर, श्राप ज्वर अर्थात् ग्लानि ज्वर; ज्वर क्यों होता है; चिकित्सा मलेरिया ज्वर, मलेरिया रोकने की दूसरी विधि, भोजन, क्षय रोग व जीर्ण ज्वर।	
5	पेट के रोग (क) अजीर्ण, (ख) पेट का दर्द (ग) वायु गोले का दर्द (घ) कोष्ठबद्धता (ङ) संग्रहणी (1) वातज संग्रहणी (2) कफज संग्रहणी (3) पित्तज संग्रहणी (4) सन्निपातज संग्रहणी आम वात संग्रहणी; संग्रहणी के प्रसादय लक्षण, (च) पेचिश (छ) आँतों का रूप (ज) विशूचिका (झ) बवासीर (ञ) मन्दाग्नि (Dyspepsia) (त) यकृत और प्लीहा के रोग	177—209
6	मूत्र सम्बन्धी रोग प्रमेह, (क) मधुमेह (ख) सूजाक (ग) उपदंश	210—226
7	स्त्रियों के विशेष रोग (क) मासिक धर्म का रुक जाना (ख) कष्ट के साथ मासिक धर्म (ग) अधिक रक्त आना (घ) अनियमित मासिक (ङ) गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना (च) प्रदर	227—237
8	बालकों के रोग (1) बालकों को दूध पिलाना (2) नवजात शिशु को दूध कितने समय पश्चात् दिया जावे (3) जब कभी उसे कोई रोग हो। बालकों के मुख्य रोग (1) पेट का बिगाड़, (2) कब्ज (3) पेट का दर्द (4) सूखा (5) ज्वर (6) पसली चलना (7) खांसी	238—244
9	आंख के रोग आंख दुखना, आंख के अन्य रोग	245—248
10	कान के रोग कान में कुछ पड़ जाना, कान में मैल, कान में दर्द, कान बहना, बहरापन	249—251
11	दांत के रोग पायरिया	252—255
12	बुढ़ापे के रोग	256—258

13	रक्त चाप का बढ़ना	259—260
14	नाड़ी संस्थान के रोग	261—262
15	विविध रोग (क) अपाङ्ग प्रदाह (Appendicitis) (ख) त्वचा और रक्त के रोग (ग) खांसी दमा (घ) टान्सिल बढ़ना (ङ) लू लगना (च) प्लेग (ताऊन) (छ) बहुत मोटापापन तथा बहुत दुबलापन (ज) गठिया या गांठों की पीड़ा (झ) विवााई फटना (ञ) मोच (त) कांटा रह जाना (थ) लकवा फालिज	263—273
16	उपसंहार	274—278

पाठ 1

प्रस्तावना

आज संसार के कोने-कोने में और विशेष रूप से हमारे देश भारत में इतने रोग फैले हुए हैं कि साधारण मनुष्यों को उनके नाम भी ज्ञात नहीं और रोगी होने पर चिकित्सा से पूर्व रोग निदान के लिये डाक्टरों और हकीमों के घर की खाक छाननी पड़ती है। विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ रोगों के नामों की सूची भी इतनी विस्तृत हो गई है कि साधारण ज्वर में भी भय रहता है कि न जाने किस प्रकार का ज्वर हो और कहीं वह घातक रोग न हो जावे। अतः शीघ्र से शीघ्र किसी बड़े डाक्टर की चिकित्सा कराना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझा जाता है।

दूसरी ओर हमारे देश में कंगाली और मँहगाई इतनी बढ़ गई है कि प्रायः जनसाधारण को और विशेषतया मध्यम वर्ग के लोगों को घी दूध तो बड़ी चीज शुद्ध अन्न व फल भी भर पेट खाने को नहीं मिलते। ऐसे लोगों के सामने जब यह नित्यप्रति के रोग और फिर उनकी बहुमूल्य चिकित्सा का प्रश्न आता है तो रोगी तो रोग के कष्ट से मरता है और घर का नेता डाक्टर के बिल से घबराकर बिन आई मौत मर जाता है। दूसरों की देखा-देखी चिकित्सा तो वही कराना पड़ती है पर ऋण के कारण खान-पान में और भी कमी करना पड़ती है जिससे रोग और भी बढ़ते जाते हैं। डाक्टर साहब से ज्वर की चिकित्सा कराई जाती है तो निर्बलता आ घेरती है, उसे दूर करने को टानिक पीते हैं तो कब्ज आ दबाता है, जब दस्तावर दवा पीते हैं तो प्रमेह और मंदाग्नि का कोप हो जाता है। इसी लौट-पोट में कोई डाक्टर तपेदिक की शंका से एक्सरे और रक्त परीक्षा की जाँच की सम्मति देकर अपना पीछा छुड़ा लेता है पर बेचारे रोगी के जीवन-मरण का प्रश्न आ जाता है और घरबार भी बेच कर चिकित्सा में लगाना पड़ता है।

यदि सौभाग्य से तपेदिक न निकला तो इस एकांगी चिकित्सा के फलस्वरूप बवासीर, दमा, प्रमेह, प्रदर इत्यादि कोई ऐसा रोग लग जाता है जो जीवन भर का साथी हो जाता है। आश्चर्यजनक पर गम्भीरतापूर्वक विचारने की बात यह है कि हमारे देश में जिस अनुपात से डाक्टर और अस्पताल बढ़ रहे हैं उसी अनुपात से, नहीं नहीं, उससे भी कहीं अधिक अनुपात से रोग और रोगियों की संख्या बढ़ रही है। उससे भी अधिक स्पष्ट यह सच्चाई दृष्टिगोचर होती है कि वर्तमान चिकित्सा के फलस्वरूप हमारे देशवासियों का स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया है कि बालकपन में आँखों पर ऐनक और युवावस्था में पीले चेहरे और पिचके गाल दृष्टि पड़ रहे हैं। उत्साह और जीवन का नाम नहीं। एक ओर लड़कियों का स्वास्थ्य और भी खराब है। दूषित शिक्षा-प्रणाली के भार और भोजन की कमी से दब कर 60 प्रतिशत को प्रदर रोग है और युवावस्था में भी वह बलवान संतान उत्पन्न करने के अयोग्य रहती हैं। दशा इतनी बिगड़ चुकी है कि प्रत्येक हृदयशील व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जाता है कि इसके कारणों पर विचार करके उनको दूर करने का पूर्ण उद्योग करे। अन्यथा भविष्य और भी अन्धकारपूर्ण होने की सम्भावना है। क्योंकि हमारे पूर्वज ऋषियों का कथन है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों की प्राप्ति में आरोग्यता ही मुख्य कारण है (चरक)।

आजकल के विचारक भी इसी परिणाम पर पहुँचे हैं और कहते हैं कि उत्तम नागरिकता के लिए अच्छे स्वास्थ्य की बड़ी आवश्यकता है। दुर्बल और रोगी मनुष्य न अपनी उन्नति कर सकते हैं न समाज की सेवा में सहयोग दे सकते हैं। हमारे देश के घर-घर में कोई न कोई बीमारी घुसी हुई है। जिस राष्ट्र की जनता अस्वस्थ होगी वह राष्ट्र निर्बल होगा और उन्नति न कर सकेगा। आरोग्य के इस मूल्य को ही समझ यहाँ हम इस अत्यन्त आवश्यक विषय पर कुछ लिखना चाहते हैं। हम यदि थोड़ी सी

विचार-शक्ति

से काम लें तो यह बात बड़ी सुगमता से समझ में आ जावेगी कि आरोग्य शरीर की साधारण अवस्था है और थोड़े ही ध्यान देने से शरीर निरोग रह सकता है। यदि हम स्वास्थ्य के इन प्राकृतिक नियमों को कि कैसे श्वास लें, कब और कैसा जल पीवें, क्या भोजन करें, और क्या न करें, शरीर को कब विश्राम दें, और कब व्यायाम करें, इत्यादि बातों को एक बार जान कर अपना जीवन प्राकृतिक नियमों के आधार पर बितावें तो हम कभी भी रोगी नहीं हो सकते। "हम कैसे सर्वदा निरोग रह सकते हैं " इस विषय पर हमने " आरोग्य-शास्त्र" ग्रन्थ में पूर्ण प्रकाश डाला है। अतः यहाँ पुनः न लिखेंगे। यहाँ तो हम उन दुखी जनों के दुःख दूर करने की बात सोच रहे हैं जो इन नियमों से विज्ञ होने के पूर्व ही अपनी आरोग्य को खो चुके हैं और उसी अनभिज्ञता के कारण वर्तमान अधूरी अथवा एकांगी चिकित्सा प्रणाली के चक्कर में पड़ कर और भी अपना स्वास्थ्य तथा धन नष्ट करके दुःखी हो रहे हैं और कल्याण के मार्ग की खोज में प्रभु की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी इस आशा को पूर्ण करने के लिए हम इस पुस्तक द्वारा वह अचूक चिकित्सा प्रणाली उपस्थित कर रहे हैं जिसका आदेश जहाँ हमारे वेद शास्त्र और प्राचीन ऋषि-मुनि देते हैं, वहाँ उच्च कोटि के आधुनिक पाश्चात्य विद्वान भी मुक्त कंठ से उसका समर्थन कर रहे हैं। अचूक होने के साथ-साथ चिकित्सा इतनी सरल है कि पुस्तक को एक-दो बार ध्यान-पूर्वक पढ़कर प्रत्येक समझदार व्यक्ति उसका प्रयोग कर सकता है। सब रोगों का एक कारण और चिकित्सा सिद्धांत एक होने के कारण रोगों की विस्तृत नामावली के झंझट में पड़ने की आवश्यकता नहीं। यह अनुमानिक ऐसी अधूरी विधि नहीं है जिसका परिणाम किसी पर कुछ और किसी पर कुछ हो किन्तु जिस प्रकार दो और दो सर्वदा चार होते हैं इसी प्रकार इसका प्रभाव सर्वदा सब पर एक सा होता है क्योंकि जैसा कि आगे के पृष्ठों में पढ़ेंगे इन साधनों के परीक्षण जहाँ करोड़ों वर्ष पूर्व प्राचीन ऋषि मुनियों ने किये हैं वहाँ हजारों बार आधुनिक विद्वानों ने करके

उनको वैसा ही प्रभावशाली पायो है। लगभग पचास वर्ष तक हम स्वयं अपने तथा अपने रोगियों पर परीक्षण करने के पश्चात ही जनहित के विचार से आपके समक्ष उसी चिकित्सा प्रणाली को उपस्थित कर रहे हैं।

यह विधि जहाँ जीर्ण रोगों में देर तक काम में लाने से रोग को जड़ मूल से खो देती है वहाँ तीव्र अर्थात् नवीन रोगों में इतनी शीघ्र प्रभाव दिखाती है कि देखने वाले देख कर चकित रह जाते हैं। वैसे तो प्राकृतिक होने के नाते यह विधि सब देशों में सब कालों में समान उपयोगी है। इसी कारण पाश्चात्य देशों में भी खूब पनप रही है। पर वर्तमान परिस्थिति में हमारे देश के लिये तो यह प्रभु की देन ही समझना चाहिये। अतः हम आशा करते हैं कि न केवल हमारे देशवासी किन्तु समस्त संसार के समझदार व्यक्ति जहाँ इससे स्वयं लाभ उठावेंगे वहाँ दूसरों को भी लाभ पहुँचाने का उद्योग करेंगे और परोपकार वृत्ति वाले सज्जन इसके आश्रम स्थान-स्थान पर खोल कर इस कठिन समय में निर्धन और दुखी जनता को स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्रदान करने का पुण्य कमावेंगे। धन कमाकर विलासिता में उड़ाना अथवा जमा करके मर जाने वाले बहुत हैं पर विश्व कल्याण की भावना से स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों का हित करने वाले ही वास्तव में जीवन का सर्वदा आनन्द उठाते हैं किसी कवि ने ठीक कहा है:–

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मर चुका है विश्व के लिये ॥

पाठ 2

चिकित्सा-शास्त्र

इस समय चिकित्सा विज्ञान के सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिकों के दो दल बन गये हैं। साधारण बुद्धि के मनुष्य एलोपैथी के भक्त हैं और उसके आधार पर तत्काल चमत्कार दिखाने वाले नवीन-नवीन आविष्कार करके जन समूह को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। दूसरी ओर उच्च कोटि के विचारशील वैज्ञानिक एलोपैथी की विषैली और रोग-विष को दबाने वाली औषधियों की हानि से विज्ञ होकर उसका विरोध करने लगे हैं और जल चिकित्सा (Hydropathy) वायु चिकित्सा (Airopathy) विद्युत चिकित्सा (Electropathy) वार्म चिकित्सा (Lingopathy) सदृश्य विज्ञान (Homeopathy) इत्यादि की ओर झुक कर अब इन सबकी मिश्रित प्रणाली को प्राकृतिक चिकित्सा (Naturopathy) का नाम देकर उसका बड़ी तत्परता से प्रचार कर रहे हैं। अमेरिका इत्यादि देशों में प्राकृतिक चिकित्सा के अनेकों आश्रम और होम्योपैथी के सैकड़ों चिकित्सालय खुल गये हैं और उनकी संख्या बराबर बढ़ती जाती है। जहाँ वहाँ के अपने समय के सब से बड़े डाक्टर ओसलर साहब (Osler) जैसे चिकित्सक (इनका परिचय आगे आवेगा) एलोपैथी को छोड़ कर प्राकृतिक चिकित्सा के भक्त बन चुके हैं वहाँ अन्य बड़े-बड़े प्रतिष्ठित विद्वान एलोपैथी से निराश होकर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा न केवल अपने रोगों को दूर कर रहे हैं किन्तु अपने जीवन का सुखमय समय भी बढ़ा रहे हैं। हमारे देश में भी जहाँ अनेकों वैज्ञानिकों ने इस चिकित्सा विधि को अपनाकर इसके चिकित्सालय और आश्रम बनाना आरम्भ किया है वहाँ इस समय के सबसे बड़े युग पुरुष महात्मा गांधी जी ने भी एलोपैथी की विषात् औषधियों का विरोध और प्राकृतिक चिकित्सा का समर्थन करके इसकी प्रतिष्ठा पर चार चाँद लगा दिये हैं पर इस चिकित्सा विधि की उपयोगिता को तथा समय की माँग को देखते हुए हमारे देश में इसका प्रचार अभी नहीं के बराबर है। इसके दो कारण हैं। प्रथम अधिक वैज्ञानिकों का भ्रम अथवा स्वार्थवश रोगियों के परिणामों की

उपेक्षा करते हुए केवल एलोपैथी का समर्थन करना। २- वेद तथा आयुर्वेद के अनुसार वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सा का पूर्ण न होना पहला कारण विज्ञान तथा नैतिकता की उन्नति होने पर ही दूर हो सकेगा जिसके लिए सबको उद्योग करना चाहिए। इस पुस्तक का उद्देश्य दूसरे कारण को दूर करना है। जिससे प्राकृतिक चिकित्सक और जन साधारण प्राकृतिक चिकित्सा के अधूरे रूप को केवल विदेशी चश्मे से न देख कर अपने वेद-शास्त्र के आधार पर उसका पूर्ण रूप देख कर प्रत्येक समय पर उससे लाभ प्राप्त कर सकें।

प्रथम हम चिकित्सा का इतिहास लिखने का उद्योग करते हैं। यह बात सर्वमान्य है कि संसार के पुस्तकालयों में वेद सबसे प्राचीन ग्रंथ है। वैदिक धर्मी इसके साथ यह भी मानते हैं कि संसार की समस्त विद्याओं का आदि स्रोत वेद और आज तक विज्ञान का कोई सत्य सिद्धान्त ऐसा नहीं आविष्कृत हो सका है जिसका बीज वेद में विद्यमान न हो। अतः जब हम चिकित्सा सम्बन्ध में वेद के पन्ने उलटते हैं तो जहाँ अन्य स्थानों पर उसका कुछ विस्तृत वर्णन भी मिलता है वहाँ अथर्ववेद के एक मंत्र में ही संसार की समस्त चिकित्सा विधियों का उल्लेख हम पाते हैं साथ ही हम इस परिणाम पर भी पहुँचते हैं कि जब तक इन सभी विधियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त न किया जावे कोई मनुष्य अपने आपको सच्चा चिकित्सक नहीं कह सकता। वह मंत्र इस प्रकार है:–

आथर्वणी आंगिरसी दैवी मनुष्य जा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदात्वं प्राण जिन्वसि ॥

अथर्व वेद ११-४-१६

इस मंत्र में बतलाया गया है १-आथर्वणी २-आंगिरसी ३-दैवी ४-मनुष्य जा। चार प्रकार से चिकित्सा हो सकती हैं। इसकी व्याख्या इस प्रकार है:–

1. आथर्वणी– हृदय के प्रेम से, भक्ति से, मानसिक शक्ति से तथा आत्मबल (Hypnotism and Masmarism) से जो चिकित्सा की जाती है वह इसके

अन्तर्गत है। पर इसी पर आथर्वणी चिकित्सा समाप्त नहीं हो जाती और भी साधन हो सकते हैं।

2. आंगिरसी – अंगों अवयवों और इन्द्रियों में एक प्रकार का रस (Secretion of Katabolic, Metabolic and Endocrine glands) रहता है, जिसके कारण हर एक प्राणियों की स्थिति रहती है। उस रस के द्वारा जो चिकित्सा होती है वह आंगिरसी चिकित्सा कहलाती है। मानसिक इच्छा शक्ति की प्रबल प्रेरणा से इन रसों को अंग-प्रत्यंगों के संचार करने से रोगों की निवृत्ति होती है। मानसिक चित्त एकाग्रता का इसमें विशेष साधन करके दृढ़ बनाना पड़ता है। रुग्ण अंग को संबोधित करके निरोग भाव की सूचना देना तथा रोगी को अपनी आंगिक रस शक्ति की प्रेरणा करने के लिए उत्तेजित करना इसमें मुख्य विधि है। जिसका विस्तृत वर्णन वेद में मिलता है।

3. दैवी – अग्नि, जल, वायु, सूर्य, पृथ्वी, यज्ञ, विद्युत इत्यादि की सहायता से जो चिकित्सा की जाती है और उपवास इत्यादि साधन जिसमें वर्ते जाते हैं तथा शरीर को शुद्ध करके देवतों की भांति निर्मल किया जाता है वह सब दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत है। क्योंकि सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, हवन, यज्ञ इन सबको इस युग के सबसे बड़े विद्वान ऋषि दयानन्द जी महाराज ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में वेद शास्त्र के आधार पर देव माना है और इनकी गणना उन 33 देवताओं में की है जिनकी सूची उपरोक्त ग्रंथ में दी है। इन्हीं की सहायता से प्राकृतिक चिकित्सा होती है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थान पर वेद ने प्राकृतिक चिकित्सा का उपदेश इस प्रकार किया है:–

सूर्य चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथ्वी च घर्ममिः।
अपो वा गच्छ यदि तव ते हित मोषधीषु प्रति तिष्ठ पारी रै ॥

ऋग्वेद १०-१६-३ ॥

अर्थ:–हे पुरुष (चक्षुष) अपने चक्षु द्वारा (सूर्यव्य) सूर्य के प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त कर, आंख से तेज का ग्रहण कर (आत्मना) अपने शरीर से (वात) प्राण वायु को ग्रहण कर (घर्म मिः) शरीर के घातक बलों द्वारा (दिवम) कौ: आकाश और (पृथिवीं) पृथ्वी को भी (गच्छ) प्राप्त कर, अपने वश कर (अपाः वा गच्छ) तू जलों को भी प्राप्त कर और (यदि) जो कुछ (तव) उन (औषधीन) औषधियों में भी (ते) तेरे लिए (हितम्) हितकर पदार्थ विद्यमान है तो उसको भी प्राप्त कर, फलतः तू (शरीरै) अपने प्राप्त शरीरों से (प्रतितिष्ठा) लोकों में प्रतिष्ठित होकर रहे।

इस वेद मंत्र में प्राकृतिक चिकित्सा में जहाँ आकाश, जल, पृथ्वी इत्यादि प्राकृतिक पदार्थों से सहायता लेने का आदेश है वहाँ औषधियों से भी प्राकृतिक ढंग पर सहायता लेकर प्रतिष्ठा के साथ जीवन बिताने की आज्ञा है। औषधियों को घोंट-छान पाग अवलेह टिंचर इत्यादि बनाना तो मनुष्यजा चिकित्सा के अन्तर्गत है जैसा कि आगे बताया जावेगा पर सोमलता इत्यादि किसी प्राकृतिक औषधि को प्राकृतिक रूप में रस निकाल कर पीना प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत आता है ऐसा वेद का सिद्धान्त मालूम होता है। विदेशी आविष्कारों के आधार पर कुछ प्राकृतिक चिकित्सक औषधि के घोर शत्रु होते हैं पर यह उनकी भूल है क्योंकि प्रकृति की देन औषधि भी है। हाँ उसको अप्राकृतिक बना कर मनुष्य उससे लाभ के स्थान में हानि उठा सकता है। आयुर्वेद की नींव शुद्ध प्राकृतिक चिकित्सा पर रखी गई। प्राचीन आयुर्वेद प्रत्येक वस्तु को पंच भूतात्मक मानता है और इसी आधार पर त्रिदोषवाद उपस्थित किया गया है अर्थात् अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश इनके द्वारा यह शरीर बना है। इन्हीं में से किसी तत्व के न्यूनाधिक होने पर शरीर में वात, पित्त, कफ के रूप में से कोई एक अथवा मिश्रित दोष उत्पन्न होता है। उसी को रोग कहते हैं। दूसरी ओर सारे खाद्य-पदार्थ जिनमें सब वनस्पति और औषधियां सम्मिलित हैं इन्हीं पंचभूतों द्वारा

निर्माण हुई हैं और इन्हीं के द्वारा जीवन धारण करती हैं। औषधि शब्द के अन्तर्गत खाद्य पदार्थ सेब, अनार, गेहूँ, और आँवला सभी आते हैं। अब आयुर्वेद का मूल सिद्धान्त यह है कि मनुष्य प्राकृतिक ढंग पर अग्नि, जल, वायु इत्यादि में से जिस वस्तु की शरीर को नित्य आवश्यकता पड़ती है ग्रहण करे। और यदि किसी अनियमता के कारण किसी वस्तु की शरीर में न्यूनता हो जावे तो उस वस्तु को विशेष रूप से ग्रहण करे और जिस वस्तु की अधिकता हो जावे उसको शरीर से निकालने का यत्न करे। उदाहरणार्थ आजकल का विज्ञान हमें बताता है कि सूखा रोग में विटामिन D डी कम हो जाता है और वह धूप में बैठ तेल की मालिश करने से शरीर में अधिक उत्पन्न होता है। प्राचीन आयुर्वेद इस सिद्धान्त को मानता था अतः सूखा की चिकित्सा में अनेकों प्रकार के तेल तैयार करके धूप में मलने को कहा जाता है। चिकित्सा रूप में जहाँ सूर्य, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी इत्यादि से सीधे शक्ति ग्रहण की जाती है वहाँ भोजन व अन्य वनस्पतियों द्वारा भी किसी सीमा तक सहायता लेते हैं जिससे शरीर के भीतर पंच तत्व अपनी निश्चित मात्रा में हो जावे और वात, पित्त, कफ समान अवस्था को प्राप्त हो जावें। यही शुद्ध आयुर्वेद है और यही प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है। अतः आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा में विरोध नहीं है पर वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सा जिसका आरम्भ केवल जल-चिकित्सा से हुआ है (जैसा कि आगे बताया जावेगा) आरम्भ में उसमें बहुत न्यूनतायें थीं जिनको समय-समय पर अन्य विद्वान वैज्ञानिकों ने पूरा किया। प्राकृतिक औषधि की उपयोगिता को अभी बहुत से प्राकृतिक चिकित्सक स्वीकार नहीं करते हैं यद्यपि कुछ अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक होम्योपैथिक औषधि अथवा जड़ी-बूटी का प्रयोग करके आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा की उपयोगिता को स्वीकार करने लगे हैं पर उन्हें अभी इस विषय में आयुर्वेद का और अधिक अध्ययन करने की आवश्यकता है क्योंकि आयुर्वेद इस

विषय में बड़ी गहराई में गया है। पहले औषधियों की पचास श्रेणियाँ दीपनीय, जीवनीय इत्यादि बनायीं (देखो चरक सूत्र स्थान अध्याय ४)। फिर इसका कहाँ विशेष प्रभाव है। ऊर्ध्व भाग दोष हर, अधो भाग दोष हर इत्यादि वर्ग किये (देखो सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय ३६) इत्यादि। कहने का अभिप्राय यह है कि न तो वैद्यों को प्राकृतिक चिकित्सा को विदेशी चीज़ समझ कर दुदुराना चाहिये क्योंकि वेद के अनुसार वह दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत है और इस समय संसार के लिये विशेषतया हमारे देश के लिये अति उपयोगी है। और न प्राकृतिक चिकित्सकों को वनस्पति और औषधियों का ऐसा विरोध करना चाहिये क्योंकि शुद्ध और पूर्ण प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त हमें वेद ओर आयुर्वेद से ही मिल सकते हैं। इस विषय में वेद और आयुर्वेद का क्या स्थान है यह आगे बताया जावेगा।

4. मनुष्यजा– मनुष्य की बनाई औषधियाँ मिक्सचर, काढ़े, गोली इत्यादि तथा शल्य चिकित्सा, चीर-फाड़ इत्यादि इस चिकित्सा के अन्तर्गत आती हैं। आयुर्वेद के सब काढ़े, गोली इत्यादि इसके अन्तर्गत हैं, पर आज मनुष्य ने चिकित्सा के इस अंग की इस सीमा तक अति कर दी है कि वह मनुष्य समाज को लाभ के स्थान में हानि पहुँचा रहा है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' के सिद्धान्तानुसार इस समय इस हानि को रोकने के लिये मनुष्य समाज को मनुष्यजा चिकित्सा की अति को रोकने और दैवी चिकित्सा की ओर लाने की बड़ी आवश्यकता है। आथर्वणी और आँगिरसी चिकित्सा तो अभी और भी दूर के विषय हैं।

मनुष्य समाज यदि अपना कल्याण चाहता है तो उसे प्रथम अपने कल्याणदाता वेद और आयुर्वेद को उसके यथाथै रूप में समझना होगा। इनके सम्बन्ध में इस समय जो भ्रम फैला हुआ है उसी के निवारण के लिये हमने उपरोक्त वेद मंत्र प्रस्तुत किया है और आगे भी इस सम्बन्ध का कुछ इतिहास प्रस्तुत करते हैं।

वेद के आधार पर सब से पूर्व हमारे देश में ही आयुर्वेद शास्त्र का निर्माण हुआ और यहीं से यह विद्या चीन, मिश्र को ले जाई गई। जहाँ से फिर इसका प्रचार यूनान (ग्रीस) में हुआ और फिर यूरोप आदि देशों में फैली। इस प्रकार हमारा आयुर्वेद शास्त्र समस्त चिकित्सा प्रणालियों का जन्मदाता है। इस समय के बहुत से विदेशी शिक्षा से प्रभावित साहब लोग कदाचित हमारी इस बात पर नाक भौं चढ़ावें अतः कुछ विदेशियों के प्रमाण इस विषय में उपस्थित करते हैं :–

1. विदुषी मीनिङ्ग का कहना है "भारतीय आयुर्वेद साहित्य ने समस्त संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। जब बग़दाद के ख़लीफ़ा ने उसके ग्रंथों को एकत्रित करके उसी क्षेत्र से योग्यतम विद्वान वैज्ञानिकों को बुलाकर बग़दाद को विद्या का केन्द्र प्रतिष्ठित करने का यत्न किया (Ancient Medieval in Vol. 1, Page 353-354).

2. प्रोफेसर मैकडानल का कहना है :–

   हिन्दू आयुर्वेद विज्ञान का अरबों पर 700 ई० के लगभग प्रभाव पड़ा क्योंकि बग़दाद के खलीफा ने कितने ही ग्रंथों का अनुवाद कराया था।

3. अलबरुनी का कहना है :–

   जो कुछ भारत ने दिया वह दो मार्गों से बग़दाद पहुँचा। उस क्षेत्र में संस्कृत से अनूदित होकर तथा (भारतीय विद्वानों को बग़दाद के अस्पतालों का अध्यक्ष नियुक्त करके और उनके द्वारा अनुवाद कराके अरबी भाषा में आया (See Alberuni's India Vol. Page XXII.)

4. सर हंटर का कहना है :–

   " १७ वीं शताब्दी में यूरोप ने यह ज्ञान अरब वालों से लिया। "

5. डाक्टर मैकालेट साहब कहते हैं :–

   "All the Philosophers and Sages of antiquity went to India to study the science of life"

अर्थात–प्राचीन समस्त तत्वज्ञानी और महात्मा जीवन-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भारत जाते थे।

अपना आयुर्वेद शास्त्र इतना परिपूर्ण है कि हम यदि उसे फिर से विकसित कर लें तो न केवल हम अपने देश से आज के फैले हुये रोगों को कम कर सकेंगे किन्तु समस्त संसार के इस विषय में गुरु बन सकते हैं। इस समय विदेशों में केवल मनुष्यजा चिकित्सा और वह भी अति से ओत-प्रोत फैली हुई है क्योंकि मनुष्य सर्वज्ञ नहीं है अतः यह चिकित्सा भी दोषों से पूर्ण है। सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि मनुष्य ने ज्ञान के दाता अपने आदि गुरु वेद का सहारा छोड़ केवल अपनी बुद्धि से हर चीज़ को नापने का यत्न किया है अतः इस चिकित्सा विधि में लाभ की अपेक्षा हानियाँ अधिक बढ़ गई हैं। प्राचीन समय में आथर्वणी और आँगिरसी के अतिरिक्त दैवी चिकित्सा का बहुत प्रचार था। भोजन आदि में परिवर्तन अथवा उपवास तथा प्राकृतिक औषधि का प्रयोग उसके अंतर्गत है पर औषधि का प्रयोग विशेष आवश्यकता पर ही होता था। उस समय संसार रोगों से इतना पीड़ित नहीं था। हमारे ही देश में नहीं अपितु अन्य देशों में भी जहाँ हमारा प्रभाव पहुँचा था यही दस्तूर था।

ईसा के जन्म से 400 वर्ष पूर्व ग्रीस में पेरिक्लीज़ के समय में वहाँ के वैज्ञानिक ओर दार्शनिक हिपाक्रीट्स् (Hippocrates) का नाम बहुत प्रसिद्ध था। उसकी लिखी पुस्तकों से प्रमाणित होता है कि उस के समय में केवल 265 औषधियाँ काम में लाई जाती थीं। किन्तु वह भी मुख्यतया कुछ नये रोगों में ही विशेष आवश्यकता पर ही प्रयोग में लाई जाती थी (Hippocrates) हिपाक्रीट्स् की उन औषधियों की उपयोगिता पर विश्वास रखते हुये भी धारणा थी कि प्रकृति में ही रोग निवारण की शक्ति है ओर यह भी कि नये रोग स्वयं ही शरीर में एक प्राकृतिक ढंग से उभार लाकर शरीर के प्राकृतिक मार्गों से विकारों को बाहर निकाल देता है। चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वह उन परिवर्तनों का अनुमान पूर्व से कर ले जिससे वह उस प्राकृतिक तरीके को उसके काम करने में सहायता दे सके न

कि उसके विरुद्ध औषधि दे कर विकारों को निकलने से रोक दे। हिपाक्रीट्स् (Hippo-crates) के शिष्य भले ही रोगों के लम्बे चौड़े नामों से अनभिज्ञ हों। यह भी सम्भव है कि आजकल की भांति वह शरीर की रचना का इतना अच्छा ज्ञान न रखते हों पर वह शरीर से प्राकृतिक ढंग से निकलने वाले विकारों को प्राकृतिक ढंग से निकालने की क्रिया का ज्ञान ऐसा अच्छा रखते थे कि उनको किसी भी रोग की चिकित्सा करने में कोई कठिनाई न पड़ती थी और इस प्रकार वह संसार से रोग और मृत्यु की संख्या घटाने में निपुण थे। हिपाक्रीट्स् (Hippocrates) और उसके शिष्य चिकित्सा के समय भोजन देने में भी विशेष ध्यान रखते थे और विविध रोगों में न्यूनाधिक हेर-फेर करके भोजन देते थे। इस प्रकार रोग निवारण में वह प्राकृतिक साधनों को प्रथम और औषधि को द्वितीय स्थान देते थे और जीर्ण रोगों को तो प्रायः केवल नियमित भोजन, व्यायाम और अन्य प्राकृतिक साधनों द्वारा ही दूर करते थे। हिपाक्रीट्स् (Hippocrates) के पश्चात् रोम में अत्तकजेण्ड्राइन स्कूल के डाक्टरों ने औषधि प्रणाली वृद्धि पर ही अधिक ध्यान दिया। धीरे-धीरे धातु और विषैली पदार्थों की बनी औषधियाँ प्रयोग में आने लगीं जिनका सामूहिक नाम एलोपैथी (Allopathy) अर्थात् उल्टी चिकित्सा पड़ा। उन चिकित्सकों ने जो केवल जड़ी बूटी की बनी औषधियाँ व्यवहार में लाते थे इन विषैली औषधियों का बड़ा विरोध किया पर उनकी एक न चली क्योंकि यह विषैली औषधियाँ स्थूल दृष्टि से देखने में अति शीघ्र लाभ पहुँचाती थीं। लोग उसी से सन्तुष्ट होने लगे और सर्वदा के लिये आरोग्य कर देने वाली विधियों को भूलने लगे। जैसे-जैसे समय बीतता गया एलोपैथी का विस्तार बढ़ता गया पर ऐसे समझदार लोगों का नितान्त अभाव भी नहीं हुआ जो इन विषैली प्रत्यक्ष में लाभ दिखाने वाली पर वास्तव में हानि पहुँचाने वाली औषधियों का विरोध न करते रहे हों। ऐसे दीर्घदर्शी लोगों में जर्मन के एक प्रसिद्ध महाविद्वान और विचारक डा० हैनीमैन साहब एम० डी० का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप सन् 1784 ई० में ड्रेसडन में डाक्टरी करते थे। इनकी प्रैक्टिस खूब चल रही थी पर दुर्भाग्यवश

अथवा संसार के सौभाग्य से इनकी पुत्री को हैज़ा (Cholera) हो गया और प्रचलित एलोपैथिक बढ़िया से बढ़िया औषधि प्रयोग करने पर भी डाक्टर साहब उसे अच्छा न कर सके। इस प्रकार प्रथम बार डाक्टर साहब को अपनी औषधियों के ठीक प्रभाव को इतने निकट से देखने का अवसर मिला। इसे देखकर डाक्टर साहब की आत्मा ने कहा कि जिन औषधियों का प्रभाव अनिश्चित है उनके द्वारा मनुष्य की जान से खेलना ठीक नहीं। महान पुरुष ईशोपनिषद् के इस वाक्य को माना करते हैं कि आत्मा की आवाज़ को न मानने वाले लोग नीच योनियों में जाते हैं। अतः डाक्टर साहब ने चलती हुई प्रैक्टिस पर लात मार दी और केवल पुस्तकें लिख कर बड़ी गरीबी से जीवन-निर्वाह करने लगे। एक दिन जब वह डब्ल्यू कलन (W. Cullan) रचित डाक्टरी की मुख्य पुस्तक मेटेरिया मेडिका का अनुवाद जर्मन भाषा में कर रहे थे तो यह पढ़कर चकित हो गये कि कोन्नैन यदि किसी स्वस्थ मनुष्य को खिलाई जावे तो उसके शरीर में वही विकार पैदा हो जावेगा जिसको दबाने के लिये कोन्नैन प्रयोग की जाती है। इससे उनको एलोपैथिक चिकित्सा विधि से और भी घृणा हो गयी और उनको डाक्टरों के ऊपर आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी मात्रा में ऐसा विष मनुष्य के शरीर में भरा जाता है जो रोग को दूर नहीं करता किन्तु केवल दबाता है। उस दिन उनकी समझ में यह बात भली प्रकार घर कर गई कि विष की बनी औषधियाँ विनाशकारिणी होती हैं और रोग को अच्छा करने के बदले में केवल उसको दबाती हैं और शरीर में विष भर देती हैं। इस प्रकार रोग से कहीं अधिक घातक यह विषैली औषधियाँ ही होती हैं। इस प्रकार हैनीमैन साहब चिकित्सा के प्राकृतिक साधनों की ओर झुके और वेद तथा आयुर्वेद शास्त्र के सिद्धांत " समः समे शमयति" हेतु व्याधि विपर्यस्तु विपर्यस्तार्थ कारिणां" "विषस्य विषमौषधम्" के आधार पर एक नवीन चिकित्सा पद्धति का आविष्कार किया। जिसका नाम होम्योपैथी (Homoeopathy) अर्थात् सीधी चिकित्सा है। इस चिकित्सा विधि में विषैली औषधि दे कर रोग को दबाया नहीं

जाता किन्तु विकार को निकालने के लिये शरीर की प्राकृतिक शक्ति को उभारा जाता है।

जब एलोपैथिक औषधियों के कुप्रभाव का डा० हैनीमैन साहब को ज्ञान हो गया तो उन्होंने इस विषय पर पत्रों में लेख लिखे। इससे पेशेवर डाक्टरों में क्रोध की अग्नि इसी प्रकार भड़क उठी जैसे आज भारतवर्ष में एलोपैथी का विरोध करने पर डाक्टरों में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। डाक्टरों ने मिलकर हैनीमैन साहब को निकलवा दिया और एक निर्जन स्थान में अपनी प्रैक्टिस करने पर बाध्य कराया। पर 'सत्यमेव जयते' के सिद्धान्तानुसार उनकी प्रसिद्धि कठिन रोगों की अचूक चिकित्सा में बढ़ती गई जिससे प्रभावित होकर अंत को सरकार को अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ और सरकार ने न केवल अपनी आज्ञा वापस ली किन्तु उनका बड़ा सम्मान किया और आज अमरीका आदि देशों में होम्योपैथी को एक उच्च स्थान प्राप्त है। भारतवर्ष में भी यह चिकित्सा विधि बहुत प्रशंसा प्राप्त कर रही है।

केवल हैनीमैन साहब ही ने एलोपैथी का विरोध नहीं किया और भी अनेक विद्वान समय-समय पर इसकी हानियों को जानकर इसका विरोध करते रहे और कर रहे हैं। पाठकों की जानकारी के लिये उनमें से कुछ की सम्मति यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

1. अमरीका के प्रसिद्ध डाक्टर क्लार्क का कहना है कि चिकित्सकों ने रोगियों को लाभ पहुँचाने के प्रयत्न में इसके विपरीत बहुत हानि पहुँचाई है। उन्होंने ऐसे रोगियों के प्राण लिये जो यदि प्रकृति के भरोसे छोड़ दिये जाते तो अवश्य आरोग्य हो जाते। जिन्हें हम औषधि समझते हैं वह वास्तव में विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रा से रोगी की शक्ति का ह्रास होता जाता है।

2. डाक्टर होमस (Holmes) तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि सब एलोपैथिक औषधियाँ समुद्र में फेंक दी जातीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता।

3. डाक्टर अबरानकी (Oberanki) का विचार है कि चिकित्सकों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ रोगों की संख्या भी बढ़ती जाती है।

4. राय बहादुर डा० लक्ष्मी नारायण चौधरी रिटायर्ड सिविल सर्जन, जबलपुर लिखते हैं:–

   "तन्दुरुस्ती का मामला बहुत आसान है, लेकिन अफ़सोस है कि इन दिनों लोगों ने उसे बहुत कठिन बना दिया है। तन्दुरुस्त रहना ही शरीर की मामूली कुदरती हालत है, लेकिन इन्सान ने कुदरत के रास्ते में बहुत सी अड़चनें डाल रखी हैं। इसीसे इन दिनों बीमारियों की भरमार है। इलाज करने वालों ने इस उलझन को बढ़ाकर तन्दुरुस्ती के मामले को और भी पेचीदा कर दिया है। ....दवा (Allopathic) से कुछ भी फायदा नहीं हो सकता। मैं मामूली से लेकर कीमती दवाओं को अपनी ज़िन्दगी में अच्छी तरह आज़मा चुका हूँ। और मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि वे बेकार नहीं बल्कि नुकसानदेय भी हैं।

5. सर विलियम ओसलर (Osler) ने जो गत वर्षों के कदाचित संसार के सबसे बड़े डाक्टर कहे जाते हैं और जो अमरीका के जान हाफकिन्स युनीवर्सिटी तथा इंग्लैण्ड के आक्सफ़ोर्ड युनीवर्सिटी के चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं, आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को बड़े ज़ोरों से निन्दनीय बताया है और कहा है :–

   " We put drugs, of which we know little, into bodies, of which we know less."

   अर्थात– हम लोग औषधि जिसके बारे में हम कम ज्ञान रखते हैं, शरीर में जिसके बारे में हम और भी कम ज्ञान रखते हैं घुसेड़ते हैं।

इस प्रकार अनेकों वैज्ञानिक अपनी निष्पक्ष सम्मति एलो-पैथी के हानिकारक प्रभावों के सम्बन्ध में दे चुके हैं फिर भी हम उसके भुलावे में ऐसे पड़े हुये हैं कि

अपनी प्राचीन चिकित्सा प्रणाली को उन्नत करने के स्थान में उसी हानिकारक चिकित्सा प्रणाली का प्रचार देश के कोने-कोने में करना चाहते हैं। जहाँ एलोपैथी के सम्बन्ध में उच्च कोटि के विद्वान वैज्ञानिकों के यह विचार हैं वहाँ हमारे आयुर्वेद के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान क्या कहते हैं यह भी पढ़िये :–

1. अमरीका के प्रसिद्ध डाक्टर जी० ई० क्लाक, एम० ए०, एम० डी० लिखते हैं "यदि आधुनिक डाक्टर प्रचलित रसायन और औषधियों को छोड़ दें और चरक के अनुसार रोगियों की औषधि व्यवस्था करें तो जगत में शव वाहकों का कार्य बहुत कुछ कम हो जावे और घट जावे जीर्ण निर्बल रोगियों की संख्या"।

   यह ऐसे अमरीकन विद्वान की सम्मति है जिसने कदाचित् दोनों चिकित्सा प्रणालियों के परीक्षण करके न्यायप्रिय होने के कारण एलोपैथी के मुकाबले में आयुर्वेद को वैज्ञानिक बतलाया है। ऐसे व्यक्ति की सम्मति पर ध्यान न देकर हम उन वैज्ञानिकों का विश्वास करें जो भ्रमवश अथवा स्वार्थवश केवल एलोपैथी को ही वैज्ञानिक चिकित्सा बताते हैं और आयुर्वेद को बीते समय की चीज़ कहते हैं तो हमसे बढ़ कर मूर्ख कौन होगा और देखिये :–

2. जिस शल्य चिकित्सा को लोग एलोपैथी की सर्वश्रेष्ठ चीज़ समझते हैं उसके सम्बन्ध में मि० वेवर का कहना है "आज भी पाश्चात्य विद्वान भारतीय शल्य चिकित्सा से बहुत कुछ सीख सकते हैं जैसे कि उन्होंने कटी हुई नाक की विधि आयुर्वेद से सीखी है " (See Webers Indian Literature Page 260)

3. सर डब्लू हण्टर का कहना है "हिन्दू (आर्य) नाक-कान आदि की चीर-फाड़ और कृत्रिम रचना में विशेष निपुण थे जिसे कि यूरोपियन सज्जनों ने उनसे लिया है (See History of Sanskrit literature Page 247)

इतना कुछ लेने पर भी एलोपैथी अभी अपूर्ण है और वह आयुर्वेद से भिक्षा की याचना कर सकती है। यह हम ही नहीं किन्तु विलियम स्टर्लिंग इन शब्दों में कहते हैं :– "यकृत के विषय में हमें अभी बहुत कुछ सीखना है उसकी अनेक कार्य प्रणालियाँ हैं कुछ स्पष्ट हैं, और कुछ अस्पष्ट हैं।"

प्रत्येक एलोपैथिक डाक्टर का अनुभव होगा कि इसी कारण यकृत की चिकित्सा में वह प्रायः असफल ही रहा करते हैं जब कि आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इस प्रकार के रोग बड़ी सफलता के साथ दूर किये जा सकते हैं। केवल यकृत ही नहीं प्लीहा के कुछ कार्य भी अभी एलोपैथी ने नहीं जान पाये। आँत पुच्छ (Appendix) का उपयोग अभी एलोपैथी को ज्ञात ही नहीं अतः उसे वह निरर्थक अंग समझती है। क्षय रोग के विषय में एलोपैथी की असफलता जगत्प्रसिद्ध है। इस रोग की जो कुछ चिकित्सा उनके पास है उसके विषय में वैज्ञानिकों का यह कहना है कि अभी तक ऐसा कोई रस ईजाद नहीं हुआ जो शरीर के भीतर क्षय कीटाणुओं को मारे और शरीर को कोई हानि न पहुँचे। इसी प्रकार की अनेकों बातें हैं जिनके विषय में एलोपैथी मौन है। फिर भी यह पक्ष करना कि चिकित्सा सम्बन्धी हर साइंस को उसी समय सत्य माना जावे जब एलो-पैथी डाक्टर प्रमाणित कर दें, कितना अन्याय है। स्थिति इस प्रकार है कि वेद रूपी हिमालय पर्वत से अनेकों विज्ञान रूपी नदियाँ निकली हैं उनमें एक आयुर्वेद रूपी गंगा भी है जो अपने उद्गम स्थान पर पूर्ण पवित्र है आगे चलकर उसमें से अनेकों चिकित्सा रूपी नहरें निकालीं गयीं। इन नहरों में मनुष्यजा चिकित्सा रूपी पवित्र और अपवित्र नाले मिलते रहे। ऐसा ही एक नाला एलोपैथी का भी है पर एलोपैथी के नाले ने अभिमान में आकर अपने उद्गम स्थान आयुर्वेद रूपी गंगा तथा उसके उद्गम स्थान हिमालय रूपी वेद से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर केवल अपनी बुद्धि के बल से अनेकों बातें सम्मिलित कर ली हैं। धार से सम्बन्ध कट जाने के कारण इस नाले का जल इतना विक्षुप्त हो गया है कि उसकी बिना शुद्धि हुए वह मनुष्य समाज के लिये लाभ के स्थान पर हानि पहुँचा

रहा है। अब यदि उसे शुद्ध करना है तो उसका सम्बन्ध गंगा से मिलाकर पवित्र गंगा जल पर्याप्त मात्रा में उस नाले में बहाया जावे तब वह मनुष्य समाज के लिये हितकारी हो सकता है। अर्थात् एलोपैथी के सब नवीन आविष्कारों की जाँच वेद और आयुर्वेद के सत्य सिद्धान्तों से की जावे जो उसके अनुकूल हैं। उनके ग्रहण करने में कोई हानि नहीं पर हो इसके विपरीत रहा है आयुर्वेद के सत्य सिद्धान्तों को नवीन अधूरे विज्ञान से जाँच करने का प्रयत्न किया जा रहा है यही कारण है कि न तो आयुर्वेद की उन्नति होने पाती है और न इस विज्ञान से रोग और रोगियों की संख्या घटाई जा सकती है। ऊपर के इतिहास से यह बात भली प्रकार प्रकट होती है कि हमारा आयुर्वेद ही सब चिकित्सा विधियों का जन्मदाता है आज और उसका बचा खुचा साहित्य निष्पन्न पाश्चात्य विद्वानों को भी आकर्षित कर सकता है, इस समय हम जिस चिकित्सा विधि का वर्णन आगे करेंगे वह हमारे आयुर्वेद का ही एक अंग है पर वर्तमान समय में प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से जो चिकित्सा प्रणाली प्रचलित है उसका आरम्भ किस प्रकार हुआ इसकी कहानी भी बड़ी मनोरंजक है अतः अगले पाठ में उसका इतिहास लिखने के पश्चात् आगे चलेंगें।

पाठ 3

प्राकृतिक चिकित्सा

(Naturopathy)

जर्मनी में प्रेसनीज़ (Vincenz Pressnitz) नामक एक आठ वर्ष का बालक जिसका जन्म एक किसान के घर हुआ था एक दिन जंगल में गाय चरा रहा था कि उसने देखा कि एक हिरणी बुरी तरह लंगड़ाती हुई एक झरने के पास पहुँची। कोई तीस मिनट तक पानी में खड़े होने के बाद चली गई। जाते समय उसके लँगड़ाने में कुछ कमी थी। उसके हृदय में इसका कारण जानने की इच्छा हुई और इस बात को वह दूसरे दिन तक सोच रहा था कि उसने देखा कि वही हिरनी फिर उसी समय आई और उसी प्रकार कुछ समय तक पानी में खड़ी रहने के बाद फिर चली गई। अब नित्य का नियम हो गया कि प्रेसनीज़ हिरणी की प्रतीक्षा में उसी स्थान पर छिप कर खड़ा हो जाता और हिरणी नियत समय पर आती तथा पानी में खड़ी होने के पश्चात चली जाती। उसने यह भी देखा कि हिरणी का लँगड़ाना धीरे-धीरे कम हो रहा है। कोई तीन सप्ताह के पश्चात अन्त को एक दिन हिरणी आई और पानी में खड़े होने के पश्चात अपने चारों पैरों से उछलती हुई चली गई और फिर नहीं आई। इस घटना से तीव्र बुद्धि वाले बालक के हृदय पर जल के आरोग्य दायक गुणों का प्रभाव अंकित हो गया। जब प्रेसनीज़ 16 वर्ष का हुआ तो एक दिन आँधी आने से वह एक छप्पर के नीचे दब गया और उसकी चार पसलियाँ कुचल कर उसके शरीर में घुस गईं जिससे वह बुरी तरह घायल हो गया। उसे हिरणी वाली घटना याद थी। अतः वह सूती कपड़े की गद्दी पानी में भिगोकर अपने आहत अंग पर रखने लगा। गद्दी सूख जाती तो भिगो देता इस प्रकार कुछ दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

अब इसने अपनी बुद्धि पर और बल दिया और जल-चिकित्सा के रूप में दूसरे लोगों की भी चिकित्सा करने लगा। वह चिकित्सा केवल जल से करता था

और भोजन बहुत सादा देता था। इससे एक ओर तो जनता में इसकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी क्योंकि अनेक ऐसे रोगी भी अच्छे होते थे जिनको पढ़े लिखे डाक्टर विषैली औषधियों से अच्छा नहीं कर पाते थे। और यह देख कर बहुत से पढ़े लिखे डाक्टर भी उसकी विधि के परीक्षण करके अपने रोगियों को लाभ पहुँचाने लगे। दूसरी ओर कुछ पुराने विचार के डाक्टरों ने उसका घोर विरोध किया और उस पर अनेकों दोषारोपण कर उसे जेल भिजवाने का भी प्रयत्न किया पर "जाको राखे साइयां मार न सकिहै कोय" के सिद्धान्तानुसार हर बार इसी की जीत हुई और इससे उसकी ख्याति और गौरव और भी बढ़ गया।

प्रेसनीज़ की चिकित्सा प्रणाली में प्रधानतः जल का प्रयोग और भोजन सुधार था। पर जिन वैज्ञानिक डाक्टरों ने उसका सिद्धान्त अपनाया उन्होंने उपवास, एनीमा, प्रकाश, धूप, हवा, भाप, तरह-तरह के लैम्प, स्नान, पट्टियाँ और विश्राम इत्यादि और बातें भी इसमें जोड़ कर प्राकृतिक चिकित्सा का वर्तमान रूप बना दिया।

प्रेसनीज़ के पश्चात एक दूसरे स्थान लिएडविज़ (Lindwiese) नगर में जो जेकोस्लोवाकिया में है एक गाड़ी चलाने वाले ने जिसका नाम जोहान श्रोथ (Johannes Schroth) था अपने ऊपर इस चिकित्सा का परीक्षण किया। घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक बार श्रोथ के घुटने की गोल हड्डी (Patelia) पर उसे भारी चोट लगी। ऐसा अनुमान होता था कि वह सदा के लिये लँगड़ा हो गया। उसने एलोपैथी की बहुत सी औषधियाँ प्रयोग कीं पर किसी से लाभ न हुआ। अंत को एक साधु ने उससे ठंडे जल का प्रयोग करने को कहा जिससे वह पूर्ण आरोग्य हो गया। अच्छा होने पर वह इसके अधिक परीक्षण करने के विचार से वह इसका प्रयोग कुत्तों और घोड़ों पर करने लगा। जिसमें उसे बड़ी सफलता मिली। अब वह मनुष्यों की चिकित्सा भी जल द्वारा करने लगा जिनके आरोग्य होने पर उसकी ख्याति खूब बढ़ने लगी। इससे पढ़े लिखे डाक्टरों को बड़ा क्रोध आया और तरह-तरह के दोष लगा कर 20 वर्ष तक बेचारे को खूब सताया। यहाँ

तक कि अपनी संगठित शक्ति के बल पर उसे जेल तक भिजवा दिया। कदाचित् वह बदनाम अवस्था में मर जाता। पर वह भगवान के दिये जल के गुणों के आधार पर हज़ारों रोगियों को विषैली औषधियों के कुप्रभाव से बचा रहा था। अतः प्रभु ने उसकी इस प्रकार सहायता की कि सन् 1846 में वाटम्वर्ग (Wurttemberg) का ड्युक लड़ाई में बहुत बुरी तरह घायल हुआ। कई स्थानों पर उसका शरीर छत-विछत हो गया। बड़े से बड़े डाक्टरों ने तीन मास तक उसकी अच्छी से अच्छी चिकित्सा की परन्तु लाभ होने के स्थान में वह मृत्यु के निकट पहुँच गया।

जीवन से आशा रहित होकर ड्युक ने अंत को श्रोथ को दिखाया। उसने वचन दिया कि वह उसे अच्छा कर देगा और कुछ मास में उसे बिलकुल अच्छा भी कर दिया। इस घटना ने उसके शत्रुओं के मुँह बंद कर दिये। ड्युक ने उसकी ख्याति समस्त आस्ट्रियन फौज में फैला दी और वह अपने जीवन काल में ही बहुत ख्याति प्राप्त कर गया। उसकी इस चिकित्सा को जो प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंग है, श्रोथ चिकित्सा (Schroth Cure) कहते हैं।

श्रोथ के पश्चात इसका पुत्र इमेन्यून श्रोथ ने भी इसी विधि को अपनाया और लिएडविज़ में ही अपना केन्द्र स्थान बनाकर हज़ारों रोगियों को अच्छा करने लगा।

श्रोथ के समय में ही बवेरिया के एक पादरी फ़ादर नीप (Father Shastina Neepp) ने भी इस विधि का प्रचार असीम उत्साह से करना प्रारम्भ कर दिया और जड़ी-बूटी और जल के भिन्न-भिन्न प्रयोगों से उसे और भी उन्नतिशील बनाया (आयुर्वेद भी लगभग इसी प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा की आज्ञा देता है) उसी देश में आर्नल्ड रिक्ली (Arnold Rickli) नामक एक व्यापारी ने अपने नगर में सन् 1848 ई० में प्रकाश और वायु का सेनीटोरियम खोला जो अपने ढंग का प्रथम था। पहले पहल इसी ने यक्ष्मा (T.B.) से तथा दूसरे कठिन रोगों से

ग्रस्त मनुष्यों को प्रकाश और वायु में पूरा शरीर खोल कर रखने और निरामिष (बिना मांस का) भोजन खाने के सिद्धान्त का प्रचार किया।

जर्मनी के अन्तर्गत लिपज़िंग (Liepzing) नगर के मिस्टर लुई कूने (Louis Kuene) जो भारतवर्ष में जल-चिकित्सा के नाम से प्रसिद्ध हैं उन्होंने भी जल के प्रयोग सूर्य और उपयोगी भोजन के आधार पर इस चिकित्सा विधि का खूब प्रचार किया। वह किस प्रकार इसके भक्त बने उसकी कहानी इस प्रकार है–

मिस्टर लुई कूने के माता-पिता की मृत्यु एलोपैथिक डाक्टरों की चिकित्सा में हुई थी और फिर केवल 20 वर्ष की आयु में वह स्वयं सिर और फेफड़े के भयानक रोगों से पीड़ित रहने लगे, और इनके पेट में फोड़ा हो गया। अवस्था ऐसी खराब हो गई कि जीवन की आशा नहीं रही। सन् 1864 ई० में जब डाक्टरों ने इनकी बीमारी को असाध्य कह कर चिकित्सा से इन्कार कर दिया और यह जीर्ण-शीर्ण युवक मौत की प्रतीक्षा में बिस्तर पर पड़ा था। इसके कानों में जल-चिकित्सा की बात सुनाई पड़ी। क्योंकि उस समय प्रेसनीज़, श्रोथ, नीप आदि के बहुत से अनुयायी हो गये थे जिनमें मेलज़र (Meltzer) थियोडन हैन (Theodon Honni) रसे आदि बहुत नाम पा रहे थे। कूने सीधा इनके आश्रम में आया और अपनी चिकित्सा करने लगा। धीरे-धीरे इसकी पीड़ा शान्त होने लगी। वह अभी पूर्ण आरोग्य न होने पाया था कि इसी समय इसका भाई भी बहुत बुरी तरह बीमार हो गया। कूने बुद्धि का बड़ा तीव्र था अतः अपने चिकित्सकों के बताये हुये साधनों में कुछ अपनी बुद्धि से भी बातें मिलाकर उसने अपने को तथा अपने भाई को प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा पूर्ण आरोग्य कर लिया। उसके पश्चात उसने इस विषय का भली प्रकार अध्ययन किया और दूसरों पर भी प्रयोग किया। जब वह इसमें पूर्ण रूप से सिद्धहस्त हो गया तो अपने ही नगर में सन् 1883 में अपना चिकित्सालय खोल दिया। कूने का सिद्धान्त है कि सब रोगों की जड़ एक ही है अर्थात् शरीर में विकारों का होना जो आन्तरिक सफ़ाई से ठीक हो सकता है। इसके लिये वह चार प्रकार के स्नानों के साथ निरामिष भोजन पर भी बल

देते हैं। रोग निदान के लिये नाड़ी इत्यादि देखने के बजाय चेहरे की बनावट को देखकर रोग पहचानने के तरीके वह बतलाते हैं। उन्होंने The Science of Facial Expression नामक पुस्तक लिखी है और अपनी चिकित्सा का आविष्कारक अपने को बताते हुये The New Science of Healing में अपनी चिकित्सा की विधि का वर्णन किया है जिसका हमारे देश में हिन्दी में तथा उर्दू में अनुवाद हो चुका है और हमारे यहाँ पर यह चिकित्सा, जल-चिकित्सा, पानी का इलाज, अथवा टब बाथ इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है जो प्राकृतिक चिकित्सा का एक विशेष अंग है। विदेश में प्राकृतिक चिकित्सा का आरम्भ यद्यपि तीव्र बुद्धि अक्षर ज्ञान रहित लोगों से हुआ परन्तु आगे चलकर उसको अपनाने वाले बड़े-बड़े वैज्ञानिक और डाक्टरी की उच्च डिग्री प्राप्त चिकित्सक हुये हैं जैसे :–

1. जर्मन के प्रसिद्ध एलोपैथिक डाक्टर हैनरिक लहमन (Henrick Lahmann) को एलोपैथी से संतोष न हुआ और उन्होंने विषैली औषधि का सहारा छोड़ प्राकृतिक जीवन, वैज्ञानिक भोजन और स्वास्थ्य-वर्धक कपड़े पहिनने पर विशेष बल दिया है।

2. जर्मन के प्रोफेसर सर अरनाल्ड एहरेट (Sir Arnold Ehrat) ने अमरीका में प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा प्रचार किया और उन्होंने फलाहार तथा उपवास पर अधिक बल दिया है।

3. अमरीका के डाक्टर हेनरी लिंडलहार एम० डी० (Henry Lindlhar M. D.) ने भी प्राकृतिक चिकित्सा का खूब प्रचार किया। पहले यह भी एक एलोपैथिक के प्रसिद्ध डाक्टर थे पर पीछे प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी बन गये। उनका मत है कि यदि नया रोग औषधि अथवा इञ्जेक्शन से दबा दिया गया और विकार नहीं निकला तो वही जीर्ण रोग के रूप में प्रकट होता है।

4. लिवरपूल निवासी डा० जेम्स करी (Dr. James Curie) ने सन् 1757 में एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने ज्वर तथा अन्य रोगों में जल के

स्वास्थ्य-कर प्रभाव पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस पुस्तक का जर्मन भाषा में भी अनुवाद हुआ और वहाँ इस पुस्तक का बहुत प्रचार हुआ।

5. प्रोफेसर आर्टल (Ortal) ने जल पीकर सब रोगों की विधि पर बड़ा आन्दोलन किया जिससे जल के आरोग्यदायक गुण पर वहाँ की जनता का विश्वास बढ़ने लगा।

6. डा० डेवी (Dewey) ने भोजन और उपवास पर बहुत सी नई बातों की खोज की।

7. अमरीका के डा० कैलेब जेक्सन (Calab Jackson), डा० केलांग (Kellong), डा० टिलडन (Dr. Tildon), जर्मनी के डाक्टर श्वेनिंगर (Schweninger) इत्यादि अनेकों प्रसिद्ध डाक्टरों ने प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया और उसका खूब प्रचार किया है।

8. लिच फील्ड (Lich Field) के डाक्टर सर जान फ्लोअर (Sir John Floyer) को जब पता चला कि उपर्युक्त नगर के पास ही किसी झरने के पानी में स्नान करके कुछ लोगों ने स्वास्थ्य लाभ किया है तब उन्होंने इस बात की भली प्रकार जाँच की और परीक्षण से सत्य सिद्ध होने पर वह जल-चिकित्सा के भक्त बन गये।

9. हमारे देश के जबलपुर निवासी स्वर्गीय रायबहादुर डा० लक्ष्मी नारायण चौधरी रिटायर्ड सिविल सर्जन, युग पुरुष महात्मा गांधी, और मद्रास के श्रीयुत के० लक्ष्मण के नाम भी इस विषय में उल्लेखनीय हैं। इन महानुभावों ने एलोपैथिक विषैली औषधियों की निन्दा और प्राकृतिक चिकित्सा की प्रशंसा की है।

10. जर्मनी के प्रिंस बिसमार्क के चिकित्सक डा० श्वेनिर ने दि डाक्टर (The Doctor) नामक एक पुस्तक लिखी है। जिसमें उन्होंने आजकल की ज़हरीली तथा प्राण घातक औषधियों द्वारा चिकित्सा प्रणाली की कड़ी आलोचना की

है। इस सबका परिणाम यह है कि आज उन देशों में जिनको हम विज्ञान में बहुत उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ समझते हैं प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है।

इस प्राकृतिक चिकित्सा का आरम्भ जैसा कि ऊपर के इतिहास से विदित होता है केवल जल चिकित्सा से होता है और वह भी देखे दाखे अनुमानिक ढंगों से। चूँकि इस चिकित्सा के आविष्कारक ज्ञान के भंडार वेद से सीधा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके थे इस कारण धीरे-धीरे इस चिकित्सा विधि को उन्नत कर पाये हैं फिर भी अभी पूर्ण नहीं है। हम जिस आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन आगे करेंगे उस में यद्यपि इन महानुभावों के अनुभव से हमने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया है जिसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं, फिर भी हमारी प्रणाली का सीधा सम्बन्ध वेद तथा आयुर्वेद से है। अतः हम अगले पाठ में वैदिक जल चिकित्सा का वर्णन करके प्राकृतिक चिकित्सा के और अंगों पर प्रकाश डालेंगे।

पाठ 4

वैदिक-जल-चिकित्सा

आयुर्वेद में जल का प्रयोग चिकित्सा रूप में इतने स्थानों पर बताया गया है कि यदि हम उनका उल्लेख यहाँ करने लगें तो एक बड़ा पोथा इसी विषय का बन जावेगा। अतः हम इस विषय को यहाँ नहीं छेड़ सकते। जिन सज्जनों को इसमें शंका हो वह किसी भी वैदिक ग्रंथ को उठाकर उसमें जल के प्रयोग, वाथ, पट्टी, तरारे इत्यादि के रूप में देख लें। इस पाठ में प्रथम तो हमें यह दिखाना है कि जल-चिकित्सा का प्रारम्भ वेद से होता है और साथ ही यह भी बताना है कि आधुनिक काल के जल-चिकित्सक जितने स्नान इत्यादि बताते हैं वेद में इसके अतिरिक्त और भी अनेकों प्रकार के स्नानों का वर्णन है। इसकी पूर्ण खोज तो जब ही हो सकेगी और उसका पूर्ण लाभ भी तब ही जनता को मिल सकेगा जब वेद के और आधुनिक विज्ञान के निष्पत्त विद्वानों को एक साथ बिठाकर भारत सरकार अथवा कोई विद्या-प्रेमी पूँजीपति अन्वेषण करावेगा पर जो कुछ हम अपनी अकेली शक्ति से कर सके हैं उसका कुछ भाग पाठकों के समक्ष रखते हैं। देखिये वेद इस विषय में क्या कहता है–

(1) अपस्त १ तरमृत मरसु मेष जम।
अपामुत प्रशस्ति भिरश्वा भवथ वाजिनी
गावो भवथ वाजिनीः।। (अथर्व का १ सू० ४ मं० ४)
(अर्थ)–जल के बीच में रोग निवारक अमृत रस है और जल में भय जीतने वाली औषधि है इत्यादि।

(2) आपो हिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
मुहे रणाय चक्षसे ॥ (अथर्व का १ सू० ५ मं० १)
भावार्थ–जल निश्चय करके सुखकारक होता है उससे बड़ा पराक्रम और शक्ति तथा दर्शन की शक्ति उत्पन्न हो सकती है।

वेद के इस विज्ञान के आधार पर जहाँ हमने वृद्धावस्था में अपनी गिरती हुई ज्योति को कई बार संभाला है वहाँ हमने काले मोतियाबिंद के रोगियों को जिनको आँख के विशेषज्ञ आपरेशन से भी सफलता की आशा न दिखाते थे, जल चिकित्सा से लाभ पहुँचाया है। एक माता 75 वर्ष की आयु होने पर मरीं और 20 वर्ष पूर्व मोतिया बिंद हो जाने पर भी बराबर देखती हुई मरीं।

(3) अप्सु मे सोमो अववीदन्त विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशभुवम ॥ (का १ सू० ६ मं० २)
भावार्थ–(सोमः) बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ने (चन्द्रमा व सोमलता ने) (मे) मुझे (अप्सु अन्तः) व्यापन शील जलों में (विश्वानि) सब (भेषजा=०–नि) औषधियों को (च) और (विश्व शम्भुवम) संसार के सुखदायक (अग्निम) अग्नि (बिजली की पाचन शक्ति) को बताया है।

इस मंत्र का पूर्ण भाव तो अभी समझाने के लिये ऋषि दयानन्द सरीखे अखंड ब्रह्मचारी और विद्वान योगी की आवश्यकता है। पर हम जो कुछ समझ सके हैं उसी के आधार पर मंदाग्नि तथा संग्रहणी के कठिन रोगी लाभ प्राप्त कर चुके हैं और दस्तों के अनेकों ऐसे रोगी जिनके शरीर पर सूजन आ चुकी थी और सन्निपात हो चुका था जिनको डाक्टर व वैद्य असाध्य कह चुके थे आरोग्य हो चुके हैं।

(4) शं नो दे वी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
श यो रभि स्त्रवन्तुनः।। (का १ सू० ६ मं० १)
भावार्थ–दिव्य गुण वाला जल हमारे अभीष्ट सिद्धि के लिये और पान व रत्ता के लिये सुखदायक होवे और हमारे रोग की शान्ति के लिये और भय दूर करने के लिये सब ओर से सुख की वर्षा करें। इसी प्रकार के अनेकों मंत्र वेद में जल-चिकित्सा के सम्बन्ध में हैं। इस समय के जल-चिकित्सकों

को वेद का ज्ञान न होने के कारण अनेक रोगों की ठीक चिकित्सा का ज्ञान अब तक नहीं हो पाया है उदाहरणार्थ हम यहाँ कुछ मंत्र प्रस्तुत करते हैं।

हृदय रोग पर जल-चिकित्सा

(5) हिमवतः अस्रवन्ति सिन्धी समत संगमः
आपो हम हय वद देवी दद्दन हद्योत भेषजम ॥
अर्थ–हिम (बर्फ) वाले पर्वतों से जो जल धारायें बह कर आती हैं उनका बहने वाले प्रवाहों में एक ही साथ मेल हो जाता है तब दिव्य गुणों (विद्युत-पूर्ण) से युक्त वे जल मुझे हृदय की पीड़ा के रोग को अच्छा करने का लाभ देते हैं।

नोट– यह जल-चिकित्सा मि० लुई कूने के चारों बातों के अतिरिक्त है। और यह टब में बैठकर नहीं किन्तु बहती नदी गंगा यमुना के संगम पर बैठ कर धार का वेग हृदय पर लेकर होती है। और हृदय के अनेकों प्रकार के रोगों को अच्छा कर सकती है।

उन्माद (हिस्टीरिया) इत्यादि रोग पर वैदिक जल-चिकित्सा

(6) पुनस्त्व डुरप्सुरसः पुनरिन्द्रः पुन भर्गः।
पुनस्त्व द्विश्वे देवा मथानुन्म दिवो ससि ॥
(अथर्व का ६ सू० १११ मं० ४)
अर्थ–जल धारायें तुझे बार-बार चेतना प्रदान करें। इन्द्र वायु (बिजली तथा शुद्ध वायु) चेतना प्रदान करे। पुष्टि कारक अन्न तुझे चेतना प्रदान करें। जिससे तू उन्मादरहित हो जावे। इसका अभिप्राय यह है कि उन्माद रोग में गंगा इत्यादि पवित्र नदियों का नियम-पूर्वक स्नान करना और शुद्ध वायु में भ्रमण करना तथा विद्युत का प्रयोग करना और पुष्टिकारक अन्न खीर इत्यादि वैद्य की सम्मति अनुसार खाना रोग को दूर कर देता है। यह जल-चिकित्सा भी मि० लुई कूने की बातों के अतिरिक्त है तथा इसके भोजन में भी बहुत अन्तर है। जहाँ मि० लुई कूने प्रत्येक रोगी को एक सा

भोजन बताते हैं वहाँ हमारे आयुर्वेद शास्त्र में रोगों के लक्षणानुसार भोजन भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। मि० लुई कूने का बताया भोजन जहाँ किन्हीं रोगों में अमृत का काम करता है वहाँ किन्हीं में विष भी सिद्ध होता है। यह हम अपने अनुभव के अधार पर लिख रहे हैं।

क्षय रोग के आरम्भ में जल-चिकित्सा

(7) यन्मे अद्योरादि द्योत पाष्णायोः अपदोश्चपत।
आपस्तत सर्वे निष्करन भिषजां सुमषि कृमाः ॥

(अथर्व का ६ सू० २४ मं० २)

अर्थ–जो रोग मेरे आँखों, एड़ियों, और पैरों के अगले भागों में जलन उत्पन्न करता है उस सब रोग को जल धारायें दूर कर देती हैं क्योंकि वे ही सब औषधियों में उत्तम रोग की चिकित्सा करने वाली हैं। जो लक्षण ऊपर बताये हैं वह यक्ष्मा रोगी में प्रायः आरम्भ से अथवा कभी-कभी सम्प्राप्त अवस्था में भी पाये जाते हैं। इससे विदित होता है कि यक्ष्मा रोग में भी जल-चिकित्सा उपयोगी है। परीक्षण से यह वेद वाक्य पूर्ण सत्य सिद्ध हो चुका है। इन प्रमाणों से पूर्णतया सिद्ध होता है कि जल-चिकित्सा का आदि स्रोत वेद है और विदेश में अथवा उसके आधार पर हमारे देश में जो जल-चिकित्सा इस समय प्रचलित है वह अपूर्ण है। जल-चिकित्सा का पूर्ण लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक है कि हम वेद तथा आयुर्वेद से जल-चिकित्सा को खोज कर संसार को लाभ पहुँचावें। एक भूल जो विदेशी जल-चिकित्सा के अनुयायी करते हैं वह यह है कि जल-चिकित्सक हर रोग में और उसकी हर अवस्था में जल-चिकित्सा का ही प्रयोग करते हैं और सब चिकित्सकों की बुराई करते हैं पर वेद के आधार पर हमारा मत यह है कि चिकित्सा रूपी मशीन का एक अंग और बहुत उपयोगी अंग जल-चिकित्सा है। पर दूसरे अंग भी निरर्थक नहीं हैं। जिस प्रकार मशीन का हर पुरजा अपने स्थान पर अपनी महत्ता रखता है उसी प्रकार जल-चिकित्सा अपने स्थान

पर महत्ता रखती है और दूसरी चिकित्सायें मशीन के अन्य पुर्जों की भाँति अपने-अपने स्थान पर उपयोगिता रखती हैं। इससे जल-चिकित्सा की महत्ता में कोई अन्तर नहीं आता। वेद से सीधा ज्ञान प्राप्त न करने के कारण मि० लुई कूने ने प्राकृतिक भोजन के सम्बन्ध में एक बड़ी भूल की है जिसका अनुकरण करके सैकड़ों रोगी हानि उठा रहे हैं। वह यह है कि उन्होंने मांस को अप्राकृतिक भोजन बता कर उसका बड़े वेग से निषेध किया है पर अण्डे को भोजन का अंग मान लिया है। अण्डे के भोजन में क्या हानियाँ हैं यह तो हम अपने ग्रंथ "आरोग्य-शास्त्र" में लिख चुके हैं पर साधारण बुद्धि से भी यह भली प्रकार समझ में आती है कि जिस प्रकार मांस अप्राकृतिक भोजन है उसी प्रकार अण्डा भी अप्राकृतिक भोजन है। जल-चिकित्सा का पाठ समाप्त करने से पूर्व जल के तापमान और प्रभाव के सम्बन्ध में यहाँ पर लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि आगे चिकित्सा खंड में जल-चिकित्सा के प्रयोगों में इन बातों की जानकारी आवश्यक होगी।

ठंडे व गर्म पानी की जाँच

आधुनिक युग में पानी की गर्मी सर्दी जानने का भी एक थर्मामीटर बन गया है जिसके द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि किस डिग्री फार्नेहाइट का यह पानी है पर हर स्थान पर वह प्राप्त नहीं हो सकता। भारत जैसे निर्धन देश में पैसे का प्रश्न भी उसकी प्राप्ति में रुकावट डालता है। अतः यहाँ बिना थर्मामीटर के जानने की विधि लिखी जाती है।

(1) बहुत ठंडा पानी – लगभग 32 से 50 डिग्री फ० हा०

(2) ठंडा पानी – लगभग 50 से 65 डिग्री फ० हा०

(3) साधारण ठंडा पानी – लगभग 65 से 80 डिग्री फ० हा०

(4) नाम के लिये ठंडा पानी — लगभग 80 से 92 डिग्री फ० हा०

(5) न ठंडा न गर्म पानी — लगभग 92 से 97 डिग्री फ० हा०

(6) मामूली गर्म पानी — लगभग 98 से 100 डिग्री फ० हा०

(7) गर्म पानी — लगभग 100 से 104 डिग्री फ० हा०

(8) बहुत गर्म पानी — लगभग 104 डिग्री फ० हा० से अधिक।

जल के प्रयोग से जल के शीतोष्ण होने से रोगी की अवस्था विशेष और प्रयोग के समय से भिन्न-भिन्न प्रभाव होते हैं उनको यहाँ बताते हैं। हर प्रयोग की दो प्रतिक्रियायें होती हैं। पहली– थोड़ी देर तक टिकने वाली और उसके पश्चात ही दूसरी– व्यापी और टिकाऊ। जैसे बरांडी पीने से पहले रक्त संचार बढ़ कर गर्मी मालूम होती है। फिर कुछ समय के पश्चात रक्त संचार साधारण से भी कम हो जाता है और सर्दी अधिक लगती है। इसी कारण शराबियों को सर्दी के रोग निमोनिया इत्यादि और अंत में नाड़ी संस्थान के रोग पक्षाघात इत्यादि अधिक होते हैं।

इसी प्रकार ठंडे पानी से स्नान करने से पहले ठंड लगती है। यह पहली प्रतिक्रिया है जो थोड़ी देर रहती है। इसके पश्चात ही शरीर में गर्मी छा जाती है। यह दूसरी प्रतिक्रिया टिकाऊ है। इस दूसरी प्रतिक्रिया पर ही (खाने, पीने, जल प्रयोग आदि सभी विषयों में) प्राकृतिक चिकित्सा में बल दिया जाता है। याद रखना चाहिये कि प्रायः यदि पहली प्रतिक्रिया आराम की होती है तो दूसरी दुःखद। और यदि पहली प्रतिक्रिया दुःखद होती है तो दूसरी टिकाऊ, सुखद और रोग नाशक होती है।

बहुत थोड़ी देर (5 से 15 सेकिंड) के लिये ठंडे पानी के प्रयोग का प्रभाव

1–खाल की हरकत को बढ़ाता है। 2– शरीर का ताप बढ़ाता है। 3–रक्त चाप को बढ़ाता है। 4–नाड़ी संस्थान को बल पहुँचाता है। 5–हृदय की गति को

धीमा और मजबूत करता है। 6–मांस पेशियों को उत्तेजित करता है। 7–खाल के पास की रक्त की नालियों को फैलाता है। 8–कोषों के बनने की क्रिया को उत्तेजित करता है। 9–सांस को धीमा और गहरा करता है।

अधिक देर के लिये ठंडे पानी के प्रयोग का प्रभाव

1–शरीर का ताप घटाता है। 2–खाल की क्रिया को कम करता है। 3–रक्त चाप को घटाता है। 4–नाड़ी संस्थान पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता। 5–हृदय की गति को कमज़ोर करता है। 6–मांस पेशियों को सिकोड़ता है। 7–त्वचा के पास की रक्त नालियों को सिकोड़ता है। 8–कोषों के बनने की क्रियां को मंद करता है। 9–मांस को धीमा और कमज़ोर करता है।

बहुत थोड़ी देर (5 से 15 सेकिंड) के लिये गर्म जल के प्रयोग का प्रभाव

1–शरीर की गर्मी कम करता है। 2–खाल की हरकत को धीमा करता है। 3–रक्त चाप पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता। 4–नाड़ी संस्थान को उत्तेजित करता है। 5–हृदय की गति को तीव्र करता है। 6–मांस पेशियों को सिकोड़ता है। 7– त्वचा की पास वाली रक्त की नालियों को संकुचित करता है। 8–कोषों के बनने की क्रिया पर बहुत कम प्रभाव डालता है। 9–साँस को उत्तेजित करता है।

अधिक देर (2 से 10 मिनट) के लिये गर्म जल के प्रयोग का प्रभाव

1–शरीर का ताप बढ़ाता है। 2–त्वचा की हरकत को कम करता है। 3–रक्त चाप को घटाता है। 4–नाड़ियों में थोड़ी शिथिलता (सुस्ती) लाता है। 5–हृदय की गति को तेज़ और कमजोर करता है। 6–मांस पेशियों को ढीला करता है। 7–

खाल के पास की रक्त नालियों को फैलाता है। 8–कोषों के बनने की क्रिया को उत्तेजित करता है। 9–सांस को तेज और कमजोर करता है।

इस प्रकार इस सिद्धांत को समझ कर प्रारम्भ से ही किसी भी प्रकार के जल के प्रयोग में अधिकता न करना चाहिये। हर क्रिया की प्रतिक्रिया का हो जाना आवश्यक है। ठंड के पश्चात गर्मी और गर्मी के पश्चात ठंडक पहुँचानी चाहिये। बहुत बूढ़े और निर्बल रोगियों के लिये बहुत गर्म और बहुत ठंडे जल का प्रयोग हानिकारक होता है। धीरे-धीरे अभ्यास डालते हुये पानी की गर्मी या ठंड को बढ़ाना चाहिये।

पाठ 5

अमरीका का न्यू हाइजीन ट्रीटमेण्ट

जैसा कि अगले पृष्ठों में बताया जावेगा वस्ती कर्म आयुर्वेद प्राकृतिक चिकित्सा में प्राचीन समय से प्रयोग किया जाता था। वेद तक में इसका वर्णन है और इसका इतना प्रचार हमारे देश में रह चुका है कि साधु सन्यासी और योगी जन बिना किसी यंत्र की सहायता के केवल शरीर की नाड़ी दबा कर इस क्रिया को कर लेते थे आयुर्वेद में इसका जिस प्रकार वर्णन है वह अगले पाठ में बतलायेंगे। वर्तमान समय में इसका आविष्कार जिस ढंग से हुआ है और न्यू हाइजीन ट्रीटमेण्ट के नाम से एक पृथक चिकित्सा प्रणाली का रूप इसने धारण किया है उसकी कहानी जहाँ मनोरंजक है वहाँ इसके गुणों पर प्रकाश डालने वाली है। अतः उसे यहाँ वर्णन करते हैं। इसके आविष्कारकों में न्यूयार्क अमरीका के डाक्टर ए० विलफोर्ड हाल का स्थान कदाचित सबसे पहला है। आविष्कारक तो और भी कहे जा सकते हैं पर सबसे पहले प्रशंसित डा० साहब ने ही इसको अकाट्य प्रमाणों और अपने 40 वर्ष के अनुभव के साथ जनता के सामने पुस्तक रूप में रखा और बड़े बल-पूर्वक घोषित किया:–

समस्त रोगों की चिकित्सा स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन के लिए मैंने नवीन-विधि खोज निकाली है

इस पुस्तक में डा० साहब के अपने निजी अनुभव तथा उन रोगियों के अनुभव जिनको डाक्टर साहब ने इन चालीस वर्षों में अच्छा किया छापे थे। यह पुस्तक छोटी थी मूल्य भी अधिक था और साथ ही ग्राहक को एक स्वीकार पत्र लिखना पड़ता था कि वह इस विधि को अपने निकट सम्बन्धियों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को न बतावेगा। फिर भी वह ऐसी आकर्षक सिद्ध हुई कि हज़ारों की संख्या में हाथों हाथ बिक गई। कहा जाता है कि इस पुस्तक के द्वारा लगभग पाँच लाख मनुष्यों ने असाधारण सफलता के साथ इससे लाभ उठाया

और लगभग 20 सहस्त्र स्त्री पुरुषों ने तो उसकी सफलता का वर्णन अपने प्रमाण पत्रों द्वारा किया जिनमें लगभग 1 सहस्त्र ऐसे व्यक्ति हैं जो विज्ञान और अन्य विद्याओं के प्रसिद्ध पंडित तथा प्रतिष्ठित पादरी हैं और इन आरोग्य हुये लोगों में लगभग सभी प्रकार के रोगों के रोगी थे। यहाँ तक कि सबसे घातक क्षय रोग के रोगी भी इसी विधि से आरोग्य हुये थे। स्वयं डाक्टर हाल साहब ने भी क्षय रोग की असाध्य अवस्था से अपने आप को इस नवीन विधि से बचाया था। डा० हाल साहब कोई साधारण व्यक्ति नहीं किन्तु विश्व विद्यालयों से पी० एच० डी०, एल० एल० डी० की डिग्री पाये हुये अनेक पुस्तकों के लेखक हैं। वे अपनी कहानी इस प्रकार वर्णन करते हैं कि उन तीस वर्ष की आयु में उनको ज्ञात हुआ कि क्षय रोग ने बहुत बुरी तरह से दबोच लिया है। इससे पूर्व उनके बड़े भ्राता इसी रोग से जान दे चुके थे। अब उन्होंने अपने पारिवारिक डाक्टर से अपना निरीक्षण कराया। डाक्टर ने साफ़ बता दिया कि उनका रोग उसी प्रकार बढ़ चुका है जैसा उनके स्वर्गीय भ्राता का था और कहा कि बतौर डाक्टर के मैं कोई आशा नहीं दिखा सकता किन्तु मित्र रूप में परामर्श दिया कि अपना प्रबन्ध ठीक कर लो और अपने आपको केवल कुछ दिन का मेहमान समझो। इसके पश्चात कुछ और डाक्टरों से भी परामर्श किया गया और अन्त को मेडिकल बोर्ड से निरीक्षण कराया गया जिसमें से प्रत्येक ने पृथक पृथक फुफ्फुस यन्त्र से निरीक्षण करने के पश्चात् सम्मति दी कि एक फेफड़ा बहुत कुछ खराब हो चुका है और दूसरा भी प्रभावित हो रहा है और बताया कि डाक्टरी द्वारा आरोग्यता प्राप्त करने की कोई आशा नहीं है। यदि बहुत प्रयत्न किया जावे तो सम्भव है कि एक वर्ष तक और जीवन चल जावे (हमारे देश के ऐसे चिकित्सकों को जो रोगी को ठीक बात न बता कर अन्त समय तक इंजेक्शन लगाते रहते हैं इससे शिक्षा लेनी चाहिये) डाक्टर हाल ने लिखा है "उस समय मेरे शरीर पर से मांस बिल्कुल कम हो गया था और मेरी सूरत एक पंजर की भाँति बन गई थी। चेहरे पर जीवन के चिन्ह नहीं रहे थे और शरीर में इतनी शक्ति भी नहीं रही थी कि कमरे से बाहर बिना चार बार दम

लिये जा सकूं और मेरे शरीर का भार घटते घटते केवल डेढ़ मन रह गया था।" उस समय डा० हाल की यद्यपि शारीरिक अवस्था बहुत बिगड़ चुकी थी और डाक्टरों के निराश करने से स्वाभाविक रूप में उन्हें उत्साहहीन हो जाना चाहिये था पर वह ईश्वर विश्वासी थे इस कारण उनका आत्मिक और मानसिक बल बहुत बढ़ा हुआ था और उनमें धर्म के प्रथम लक्षण धृति ने भली प्रकार घर किया हुआ था। अतः डा० हाल ने दृढ़ निश्चय किया कि मैं डाक्टरों के निश्चय के आगे सर न झुकाऊंगा और तपेदिक तथा उससे उत्पन्न होने वाले रोगों से मैं कदापि प्राण न दूँगा किन्तु उस घातक शत्रु का पूरा विरोध करके अपने जीवन को बचाऊंगा पर इसके लिए उपाय क्या है यह प्रश्न डा० साहब को परेशान कर रहा था। डा० साहब को विश्वास हो चुका था कि विषैली औषधियों पर भरोसा करना तो व्यर्थ है क्योंकि इनके विशेषज्ञ ही अपने आपको इस विषय में लाचार पाते हैं साथ ही अपने बड़े भ्राता का केस भी डा० साहब को इस चिकित्सा विधि से निराश कर रहा था। डा० साहब सोचते थे कि एलोपैथी के अतिरिक्त कोई और ऐसी चिकित्सा विधि हाथ आ जावे जिसका कुछ थोड़ा सा वर्णन चिकित्सा-शास्त्र में किया गया हो। पता नहीं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने किन ग्रन्थों का अध्ययन किया पर उनका लिखना यह है कि मुझे सबसे पहले यह सूझी कि प्रथम रोग-कीटाणुओं की वृद्धि को किसी प्रकार रोका जावे और फिर भीतर के वर्तमान कीटाणुओं को रक्त के भ्रमण में मिलाकर बाहर फेंका जावे ताकि वह हर समय अपना विषैला प्रभाव शरीर में न फैला सकें।

दूसरी बात जो डा० साहब को सूझी यह थी कि मनुष्य के शरीर में अनेकों रोग पेट के विकार से ही आरम्भ होते हैं। जिनका कारण यह है कि कोलन (मलाशय) में मल रूपी विकार आंतों की तह में चिपट जाते हैं और उनके सड़ने से जो गैस उत्पन्न होती है शरीर के बहुमूल्य अंगों को मैला गंदा और फिर अन्त को नष्ट कर देती है।

यह कीड़े जिसको हम विज्ञान की भाषा में जर्म्स कहते हैं आंतों और कोलन के भीतर उत्पन्न होने से बढ़ने लगते हैं और जितना समय तक मल निकलने का प्राकृतिक मार्ग किसी कारण वश रुका रहता है यह कृमि लाखों, हज़ारों और करोड़ों की संख्या में बढ़ते जाते हैं और रक्त के भ्रमण के साथ सारे शरीर में फैलते हैं। यों तो यह शरीर के किसी भी भाग में ठहर कर रोग उत्पन्न कर सकते हैं, पर जोड़ों और बड़ी २ गिल्टियों में अपना विशेष स्थान बनाकर उनको नष्ट भ्रष्ट करने में सुगमता से सफल हो जाते हैं। जब कोलन का मार्ग रुक जाता है और वह अपना निश्चित कार्य करने में सुस्ती करता है तो रक्त दूषित होने के कारण सारे शरीर में सुस्ती और उदासी छा जाती है। छोटी आंतों में विकारों के जमा होने के कारण स्थान खाली नहीं रहता तब वह आंते नवीन भोजन लेने से इन्कार करती है फिर भी ज़बरदस्ती भोजन डाला जाता है तब वह अपना काम ढीला और चाल सुस्त कर देती हैं। इससे आमाशय में भोजन पड़ा हुआ देर तक सड़ता है और उसमें भारी पन आ जाता है तथा खट्टी डकारें आने लगती हैं।

देखा जाता है कि भोजन के देर तक एक अवस्था में पड़े रहने से जोश या उबाल सा उत्पन्न हो जाता है। इसके कारण जहां अधपची विषैली लुग्धी नीचे जावेगी वहां आमाशय में दर्द, दिल में जलन और श्वांस द्वारा दुर्गन्धित वायु निकल सकती है। जैसा कि अन्यत्र बताया गया है आंतों में जब ऐसी विषैली खुराक किसी प्रकार प्रविष्ट होती है तो आस पास की रस शोषक गिल्टियाँ उसी सड़े भोजन में से रस चूस चूस कर रक्त में भेजती हैं। अतः इस सड़े रस का रक्त भी विषयुक्त बनेगा और उसी रक्त से सारे अंगों का पोषण होगा जिससे सारे अंग निर्बल हो जावेगे। स्वयं आमाशय भी इसी रक्त से पोपित होता है अतः वह भी और निर्वल हो जावेगा। सब अंगों के निर्वल होने से युवावस्था में ही बुढ़ापे के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं जिनको दूर करने को लोग बहुमूल्य शक्ति वर्धक टानिक पीते अथवा इंजेक्शन लगवा कर अपने अंगों से ऐसे ही अधिक काम लेने का प्रयत्न करते हैं जैसे कोई कोचवान थके और निर्बल घोड़े को चाबुक मार मार

कर चलावे, जिसके परिणाम स्वरूप अन्त को घोड़ा ठोकर खाकर गिरेगा और जान छोड़ देगा। इसी प्रकार इन टानिक या इंजेक्शन के भरोसे जीवन निर्वाह करने वालों का जीवन शीघ्र ही हृदय की गति बंद होने आदि के रोगों से समाप्त हो जाता है। ऐसे ही लोगों के प्रायः फेफड़े, वृक्क, अथवा यकृत खराब हो जाते हैं और किसी भी संक्रामक रोग के कृमियों से जब ऐसे व्यक्ति का सम्पर्क होता है तो वह कोड़े विकारों का भोजन पाकर ऐसे मनुष्य के शरीर में बढ़ने लगते हैं क्यों कि अशुद्ध रक्त से पोषण पाने के कारण वह सभी अंग और शक्तियाँ बलहीन हो चुकी हैं जो इन रोग के कीड़ों को शरीर में मार देती हैं या भगा देती हैं। डा० हाल के मन में जब यह सिद्धांत भली प्रकार घर कर गया तब वह सोचने लगे कि यदि मैं इन कीड़ों के भोजन विकारों को शरीर से निकाल दूँ और फिर मैं शुद्ध वायु में श्वांस लेकर और प्राकृतिक भोजन को नियम पूर्वक करके नवीन विकार शरीर में एकत्रित न होने हूँ तो यह कृमि बिना भोजन पाये स्वयं ही मर जावेगे। अब इसने विचार किया कि विकारों का भंडार कोलन है इसी के भरे हुये होने के कारण इन कृमियों ने मेरे फेफड़े और यकृत आदि को रोगी बनाया है। अतः सर्वप्रथम कोलन की जो मेरे शरीर के मल की नाली है सफ़ाई होना आवश्यक है। इस प्रकार के विचारों में 8-10 दिन बीत गये यद्यपि उन्हें इन विचारों से अपने जीवन को स्थिर रखने की आशा की एक किरण दिखने लगी थी पर कार्य किस प्रकार हो यह समझ में नहीं आता था। कोलन की सफ़ाई के सम्बन्ध में जब वह रेचक औषधियों के विषय में सोचता था जिनका उसे अपनी बीमारी में पर्याप्त अनुभव हो चुका था तो प्रथम तो उसके केस में तीव्र से तीव्र रेचक औषधियां दस्त कराने में असफल हो चुकी थीं दूसरे जिस प्रकार वह दस्त लाती है उस पर ध्यान देने से डा० हाल जैसे रोगी का जीवन इन औषधियों की क्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा ही समाप्त होने का भय था। इससे डा० हाल ने विचार किया कि मल की सफाई के लिये प्रकृति ने जल सबसे उत्तम वस्तु बनाई है और सौभाग्य से कोलन शरीर का ऐसा अंग है जिसमें बाहर से जल पहुँचाकर उसे

धोया जा सकता है। अतः डा० हाल ने मामूली पिचकारी से पहले दिन केवल डेढ़ पाव पानी (गर्म) अपनी गुदा द्वारा कोलन में पहुँचाया कब्ज से पुट्ठे इतने तने हुए थे कि यह क्रिया भी बिना कष्ट के न हो सकी। पानी की मात्रा यद्यपि बहुत कम थी फिर भी शौच जाने पर कुछ आराम सा प्रतीत हुआ और प्रसन्नता भी हुई। दूसरी बार लगभग तीन पाव पानी चढ़ाया। दो दिन के पश्चात् सवा सेर और फिर कई बार में बढ़ाते बढ़ाते पूरा 3.5 सेर पानी चढ़ाया। इस बार कोलन बिल्कुल साफ हो गया बहुत समय का जमा हुआ मल व सुद्दे सब निकल गये और चित्त में प्रसन्नता व फुर्ती प्रतीत होने लगी और कुछ देर पश्चात् भूख जो उन्हें बहुत समय से नहीं लगी थी इस जोर से लगी कि वह बिना खाये न रह सका। इस प्रकार इस क्रिया को जारी रखते हुये और प्राकृतिक जीवन बिताते हुये डा० हाल ने अपने तपेदिक जैसे कठिन रोग को ऐसी अवस्था में जब सब डा० जवाब दे चुके थे स्वयं ही अच्छा कर लिया और इस सम्बन्ध में स्वयं लिखा है कि "मै उस समय से अब तक जिसको 40 वर्ष का लम्बा समय गुजरा है बराबर दूसरी या तीसरी रात इस बिना दवा और आश्चर्य जनक प्रभाव दिखाने वाली क्रिया को करता हूँ और पूरी सच्चाई के साथ गम्भीरता पूर्वक कह सकता हूँ कि इस क्रिया के करने के आध घण्टा पश्चात् जब आंतें इत्यादि अपने स्थान पर बैठ जाती हैं सहस्रों बार तेज भूख को अनुभव करता रहा हूँ। मैं बल पूर्वक कह सकता हूँ कि उस समय से जब मैं प्रारम्भिक परीक्षण कर रहा था स्वास्थ्य और भार दोनों की दृष्टि से मैं उन्नति करता रहा हूँ। जब यह क्रिया प्रारम्भ की थी मेरा भार डेढ़ मन था। तीन चार सप्ताह के भीतर मैं लगभग ५ पौंड बढ़ गया मेरे चेहरे पर स्वास्थ्य के चिन्ह दृष्टि गोचर होने लगे। मेरी खांसी भी शीघ्र ही कम हो गई। वृक गुर्दों का दर्द पूर्ण रूप से जाता रहा। मेरे फेफड़ों की खराबी ठीक हो गई और अजीर्ण के सब चिन्ह जाते रहे। यहां तक कि उस समय से लेकर अब तक कभी भी उपरोक्त रोगों का मुझे ध्यान तक नहीं हुआ। लगभग 12 वर्ष हुये मेरा भार पौने तीन मन था इत्यादि। 80 वर्ष की आयु में डा० साहब फिर लिखते हैं "अब

भी मैं शक्ति शाली व स्वस्थ हूँ मेरी आयु 80 वर्ष के निकट आ पहुँची है। मेरे शरीर का भार ढाई मन से अधिक है। मेरी शारीरिक और मानसिक शक्ति में उन्नति हुई है इत्यादि।"

यह तो हुआ एक ऐसे विद्वान का अनुभव जिसने डाक्टरी की नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी फिर भी वस्ती कर्म के द्वारा जहां अपने आपको मौत के चंगुल से बचा लिया वहां मेडीकल साइंस में एक उच्च स्थान को प्राप्त करके धन और मान के साथ-साथ सहस्रों रोगियों के प्राण बचाने का यश और पुण्य कमाया। अब एक प्रमाणित डाक्टर के परीक्षण इस सम्बन्ध में लिखे जाते हैं:–

डा० एच० टी० टरनर जो न्यू हाईजीन ट्रीटमेन्ट नामी पुस्तक के लेखक हैं और अमेरिका अन्तर्गत वाशिंगटन नगर के निवासी हैं लिखते हैं "सन् 1880 ई० में मेरा एक रोगी आंतों के दर्द के कारण मरा। मैंने उसके सम्बन्धियों से उसके शव को चीरने की आज्ञा मांग ली क्योंकि मेरा विचार था कि छोटी आंतों के फाटक के निकट कोई अप्राकृतिक वस्तु रुक गई है मैंने सारे कोलन को जो 5 फी० लम्बा था खोल दिया और देखा कि इसके भीतर मल भर रहा है। इसकी दीवारों, तहों और लपेटों के भीतर बहुत सा सूखा मल चिपटा हुआ है। यह मवाद किन्हीं स्थानों पर इतना कड़ा और सूखा हुआ था कि जैसे स्लेट होती है इस मवाद ने आंतों के सारे रास्तों को पूरी तरह रोक रखा था जिससे कालिक पेन (Colic Pain) आरम्भ हो गया था वर्षों तक इस दर्द का दौरा हर मास में होता रहा और यदि इस दर्द में कमी होती थी तो दर्द की बहुत तीव्र औषधियों से जो थोड़ी देर तक किसी सीमा तक मल को साफ कर देती थी। इस रोगी के रोग के विषय में डाक्टरों का एक मत था कि यह वाटलस कालिक है। कोलन की अवस्था देखकर मैं समझ गया कि यह बहुत समय का रुका हुआ मवाद है जो वर्षों से एकत्रित होता चला गया है। कोलन के बाये भाग के नीचे का झुकाव जिसे सिग्माइड फिलकसचर कहते हैं विशेष रूप से भरा हुआ देखा गया और यह भाग अपने प्राकृतिक स्थान की अपेक्षा दुगुने स्थान में फैला हुआ था जिससे सारा मार्ग

रुक गया। केवल अंगुली के बराबर चौड़ी नाली सारे कोलन में दृष्टिगोचर होती थी और अन्त समय तक इसी तंग रास्ते से थोड़ा सा मल नित्य प्रति निकल जाता था। शेष सारे कोलन के मार्ग को आस पास की दीवारों ने बहुत समय से चिपटे हुये मवाद ने वन्द कर दिया था।

सिग्माइड फिलकसचर के नीचे वाले भाग में जहां गुदा के पुट्ठों का चक्कर है और बाये कोलन के ऊपर वाले भाग में जहां बड़ी आंते दाईं ओर मुड़ जाती हैं कड़े सुद्दे अड़े हुए थे जहां कीड़ों के अण्डे और कीड़ों की बड़ी संख्या थी जिन्होंने झिल्ली (Mucus Membrane) का बहुत बड़ा भाग खाकर नष्ट कर दिया था। इसी कोलन में भीतर तथा आसपास जलन व दर्द था और जैसा कि पश्चात् के अनुभवों से सिद्ध हुआ यही इस रोगी की बवासीर के कारण थे।

कोलन की सारी लम्बाई में जलन व दर्द था फिर भी रोगी अपने आप को उस समय तक स्वस्थ समझता रहा जब तक कि दुर्भाग्य से उन कीड़ों ने उसे विवश करके पलंग पर न लिटा दिया। यही नहीं किन्तु अमेरिका की एक प्रसिद्ध बीमा कम्पनी के डाक्टरों ने भी उसे बिल्कुल ठीक समझा। पश्चात् के परीक्षण से ज्ञात हुआ कि सभ्य समाज के रहने वाले कम से कम 70% मनुष्य इस समय इसी अवस्था में पाये जाते हैं कीड़ों के अतिरिक्त समस्त रोगों का मुख्य कारण कोलन के भीतर की खराबी ही है। मैंने अधिक अन्वेषण से यह परिणाम निकाला कि शीघ्र वृद्धावस्था आ जाने और स्वास्थ्य बिगड़ जाने का मुख्य कारण भी यही कोलन की खराबी है। सम्भव है कि जन साधारण को यह विचार घबराहट में डालने वाला हो किन्तु जब मैंने 284 मनुष्यों के कोलन का निरीक्षण ध्यानपूर्वक किया जो कि हर प्रकार के रोगों से जो इस देश में होते हैं मरे थे तो केवल 28 शवों के कोलन ऐसे निकले जिनके भीतर बहुत कड़े स्लेट की भांति रुकावट डालने वाले मल का अभाव था। शेष 256 थोड़े बहुत इसी प्रकार कोलन वाले रोग में ग्रस्त थे। इन 256 में अधिक संख्या उनकी थी जिनका कोलन अपनी स्वाभाविक अवस्था से दूना फैला और फूला हुआ था जब कि इनके भीतर बहुत छोटा सा

छेद था जिससे मरते समय तक मल त्यागते रहे! उनको नित्य प्रति शौच का वेग होता था। इनमें से बहुत से लोगों के कोलन में 4 से 6 इञ्च लम्बे कीड़े विद्यमान थे और सुद्दों के अतिरिक्त कीड़ों के अण्डे इत्यादि भी पाये गये।

इसके पश्चात् नित्य प्रति के रोगियों के अनुभव से जो ऐसे रोगियों पर किए गये इन विचारों को और पुष्टि मिली। कीड़ों अण्डों के घोंसले इत्यादि मल और रक्त के साथ कोलन की सफाई के समय निकलते थे जिनसे बहुत से रोगी जो मृत्यु के द्वार पर पहुँच गये थे बच गये।

यह बात अनुभव सिद्ध है कि औषधि न तो इस प्रकार के दबे हुए मल को निकालने की शक्ति रखती है और न तो वह इसके निकालने में सहायता कर सकती है। किन्तु आप प्रश्न कर सकते हैं कि यह बात पहले डाक्टरों को क्यों नहीं मालूम हुई। इसके दो कारण हैं – प्रथम यह कि पोस्ट मारटम में यह अंग (कोलन) बुरा समझा जाता है और चूंकि इसके देखने तक से घृणा की जाती है अतः इसे काटकर पृथक कर देते हैं क्योंकि प्रायः यह मल से भरा हुआ पाया जाता है। अतः इसे दोनों ओर से मजबूत गांठ दी जाती है ताकि गैस और मल निकल कर दुर्गन्ध न फैलावे। कोई प्रश्न नहीं करता कि क्या कोलन अपनी स्वाभाविक अवस्था में है और यह कि इसमें कितने समय से मल एकत्रित हो रहा है। कोई प्रश्न नहीं करना कि इतना ऐसा भरा होना हमारे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक तो नहीं है? और क्या यह ठीक है कि हम इतने मल को महीनों नहीं वर्षों अपने साथ लिये फिरें। जबकि हम भली प्रकार जानते हैं कि हमारी रस शोषक गिल्टियां इस मल में से रस चूस चूस कर हर समय रक्त में भेजती रहती हैं। यह बात आश्चर्य जनक अवश्य है कि हजारों फैशनेबुल डाक्टरों में से जो हर वर्ष कालिजों से निकलते हैं, एक की भी बुद्धि में इतना आवश्यक प्रश्न न आवे।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि स्वार्थ और पक्षपात वश इस विषय को न छेड़ा जाता हो क्योंकि इस बात की जानकारी जनता में हो जाने से मेडीकल साइंस में एक बड़ा परिवर्तन हो जायेगा और बड़ी सीमा तक औषधियों का प्रयोग

बन्द हो जायेगा। विशेषतया उन औषधियों का जो पेट के रोगों के लिए दी जाती हैं बिक्री नाम मात्र को रह जायेगी। विज्ञान की इतनी उन्नति होने पर भी मेडिकल साइंस के जो स्वयं अपूर्ण है विद्वानों का विचार है कि प्रत्येक नवीन बात जिससे वह सहमत न हों असत्य है और उसको वह लोग ठगो के नाम से पुकारते हैं पर इतिहास के पन्ने बताते हैं कि ऐसे ही नवीन खोज करने वालों से जिनको यह डाक्टर ठग कहते हैं इस विज्ञान की इतनी उन्नति हुई है पर पक्षपात के कारण सच्चाई पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया जाता है। कौन नहीं जानता कि पक्षपात के कारण ही होम्योपेथी के आविष्कारक हैनेमैन साहब को कैद करके पागलखाने तक भेजा गया केवल इस कारण कि एलोपैथी के विरुद्ध होम्योपेथी का प्रचार किया गया था (परन्तु अब सब देखते हैं कि जहां एलोपैथी फेल होती है वहां होम्योपेथी जादू का प्रभाव दिखाती है और हैनेमैन साहब के जीवन में ही लोगों को अपने पक्षपात पर पश्चाताप करना पड़ा था) मेकाइल को जीवित ही जला दिया गया क्योंकि इसने अन्वेषण किया था कि लाल रंग का पतला रस जो रगों के द्वारा सारे शरीर में दौरा करता है, उसी का नाम रक्त है। डा० हार्वे को कहीं इसका लेख प्राप्त हो गया और वही इस भारी खोज का आविष्कारक प्रसिद्ध हो गया।

प्रायः यह प्रश्न किया जाता है कि क्यों कोलन के भीतर अप्राकृतिक रूप में इतना मल एकत्रित हो जाता है? इसका उत्तर यह है कि गाय, बैल, घोड़े और सब पशु पक्षी वेग आने पर तुरन्त मल त्याग देते हैं और वह कभी भी समय और स्थान की प्रतीक्षा नहीं करते। अतः उनके कोलन भी साफ ही रहते हैं। ऐसे ही अफ्रीका के जंगलियों की अवस्था है। पर सभ्य संसार के प्रत्येक व्यक्ति को समय और स्थान का ध्यान रखना पड़ता है और शिष्टाचार आवश्यक कार्य आदि भी प्रायः मल त्याग में रुकावट डालते हैं। अतः मल आंतों में सूख कर चिपट जाता है।

मल जब कोलन में आता है तो प्राकृतिक रूप में वह लेई के सदृश्य होता है और त्यागते समय वह इससे कुछ कड़ा होना चाहिए। किन्तु यदि कोलन में तीन घंटे से अधिक रुक जावे तो वह कोलन की दीवारों में उसके लपेटों के भीतर चिपक जाता है जिसे हम कब्ज के नाम से पुकारते हैं। ऐसी अवस्था में इसका बहुत सा भाग भीतर तहों में चिपट कर रुका रहता है शेष भाग कड़ा बनकर शौच के समय निकलता है। जितने समय मल आंतों में रुका रहता है रस शोषक ग्रन्थियां बराबर इस विषैले पदार्थ से रस चूस चूस कर रक्त में वापिस पहुँचाती रहती हैं। जब थोड़ी मात्रा इस प्रकार इन तहों में चिपट जाती है तो पहले खुजली सी उत्पन्न होती है उसके पश्चात् जलन होती है। यह सूखा मल बराबर नर्म मलों को नित्य प्रति अपनी ओर खींचता रहता है जिससे मल की तह और मोटी होती जाती है और बीच का रास्ता तंग होता जाता है। महीनों और वर्षों ऐसा होता रहता है। तब कोलन बिल्कुल लकीर दार बन जाता है। इसकी रबड़ की भांति फैलने बढ़ने और सिकुड़ने वाली नसों की शक्ति नष्ट हो जाती है। तब यह मल बहुत जोर करने पर 5 फुट की लम्बाई में होकर (थोड़ा बहुत) बाहर निकलता है। और कभी कभी वह मल जो महीनों पूर्व निकल जाना चाहिये था इतने समय के पश्चात् खारिज होता है और वह भी गोल छोटे छोटे सुद्दों की शक्ल में जो ढले हुये से मालूम देते हैं। इस प्रकार के सुद्दों के ढलने का कारण भी विशेष है। छोटी आंतों के अन्त में 6 इञ्च का एक थैला सा बना है जहां पर से मल कोलन में प्रवेश करता है। इसको एलोसिकल वाल्व कहते हैं यह द्वार सदृश्य मार्ग मल डालने के लिए खुलता है और कोलन भरे होने की अवस्था में इस भय से कि कहीं नीचे का मल ऊपर न आ जावे तुरन्त बन्द हो जाता है। कोलन भरा होने के कारण यह अपना मल भी थोड़ा ही सा डालकर बन्द हो जाता है जिससे सुद्दे गोली की शक्ल के बन जाते हैं किन्तु छोटी आंतों के सारे सामान को कोलन में पहुँचाने की आवश्यकता है। इस कारण बार बार फाटक खुलता है और बन्द होता है अतः बराबर सुद्दे बनते चले जाते हैं और चूंकि स्वयं कोलन के भीतर पहले

से रुकावट है। इसलिए उन सुद्दों को बहुत खुश्क होकर बड़ी देर के पश्चात् खारिज होने का अवसर मिलता है जिनको स्वाभाविक रूप में तीन घण्टे के भीतर ही खारिज हो जाना चाहिये था। इसी अवस्था में कोलन से मल निकालने में बड़ा जोर लगाना पड़ता है। अन्यथा प्रकृति ने तो इस आवश्यक अंग को खूब मुलायम और रबड़ की भांति फैलने और सिकुड़ने वाला बनाया है ताकि मल सुगमता से फेंका जा सके। पर हम उसे अपनी अनियमितताओं से ऐसा बना लेते है कि इसकी यह शक्ति नष्ट हो जाती है जिसका अन्तिम परिणाम मौत होना है।

आप सोचते होवेंगे कि मनुष्य समय से पूर्व बुढ़ापे से, ऐंठन, तपेदिक, मृगी, अजीर्ण, अथवा अनेकों नाम वाली यकृत और वृक्क की बीमारियों से क्यों अनेकों कष्ट उठा कर प्राण देते हैं। यह निश्चय है कि 80% रोग कोलन में जलन होने और उसके बढ़ जाने से उत्पन्न होते हैं और कुछ नाड़ी संस्थान त्वचा और रक्त के दूषित होने से कितना व्यर्थ और निर्बल विचार है कि हर अवस्था में रक्त के शुद्ध करने के लिये हलक़ से औषधि निगला जावे। यदि यह मान भी लिया जावे कि औषधियों से वास्तव में रक्त शुद्ध हो जाता है, किन्तु जब आधे पेट के भीतर यह नहर इतनी फैल रही हो कि कुछ स्थानों में इसकी मोटाई हाथ के बराबर हो जावे और बीच का मार्ग केवल एक अंगुल भर ही हो और इसके भीतर इस प्रकार का अशुद्ध मुर्दार की दुर्गन्धि के समान दुर्गन्धित मल भरा हो और इस सड़े हुये मल में से 96,20,000 रस शोषक ग्रन्थियां हर समय रस चूस चूस कर रक्त के भ्रमण में मिलाकर सारे शरीर का रक्त विषाक्त कर रही हों। वहां आपकी रक्त शोधक औषधि का प्रभाव कैसे होगा? जिस पर डाक्टर लोग विधान की सहायता चाहते हैं और अपने सिवा सब चिकित्सकों को क्वेक्स कह कर बन्द कराना चाहते हैं। न जाने लोग क्यों बुद्धि और धृति से काम नहीं लेते और क्यों इन अनभिज्ञ और पक्षपाती डाक्टरों का शिकार बन रहे हैं मैं जितना अधिक इन विचारों के आधार पर खोज करता हूँ और कोलन तथा रोगों के सम्बन्ध को खोजता हूँ उतना ही अधिक मुझे विश्वास होता जाता है कि इस शताब्दी के लोगों

में शारीरिक कष्ट और रोगों के लगभग सारे कारण कोलन में ही पाये जाते हैं। कितने मनुष्य अपने शरीर की दुर्गन्धि के कारण मित्रों में बैठने या उनके पास जाने से कतराते हैं और सभ्य समाजों में जाने के विचार से भिन्न २ प्रकार के सुगन्धित पदार्थ प्रयोग करने को विवश होते हैं। कोई ऐसी स्त्री नहीं जिसकी कमर पर कारसेट बंधे हो या जो तंग कपड़ा कमर पर बांधती हो। मैं विश्वास पूर्वक बता सकूंगा कि उसके शरीर से असहनीय दुर्गन्ध अवश्य आती होगी, क्योंकि लेसनिंग्स (कमर बांधना) ठीक उसी स्थान पर होता है जहां पर कि टिरानसोर्स कोलन का स्थान है। यदि सिग्माइड फिलकसचर मवाद से भर जावे जो अवस्था कि प्रायः पायी जाती है और फिर दोनों ओर से ट्रान्सोर्स कोलन को अप्राकृतिक ढंग से दबाया जावे तो वह इस कदर मल से भर जायेगा और इतनी सड़न उसके भीतर से उठेगी कि छोटी आंतें भी दब जावेगीं। अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से परिणाम बहुत ही खराब होगा। यद्यपि यह बात फिजियालोजी के नियमों के विरुद्ध है और कई युक्तियां सुधारक सभाओं की ओर से उपस्थित की जा चुकी हैं कि इस बुरे रिवाज (कमर पर पेटी बांधना) को रोका जावे पर कोई भी सभ्य संसार के इस बुरे रिवाज के रोकने में सफल नहीं हुई। (हर समय पतलून पहनने वाले और कमर पर पेटी बांधने वाले ध्यान से पढ़ें) कपड़े ढीले पहनो। कोलन को शुद्ध रखो तो आपके मुख से दुर्गन्धित वायु नहीं निकलेगी और जीवन सुख से बीतेगा, क्योंकि यदि शरीर से मल निकालने वाले स्रोत और सबसे बड़ा स्रोत कोलन बन्द हो गया तो प्रकृति के पास केवल तीन और स्रोत हैं। फेफड़े, गुर्दे और त्वचा (रोम छिद्र) कोलन की रुकावट से डोडेनम और आमाशय से पचे हुये मल किसी और मार्ग से बाहर जाने का प्रयास करेंगे। प्रायः पसीना और श्वास की दुर्गन्ध इस बात को सिद्ध करते हैं। अन्त को अजीर्ण आ दबाता है और यकृत इत्यादि भी दूषित हो जाते हैं।

हमारे शरीर में नहरों के तार लगे हैं जो दो प्रकार की हैं शिरा और धमनी। इनका केन्द्र हृदय है जो हर समय एक शक्तिशाली इञ्जन की भांति बराबर रक्त

का संचालन करता है। जो नहरें शुद्ध रक्त हृदय से ले जाकर शरीर के समस्त छोटे बड़े भागों में उनको जीवन, शक्ति और उष्णता देने को रक्त पहुँचाती हैं उनको धमनी कहते हैं और जो शरीर के विभिन्न भागों से दूषित और काला रक्त जिसके भीतर रोग कृमि भी होते हैं हृदय और फेफड़ों में सफाई के लिए पहुँचाती हैं उनको शिरा कहते हैं। यह बड़ी से छोटी छोटी होकर समस्त शरीर में फैली हैं और इनके द्वारा हर समय हमारे शरीर का पोषण होता है तथा मल की सफाई होती है।

खान पान की वस्तुओं से जीवन और शक्ति देने वाले अंश रक्त के भीतर आते हैं। जब भोजन आमाशय और डोडेनम से नीचे छोटी आंतों में जाता है वहां पर बहुत सा रस शोषक ग्रन्थियां इस भोजन के रस को चूसती हैं और शिरा द्वारा हृदय में पहुँच जाता है जहां से फिर शरीर के समस्त भागों में वही रक्त धमनी द्वारा पहुँचता है (देखो हाईजीन फिजियालौजी पृष्ठ 116 व 124) रक्त में करोड़ों छोटे छोटे लाल परमाणु होते हैं कुछ श्वेत भी होते हैं पर श्वेत यदि 1 होता है तो लाल 300 होते हैं। हम यह इन रक्त के बिन्दुओं को लड़ाई करने वाले जहाज के नाम से पुकारेंगे जिसके भीतर असंख्य परमाणु सिपाही रूप में विद्यमान हैं। प्रत्येक जहाज के भीतर एक ऐसी भट्ठी है। जिसकी आग कभी जीवन में बुझने नहीं पाती। यह जहाज़ अपनी सेना के साथ हर समय हमारे शरीर के भीतर तैरते फिरते हैं और रोग कृमियों का शिकार करते रहते हैं। जहां कहीं वह रोग कृमि को पकड़ पाते हैं तुरन्त उस आग की भट्टी में झोंक देते हैं जहां वह जल कर नष्ट हो जाता है।

मान लो कि रोगी और भरे हुये कोलन की अवस्था में हमें जुकाम हो जावे। अब शरीर से मल निकालने और पुराने मल को निकालने के दो आवश्यक मार्ग रुक गये (कोलन और त्वचा) क्योंकि शरीर के भीतर हर समय नवीन परमाणु बनने और पुराने होकर खारिज किए जाने के लिए तैयार रहते हैं। ऐसी अवस्था में भीतर से उत्पन्न होने वाले कृमियों को इन छोटे जहाजों के सिपाही बड़ी तेजी

से रोग के रोकने के लिये पकड़ कर ढेर लगाते जाते हैं। पर इस ढेर को मार्ग वन्द होने के कारण बाहर भेजने से लाचार हैं। अतः प्रति क्रिया आरम्भ हो जाती है। रक्त के भीतर सड़न से टेम्परेचर बढ़ गया और मसान (छिद्र) बन्द होने से सर्दी लगने लगी। ज्वर हो गया। इन सिपाहियों के लिए अब दो ही और स्थान हैं जहां शरीर से खारिज करने के लिए वह इस ढेर को पहुँचावें प्रथम फेफड़े और दूसरे गुर्दे। यदि कोलन में इन कृमियों का भोजन विद्यमान है और इन कृमियों में टी० बी० का कृमि भी है जिसे कोलन से भोजन मिल रहा है, तो वह इस लड़ाई में रक्त के सिपाहियों को हरा देवेंगे और शरीर पर उनका अधिकार होने से तपेदिक का रोग हो जावेगा। इसी प्रकार टी० बी० के कृमि फेफड़ों में पहुँच जाते हैं और वहां शरीर को नष्ट भ्रष्ट करने लगते हैं। भोले लोग समझते हैं खांसी हो गई और डाक्टर के पास चिकित्सा को जाते हैं। यदि डाक्टर योग्य है तो समझ लेता है कि टी० बी० का आक्रमण है अन्यथा खांसी को दबाने का व्यर्थ प्रयत्न करता है। कभी इस प्रकार के कृमि श्वांस द्वारा भी पहुँच जाते हैं। टाइफाइड ज्वर भी प्रायः कोलन की खराबी से ही प्रारम्भ होता है। और दूसरे रोगों की भांति यह कृमि भी शरीर को नष्ट करने का काम आरम्भ कर देते हैं। विचार कीजिये हमारे शरीर के भीतर रोग से रक्षा करने वाले रक्त परिमाणु और तपेदिक इत्यादि रोगों के कृमियों में कैसा भयानक युद्ध रहता होगा। (देखो न्यू हाईजीन ट्रीटमेन्ट)।

डा० टरनर साहब ने उपरोक्त विचार अपनी पुस्तक में प्रकट किये हैं। साथ ही लिखा है कि कठिनता से कोई रोग होगा जिसके भीतर एक दो बार एनीमा करना उपयोगी सिद्ध न हो। पेट सम्बन्धी रोगों में तो इसके अतिरिक्त और कोई औषधि देने की आवश्यकता ही नहीं यद्यपि पाश्चात्य देशों में न्यूहाईजीन और कोलन के सम्बन्ध में नियमपूर्वक परीक्षण करने और उनको प्रकाशित करने वाले डा० हाल और डा० टरनर मुख्य समझे जाते हैं किन्तु अनेकों दूसरे विद्वानों ने भी इस सम्बन्ध में उनलोगों से पूर्व व पश्चात् इसके परीक्षण करके इसे उपयोगी पाया है। इस समय जल-चिकित्सा के जितने ग्रन्थ मिलते हैं प्रायः सभी में एनीमा

परामर्श दिया गया है। प्राकृतिक चिकित्सा में भी यह सम्मिलित हो चुका है। लूई कूने ने इसे अपने विधान में प्रतिष्ठा किया है। एलोपैथी में इसे स्थान मिला हुआ है पर वह लोग अब तक भी इसके पूर्ण महत्व को नहीं समझ पाये हैं। अतः वह बहुत कमी के साथ विशेष अवसरों पर ही कोलन के बहुत थोड़े भाग को जल से धो देते हैं। साथ ही साबुन, तेल इत्यादि मिलाकर कभी कभी लाभ के स्थान में हानि भी पहुँचाते हैं। कुछ भी हो पर वस्ती कर्म के सिद्धान्त को वह मेडीकल साइंस के अनुकूल स्वीकार करते हैं। यही नहीं यूनान वाले जो यूरोप में मेडीकल साइंस के जन्मदाता माने जाते हैं वह भी इस सिद्धान्त को मानते थे। इसका वर्णन यूनान के प्रसिद्ध लेखक डा० पिलनी ने अपनी पुस्तक "नेचर हिस्टोरिया" में अब से 2 सहस्र वर्ष पूर्व किया है।

ग्रहम वर्ग निवासी डा० विनसट ने सन् 1825 ई० के निकट वस्ती कर्म के परीक्षण बड़ी सफलता के साथ अपने रोगियों पर किये थे। सन् 1830 से 1833 तक तीन वर्ष इस विधि से उन्होंने हैजा (Cholera) के सहस्रों रोगियों को बड़ी सफलता के साथ चिकित्सा की और इतने दीर्घ समय में इतनी भारी संख्या में से एक भी रोगी उनको चिकित्सा में मरने नहीं पाया।

सन् 1847 ई० में डा० जीवलशाह ने अपनी पुस्तक "वाटर क्योर मैन्युअल" (Water Cure Manual) में इसके प्रयोग पर बड़ा बल दिया है और लिखा है कि बार बार गुन गुना पानी वस्ती यन्त्र द्वारा कोलन में पहुँचाया जावे। यहां तक कि कोलन बिल्कुल साफ हो जावे। यूनानी हिकमत में भी यह विचार पाया जाता है। तिब्ब रहमानी के पृष्ठ 31 पर एक कहानी लिखी है उसमें एक हकीम के वस्ती कर्म कराने का वर्णन है।

मिश्र, अरब, यूनान, यूरोप सभी देशों में मेडिकल साइंस पहुँचाने का आदि स्रोत भारतवर्ष है जैसा कि हम अन्यत्र सिद्ध कर चुके हैं। यहां उसकी पुष्टि में कुछ प्रमाण और देकर फिर हम आयुर्वेद शास्त्र से वस्ती कर्म की उपयोगिता दिखला वेंगे।

(1) अरबी की प्रसिद्ध पुस्तक "ऐनउल" में आयुर्वेद चिकित्सा का वर्णन इस प्रकार है--आठवीं सदी में भारतवर्ष के पण्डित बगदाद नगर में खलीफा की ओर से चिकित्सा शास्त्र पढ़ाते थे। इस पुस्तक में तीन ग्रन्थों का उल्लेख है सरक, सरशद और जयदान जो चरक, सुश्रुत और निदान के अप- अंश हैं। फिर एक स्थान पर लिखा है कि खलीफा हारून रशीद के समय में मनका और कासाली नाम के दो प्रसिद्ध वैद्य बगदाद में नौकर थे और चिकित्सा शास्त्र के पढ़ाने का काम किया करते थे।

(2) यूरोप के डाक्टर वाईज़ साहब अपनी पुस्तक हिस्ट्री आफ मेडीसन की भूमिका के पृष्ठ 46 पर लिखते हैं– यूनानियों की अपनी बहुत ही पुरानी पुस्तकें बतला रही हैं कि इन्होंने बहुत सी विद्या पूर्व की एक असाधारण योग्यता की जाति से प्राप्त की है जिसे हमने सिद्ध कर दिया है कि वह जाति हिन्दू (आर्य) लोग थे जिनमें विज्ञान और कला कौशल सभी की अपूर्व योग्यता थी और जिनको चिकित्सा सम्बन्धी उच्च ज्ञान के कारण मिश्रानी पादरी लोगों ने अपना गुरु बनाया था और उनसे चिकित्सा शास्त्र सीख कर वहाँ से ही यूनान के विद्वानों के पास यह विचार पहुँचे।

(3) मि० बी० डी० ब्राउन ने सभी विद्याओं का आदि स्रोत भारत को इन शब्दों में माना है:–

"निष्पक्ष मस्तिष्क से सतर्क निरीक्षण कर हमें मानना पड़ेगा कि भारत साहित्य और परमार्थ विद्या में समस्त विश्व का पिता है।" (See Superiority of Vedic religion)

अतः अब हम अगले पाठ में अपने भारत के प्राचीन साहित्य से वस्ती कर्म अथवा अमेरीका के न्यू हाईजीन ट्रीटमेन्ट की उपयोगिता लिखते हैं।

पाठ 6

वस्ती-कर्म

वस्ती कर्म का उल्लेख वेद से लेकर आयुर्वेद के समस्त प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है जो देखना चाहें यजुर्वेद अध्याय 16 के मन्त्र ८८ को और संस्कृत के प्राचीन व्याकरण के प्रमाणित ग्रन्थ अष्टाध्यायी के अध्याय 5 पाठ 4 के सूत्र 101 तथा उनादि कोष के पाठ 4 सूत्र 180 को पढ़ें। आयुर्वेद के प्रमाणित ग्रन्थ चरक और सुश्रुत ने तो इसको चिकित्सा का आधा अंग और कहीं कहीं सर्वांग मानकर वस्ती बनाने की विधि और किस रोग में किस प्रकार की वस्ती दी जावे इन सब बातों का विस्तार से वर्णन किया है। इन ग्रन्थों के कुछ श्लोकों का अनुवाद हम यहाँ पाठकों की जानकारी के लिये देते हैं।

(1) सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय 35 श्लोक 1 में लिखा है–सब स्नेह आदि कर्मों में आचार्यों ने वस्ती कर्म को ही प्रधान माना है क्योंकि एक वस्ती अनेक कार्य सिद्ध कर सकती है। यह वस्ती भिन्न औषधियों के मेल से दोषों का शोधन, शमन और संग्राहण करती है कहीं वीर्यहीन में काम शक्ति उत्पन्न करती है, पतले को मोटा करती है और बहुत मोटे को पतला करती है, आँखों को ठंडक देती है। शरीर में बुढ़ापे की झुर्रियों और बालों को श्वेत होने से रोकती है। आयु को स्थिर करती है। यहाँ तक की ठीक ठीक प्रयोग करने से शरीर को उन्नति होती है उसमें सुन्दरता और शक्ति आती है और आयु बढ़ जाती है।

(2) इसी अध्याय के श्लोक 22 में लिखा है पक्वाशय (कोलन) और नाभि कमर के नीचे सब स्थानों में रुके हुए मल के लिये नियमपूर्वक किया हुआ वस्ती कर्म उपयोगी होता है।

(3) श्लोक 23 पक्वाशय (कोलन) में वस्ती से पहुँचाया हुआ जल अथवा औषधि शोषक ग्रन्थियों द्वारा इस प्रकार पहुँचता है जैसे कि वृक्ष की जड़ से खींचे हुए जल के गुण वृक्ष समस्त भागों में पहुँच जाते हैं।

(4) श्लोक 24–वह वस्ती का जल व औषधि शीघ्र ही मल से मिलकर मल सहित बाहर निकल जाता है और अपान आदि वायुओं से शरीर के भीतर उसके गुण को वीर्य में प्राप्त कराता है।

(5) श्लोक 25– वस्ती का द्रव्य पक्वाशय में पहुँच कर मस्तिष्क तक के दोषों को खींच लेता है। जैसा कि आकाश में रहकर सूर्य पृथ्वी के रस को खींचता है।

(6) श्लोक 26– अच्छे वैद्य से प्रयोग कराई वस्ती कटिप्रदेश, पीठ, पेट, स्थानों में रहने वाले विकारों को हिलाकर जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर देती है।

(7) श्लोक 27 व 28–क्योंकि तीनों दोषों (वात, पित्त कफ) के कार्य होने में प्रधान और प्रेरक वायु ही है। जब वायु बढ़कर शरीर का नाश करने लगे तब उस वायु के वेग को वस्ती कर्म के अतिरिक्त कोई नहीं रोक सकता। जैसे पवन से उछलते हुये समुद्र की लहर को ऊंचे किनारे के सिवाय कोई नहीं रोक सकता।

(8) श्लोक 29– विधि अनुकूल की वस्ती शरीर के मोटा करने और सुन्दरता, शक्ति, स्वास्थ्य तथा दीर्घ आयु का कारण बनती है।

(9) श्लोक 3– वायु में, पित्त में, कफ में तथा वायु, पित्त, कफ और पित्त, कफ दो दो मिले हुओं में और सन्निपात सब दोष मिले हुये हों तो सब स्थानों में वस्ती कर्म श्रेष्ठ है।

(10) श्लोक 2– ज्वर, अतिसार आँखों के आगे धुन्ध सा पड़ जाना, जुकाम, सिर के रोग, आँखों के रोग, ऊर्ध्व वायु, शरीर टूटना, मुंह, गर्दन इत्यादि में मरोड़ उत्पन्न होना, सब शरीर में सर्दी लगना, एक अंग का अथवा सर्वांग

का पक्षाघात, अफारा (पेट फूलना), पेट के समस्त रोग, मधुमेह (diabetes) शूल का दर्द, नले इत्यादि का चढ़ जाना, उपदंश तथा लिंग के अन्य रोग, कुलंज, मूत्र सम्बन्धी विकार, गुल्म, वात रक्त (रक्त का बिगाड़), वायु रोग, वायु से शरीर का सूख जाना, चक्कर आना, और स्थान पर दर्द होना, मूत्र परेश के रोग, उदावर्त्त, (कब्ज से मल का ऊपर के मार्ग निकलना) स्त्री आसंघ व्याधि, वीर्य दोष, स्त्रियों में दूध की कमी, हृदय, ठोड़ी और गर्दन का रुक जाना, बवासीर, गर्भ का उलट जाना इत्यादि रोगों में वस्ती कर्म अत्यन्त उपयोगी है और अवश्य करना चाहिये।

(11) श्लोक 41–में शोधन, वाजी करण, वन्ध्यात्व नाशक इत्यादि दस प्रकार की वस्ती बताई हैं और इनमें औषधियों का प्रयोग भी बताया है जिनका प्रभाव रस शोषक ग्रन्थियों द्वारा तुरन्त ही रक्त में पहुँच जाता है।

(12) श्लोक 95 व 96 में बताया है-राजा के लिए तथा राजाओं के समान बड़े आदमियों के लिए स्त्रियों और निर्वल पुरुषों के लिए बालकों और वृद्धों के लिए दोषों को निकालने के लिए, शक्ति तथा सुन्दरता लाने को माधोतेलक्र वस्ती बताई जाती है इत्यादि।

अन्त में सुश्रुत कार ऋषि ने कहा है प्रथम एक वार प्रयोग में लाने से वस्ती कोलन और एलीमेन्ट्री केनाल अर्थात् मल को स्निग्ध करती दूसरी ऊपर की वायु को जीतती है। तीसरी मल हटाती और सुन्दर रूप उत्पन्न करती है। चौथी स्नेह वस्ती रस के भीतर लचक सी उत्पन्न करती है। पांचवीं वस्ती रक्त के भीतर चिकनाई बनाती है। छठी वस्ती मांस को तर करती है। सातवीं मेद को, आठवीं हड्डी को, नवीं मज्जा को स्निग्ध करती है, तथा इससे दूनी 18 बार प्रयोग की हुई वस्ती शुक्रगत (वीर्य) तक के सब दोषों को दूर कर देती है। जो इस प्रकार नियम पूर्वक 18-18 वस्तियों को प्रयोग करता है वह हाथी के समान बलवान, घोड़े की भांति फुर्तीला और तेज़ चलने वाला हो जाता है। देवताओं जैसे उसके मुख की कांति हो जाती है, और सब प्रकार के पापों (दुःखों) से छूट कर

वेद का धारण करने वाला श्रुत बात (सुनी हुई बात) को न भूलने वाला और दीर्घ आयु वाला होता है। चरक ऋषि ने तपेदिक के रोगी की ज्वर की चिकित्सा बताते हुए निर्बल रोगी के ज्वर को छुड़ाने का अन्तिम साधन वस्ती कर्म ही को माना है। लिखा है जो रोगी ज्वर के कारण अधिक निर्बल हो गया हो उसे वमन विरेचन न कराना चाहिये। उसे जितना पी सके दूध पिलाकर निरूह वस्ती कराना चाहिए। निरूह वस्ती द्‌वारा बल बढ़ता है। अग्नि दीप्त होती है और ज्वर छूट जाता है। मन आनन्दित होता है। रुचि उत्पन्न होती है और पके हुये दोष निकल जाते हैं।

इस प्रकार वस्ती कर्म की उपयोगिता को प्राचीन और अर्वाचीन दोनों विज्ञान स्वीकार करते हैं और हम तो अपने 50 वर्ष के अनुभव से बड़े बल पूर्वक कह सकते हैं कि यदि रोग के आरम्भ में ही वस्ती कर्म का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जावे तो कोई रोग कठिन होने ही न पावे। इसी कारण वस्ती कर्म आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा का प्रधान अङ्ग है। पाठक इसके गुणों को भली प्रकार समझ जावें इस कारण हमने इस पुस्तक में इस विषय पर अपेक्षाकृत कुछ अधिक लिखा है। अब अगले पाठ में हम प्राकृतिक चिकित्सा के अन्य अङ्गों पर प्रकाश डालेंगे।

पाठ 7

सूर्य तथा वायु

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सकों का कहना है कि धूप और प्रकाश बड़े काम की चीज़ है। यह बिना मूल्य की औषधि है किन्तु खेद है कि हम उससे लाभ नहीं उठाते। चमड़े के रोगों में गठिया इत्यादि के दर्दों में और ऐसी अवस्था में जब शरीर में स्थान स्थान पर गोल गोल गांठें और गुमड़ियां हो जाती हैं, धूप नहान से बड़ा लाभ होता है। स्वस्थ अवस्था में भी यदि प्रतिदिन थोड़े समय के लिए हमारे पूरे शरीर में धूप प्रकाश और हवा लगे तो बहुत स्वास्थ्य प्रद है। धूप से जीवन शक्ति मिलती है और रोग के कीड़े भी मरते हैं कठिन से कठिन रोग तपेदिक के कीड़े भी धूप से मर सकते हैं। धूप से हमें विटामिन 'डी' बहुत मिलता है। विटामिन डी के अभाव से बालकों को सूखा रोग हो जाता है। हड्डो टेढ़ी हो जाती है या उसका बढ़ना रुक जाता है तथा हड्डी कोमल हो जाती है। इस विटामिन के अभाव में स्त्रियों को प्रसव समय में बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। बालक सुगमता से बाहर नहीं आता। औजारों से निकालना पड़ता है। पर जो लोग धूप में नंगे बदन कुछ समय रहते हैं, वह इन सब बाधाओं से मुक्त रहते हैं। धूप में बैठ कर तेल की मालिश करने से विटामिन डी खूब बढ़ता है।

इसी प्रकार विटामिन ई जो स्त्रियों के बांझपन को रोकता है और पुरुष के वीर्य में शुक्र कीटाणुओं को शक्ति प्रदान करता है सूर्य की धूप शरीर पर लगने से उत्पन्न होता है। सूर्य की किरणों के शरीर पर पड़ने से हमारा स्वास्थ्य बढ़ता है और रंग निखरता है। सूर्य चिकित्सा के नाम से एक पृथक चिकित्सा प्रणाली है जो सब रोगों की चिकित्सा सूर्य की सहायता से करती है। अल्ट्रावाइलेट रेज़ से भी इसी आधार पर चिकित्सा की जाती है। वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में खोज करने के पश्चात् बताया है कि जब शरीर सूर्य प्रकाश को सोख लेता है तब उसकी पाचन क्रिया बढ़ जाती है। और जब सूर्य किरण हमारी त्वचा को भेद कर शरीर

के भीतर प्रवेश करती है तो शरीर को बल मिलता है, तथा इनके प्रभाव से प्रोटोन और शक्कर आदि के पचाने में शरीर को बड़ी सहायता मिलती है। यह आवश्यक नहीं है कि गर्मी के दिनों में बहुत तेज धूप में अपनी शक्ति से अधिक देर तक बैठकर हम सूर्य की किरणों को लेने का अनुचित और बुद्धि हीन प्रयत्न करें, किन्तु ऐसे समय में तो "अति सर्वत्र वर्जयेत" के सिद्धांत पर हमें अधिक धूप से बचना चाहिए। पर इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम शरीर को इतना कोमल बना लें कि कड़ी धूप में निकलने से रोगी हो जावें। हल्की धूप और प्रकाश में थोड़े समय तो हर ऋतु में नंगे बदन रहना ही चाहिए। हर समय चिक डालकर बन्द कमरे में बैठने का अभ्यास बुरा है किन्तु यथा सम्भव अधिक से अधिक समय खुले मैदान में बैठ कर कार्य करने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। रोग की अवस्था में तो धूप शरीर पर लगने की विशेष आवश्यकता रहती है। एक वैज्ञानिक ने क्षय रोगी का कफ़ जिसमें बहुत से क्षय कीटाणु थे धूप में रखा। कुछ घण्टे के पश्चात् जांच की तो उसमें एक भी कृमि नहीं निकला। धूप ने सब कृमि समाप्त कर दिए थे। दूसरे वैज्ञानिक ने दो चूहों में सुई द्वारा क्षय विष पहुँचाया फिर उनमें से एक को बन्द कमरे में जहां धूप का नितांत अभाव और प्रकाश की कमी थी रखा। दूसरे को खुले मैदान में जहां धूप और प्रकाश था रखा। कुछ समय पश्चात् जांच करने पर ज्ञात हुआ कि पहले में क्षय संक्रमण आरम्भ हो गया था और दूसरा उससे मुक्त था। इन परीक्षणों से भी यही सिद्ध होता है कि धूप में रोग कीटाणु मारने की अद्भुत शक्ति है।

इण्डियन रेड क्रास सोसाइटी की ओर से एक पुस्तक "क्षय रोग के रोकने के उपाय" नामक निकली है। उसके ऊपर बड़े मोटे अक्षरों में लिखा है "स्वच्छ वायु, सूर्य प्रकाश, पौष्टिक भोजन और व्यायाम यक्ष्मा के शत्रु हैं। इसी प्रकार लन्दन के सुप्रसिद्ध डाक्टर ई० हेरिस रोडक एम० डी० (E. Haris Ruddock M. D.) ने लिखा है:–

Women and children, as well as men, in order to be healthy and well developed, should spend a portion of each day where the solar rays can reach them directly; this being particularly necessary where there is a tendency of tubercul. (Vade Mecum page 25-26)

अर्थात्–सब स्त्री और बच्चों तथा पुरुषों को स्वस्थ रहने तथा उसके बढ़ाने के विचार से प्रत्येक दिवस कुछ देर सूर्य किरणों को सीधे अपने शरीर पर लगने देना चाहिए। विशेष रूप से उन लोगों के लिए अति आवश्यक है जिनका झुकाव क्षय की ओर है। आगे फिर वह लिखते हैं:–

The open air treatment in sanatoria has done a great deal for many cases of tuberculosis. (V. M. page 283-284)

अर्थात्–स्वास्थ्य गृह द्वारा खुली वायु की चिकित्सा से क्षय रोग के बहुत से रोगियों को लाभ पहुँचा है। इसी प्रकार श्री जानकी शरण बी० ए० ने अपनी प्राकृतिक चिकित्सा के पुस्तक पृष्ठ 92 पर लिखा है–क्षय रोग में सारे शरीर में हवा और प्रकाश का लगना बहुत लाभदायक है फिर पृष्ठ 185 पर लिखते हैं– "यक्ष्मा का रोगी बराबर ऐसे खुले स्थान में रहे जहाँ उसे सोते जागते खुली हवा मिले।" क्योंकि धूप से अधिक आवश्यक चीज़ शुद्ध वायु है। वायु हमारे जीवन का आधार है यह तो सभी जानते हैं पर स्वास्थ्य का आधार शुद्ध वायु है इसको कम लोग समझते हैं। इसी कारण रोगी को बन्द कमरे में रखकर विषैली औषधि की सहायता से नीरोग करना चाहते हैं जिसमें बहुत कम सफलता मिलती है। हवा किस प्रकार हमारे रक्त को शुद्ध करती है और हमको शक्ति प्रदान करती है यह बात इसी पुस्तक में अन्यत्र बताई गई है। यहाँ यह समझ लेना चाहिये कि रोगी के शरीर में रोग तभी आता है जब उसके शरीर में विकार एकत्रित हो जावें। उन विकारों के निकालने में जहाँ और साधन उपयोग में लाये जाते हैं वहाँ रक्त से विकार निकालने को शुद्ध वायु मुख्य साधन है। बिना रक्त शुद्ध हुए हम पूर्ण निरोग नहीं हो सकते और बिना शुद्ध वायु मिले रक्त शुद्ध नहीं हो सकता। इस

विषय में ज्ञान का भण्डार वेद भी हमें स्पष्ट शब्दों में निम्नलिखित आदेश देता है जैसे:–

आदित्यो देवता

उद्यान्नादित्य: क्रिमीन् हन्तु निम्रोचनहन्तु रश्मिभि:। ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१॥

अर्थ–उदय होता प्रकाशमान सूर्य उन जर्म्स को मारे और अस्त हुआ सूर्य अपनी किरणों से मारे जो पृथ्वी के भीतर हैं इसी आधार पर हम कठिन रोगियों को प्रातः उदय होते और सायँ को अस्त होते सूर्य के सामने नंगे होकर उसकी किरणों को शरीर पर लेने का आदेश देते हैं जिससे और रोग तो दूर होते ही हैं क्षय रोगियों को भी लाभ पहुँचता है। वेद का यह सूक्त तो सूर्य के विषय पर है ही क्योंकि इसका देवता ही आदित्य है। सूर्य द्वारा कृमि नाश का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त वेद में अनेकों स्थान पर सूर्य द्वारा रोग नाश होने का वर्णन मिलता है। विस्तार भय से अधिक प्रमाण उपस्थित नहीं करते। इसी प्रकार वायु, अग्नि, विद्युत् को वेद ने रोग नाशक बताया है। इनकी प्रशंसा में जो मन्त्र दिये गये हैं उन्हीं के आधार पर जब मद्य, मांस, अण्डा खाने पीने वालों ने जिनकी बुद्धि मेधावी नहीं बनती वेद के अर्थ किए तो वह यह समझे कि आर्य लोग इन देवताओं की ऐसी पूजा किया करते थे जैसे मुसलमान लोग कब्रों की पूजा किया करते हैं पर यह विचार ठीक नहीं है। वेद का उद्देश्य इन देवताओं की प्रशंसा से यही है कि हम लोग इन देवताओं के गुणों को जानकर उनसे लाभ उठावें। आयुर्वेद ने भी इसी आधार पर इनके अनेकों प्रयोग बताये हैं क्योंकि यज्ञ द्वारा वायु इत्यादि की शुद्धि होती है। अतः यज्ञ को भी देवता माना है और सब देवताओं की पूजा का साधन बताया है। आयुर्वेद ने वात्त पित्त कफ तीन दोष मानकर वायु को सबसे प्रधान माना है और शरीर में अग्नि और वायु के मेल से जो प्राण उत्पन्न होता है उसके दस भाग करके पांच प्राण और पांच उप प्राण बताए हैं और कौन प्राण क्या क्या कार्य करता है और कहां निवास करता है इस सबका विस्तार से वर्णन है और इन्हीं में एक प्राण की शक्ति से हमारी आत्मा इस शरीर

को छोड़कर दूसरे शरीर में जाती है। यह सब इतने गहन विषय हैं जिनको वर्षों की तपस्या से सीखा जा सकता है। इस छोटी पुस्तक में सबका उल्लेख करना असम्भव है। इस पुस्तक का उद्देश्य तो वेद और आयुर्वेद से प्रमाणित प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त बताना है। वायु के विषय में वेद कहता है:–

यद्वो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हित: ततो नो देहि जीवसे ॥ ऋग्वेद १०।१८६।३

अर्थात् जहां अमृत है वहां रोग नहीं हो सकते। इस लिए अमृत का खजाना लेकर वायु जहां पहुँचती है वहां निरोगता प्राप्त होती है।

केवल वायु से चिकित्सा करने की विधि प्राणायाम द्वारा है। इसी वायु को "शार्ंगधर" ने जो आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ है "अम्बर पीयूष" की उपाधि दी है और देखिये:–

आवात वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रप:।

त्वं हि विश्व भेषजो, देवानां दूत ईयसे ॥ ऋऋ० १०-१३७-२

अर्थ–वायु तुम अपनी अमृत रूपी औषधि लाओ और यहाँ से सब दोष (रोग) दूर करो क्योंकि तुम्हीं सब औषधियों से युक्त हो। आगे लिखा है:–

द्वाविमौ वातौ वात, आसिन्धोरापराय:।

दक्षते अन्य आवात, परान्यो वातु यद्रप: ॥ ऋऋ० १०-१३७-३

दो वायु है एक समुद्र के ऊपर से आती है और दूसरी पृथ्वी के ऊपर चलती है। जो समुद्र के ऊपर से चलती है और पृथ्वी के ऊपर आती है वह बल लाती है। जो पृथ्वी की ओर से आती है वह दोषों को साथ लाती है। आजकल का विज्ञान भी Sea Breeze (सामुद्रिक वायु) और Land Breeze (पार्थिव वायु) दो प्रकार की वायु मानता है और विज्ञान और परीक्षण से यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि क्षय जैसा कठिन रोग भी समुद्री किनारे रहने से अथवा समुद्र में नाव पर रहने से आरोग्य हो जाता है जिससे वेद वाक्य की सत्ता प्रत्यक्ष सिद्ध होती है।

अतः आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा में सूर्य किरण प्रकाश और वायु से रोगी को लाभ उठाना चाहिए और स्वास्थ्य अवस्था में भी इन चीजों से इतना सम्पर्क रखना चाहिए कि हम कभी रोगी न हों। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्य अङ्ग उपवास व भोजन तथा रोग का कारण समझाने से पूर्व पाठकों को शरीर रूपी मशीन के कार्यों को समझ लेना आवश्यक है। अतः अगले पाठ में इस सम्बन्ध में संक्षेप में लिखा जावेगा इसे बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए क्योंकि इसके समझने से ही आप प्राकृतिक चिकित्सा का ठीक उपयोग कर सकेंगे।

पाठ 8

शरीर रूपी मशीन

दूध, फल, रोटी, चावल, सब्जी इत्यादि जब हम खाते हैं तो उससे कुछ परिवर्तनों के पश्चात् जितना रस बन सकता है वह कई स्थानों में घूमता हुआ रक्त में मिलकर हमारे शरीर का अंग बन जाता है शेष व्यर्थ भाग जो न तो रस बन सकता है न रक्त, वह छोटी आंतों से गुज़र कर बड़ी आंत अथवा कोलन में पहुँच जाता है। जहाँ अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाने पर शौच का वेग होता है। आमाशय से लेकर मलाशय तक एक झिल्ली और मांस पेशियों को भगवान ने इस प्रकार बनाया है कि हमारी इच्छा शक्ति की सहायता के बिना ही यह कार्य स्वयमेव होता रहता है और रस रक्त में और मल मलाशय में पहुँच जाता है। पर मलाशय में पहुँचने के पश्चात् स्वस्थ अवस्था में हमारी इच्छा शक्ति की सहायता बिना मल मलाशय से निकल नहीं सकता। इसी कारण शौच जैसे आवश्यक कार्य को लोग भूल से कभी कभी घण्टों रोके रहते हैं जो रोग का कारण है। क्योंकि रस-शोषक गिल्टियां जो भोजन में से रस ग्रहण करती हैं उन मल में से भी सड़ा रस शोषण करके हमारे रक्त में मिला देती हैं जिससे रक्त अशुद्ध होकर सैकड़ों रोगों का कारण बनता है।

रक्त नाड़ी

रक्त की दो प्रकार की नाड़ी हैं जिनको शिरा और धमनी कहते हैं। शिरा द्वारा शरीर के सब अंगों की गंदगी अशुद्ध रक्त के रूप में फेफड़ों में पहुँच कर साफ़ होती है। और धमनियों द्वारा शुद्ध रक्त शरीर के प्रत्येक अंग में पहुँचकर उनका पोषण करता है। श्वांस द्वारा जो ओषजन युक्त शुद्ध वायु फेफड़ों के भीतर पहुँचती है वह गन्दे काले रक्त की कार्बन से मिलकर कार्बोनिक एसिड गैस के रूप में प्रश्वांस द्वारा बाहर निकल जाती है और जैसे ही रक्त का काला भाग कार्बन निकल जाता है वह ओषजन को पाकर रक्त वर्ण हो जाता है। इन गैसों

के इस परिवर्तन में जो रगड़ होती है उसी से उत्पन्न विद्युत् जठराग्नि के नाम से हमारे शरीर को पाचन-शक्ति प्रदान करती है। इसी कारण ओषजन युक्त शुद्ध वायु में श्वांस लेने से भूख बढ़ती है और गन्दी वायु में रहने से भूख कम होती है। रक्त नाड़ी हृदय से इस शीघ्रता से शुद्ध रक्त सारे शरीर में पहुँचाती हैं कि सात सेकिण्ड के भीतर एकबार रक्त सारे शरीर में भ्रमण कर आता है इसी रक्त के भीतर हर प्रकार के तत्व छिपे रहते हैं। जिस अंग को जिस तत्व की आवश्यकता होती है रक्त अपने भ्रमण में दे आता है। जहां मांस बनाने वाले तत्व की आवश्यकता है वहां मांस तत्व, हड्डियों को हड्डी तत्व, और गिल्टियों को गिल्टी तत्व देता है। अर्थात् सब अंगों का पालन पोषण इस रक्त से ही होता है। यदि रक्त शुद्ध होगा तो सब अंग शुद्ध और स्वस्थ रहेंगे यदि रक्त विषैले पदार्थों से युक्त है तो अंग रोगों से युक्त हो सकते हैं। इससे यह बात भली प्रकार समझ में आती है कि हमें स्वास्थ्य रहने के लिये शुद्ध रक्त की कितनी आवश्यकता है। यह रक्त भोजन से ही बनता है जैसा भोजन होगा वैसा रक्त बनेगा और इसी से मन भी बनता है अर्थात् जैसा भोजन होगा वैसा ही मन बनेगा। मन पर भोजन का सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रभाव भी पड़ता है। अर्थात् जैसे साधनों से भोजन प्राप्त किया जाता है वैसा प्रभाव भी मन पर होता है। मन का प्रभाव स्वास्थ्य पर तथा स्वास्थ्य का प्रभाव मन पर होता है। यह विषय सूक्ष्म है। प्रसंग वश थोड़ा सा उल्लेख कर दिया। अधिक जानने की इच्छा रखने वालों को प्राचीन आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये।

यहाँ हम अब भोजन की गति पर विचार करते हैं। जब भोजन मुंह में पहुँचता है तो दांत काटते और चबाते हैं। मांस पेशियां और जिह्वा उसको इधर उधर ढकेलती हैं और मुंह की छः गिल्टियां अपना रस जिसे सलाइवा (लार) कहते है उसमें मिश्रित करके उसे पाचन योग्य बनाती है जिससे वह सुगमता से रक्त बन सके। मनुष्य के दांत न तो मांसाहारी जन्तुओं की भांति लम्बे और नुकीले बनाये गये हैं और न घास चरने वाले पशुओं की भांति चपटे। किन्तु इन दोनों से

पृथक फल और अन्न खाने के योग्य बने हैं। बन्दर जो फल और अन्न खाता है उसके दांत भी प्रकृति ने इसी प्रकार के बनाये हैं अर्थात् प्रकृति यह संकेत करती है कि हम अपना भोजन फल और अन्न ही करें वहां उस भोजन को दांतों की संख्या बत्तीस को देखते हुये खूब चबावें ताकि भोजन आमाशय में लेई के रूप में जावे और उसमें सलाइवा (लार) पर्याप्त मात्रा में मिल जावे क्योंकि यही भोजन को गलाने का कार्य करता है। यदि ऐसा न किया जावेगा तो भोजन स्थूल रूप में आमाशय में पहुँचेगा जिससे आमाशय को दांत का काम भी करना पड़ेगा। दांतों की अपेक्षा आमाशय को यह कार्य करना बहुत कठिन है क्योंकि दांत तो भोजन काटने और चबाने के लिए प्रकृति ने हड्डी के बनाये हैं और आमाशय मांस का। अतः यदि भोजन दांतों से भली प्रकार न चबाया गया तो जहां वह आमाशय में देर तक पड़े रहने के कारण सड़ने लगेगा वहां आमाशय अधिक कार्य करने से निर्बल हो जावेगा। परन्तु मुंह की लार बनाने के लिए भगवान ने हमारे मुंह में छः गिल्टियां बनाई हैं। यह गिल्टियां भी रक्त से अपना पोषण लेकर हर समय लार बनाने में व्यस्त रहती हैं और भोजन जितनी देर दांतों से चबाया जाता है उतना ही अधिक लार यह मिलाती रहती हैं। इसके मिलने से पहला परिवर्तन हमारे भोजन के भीतर यह होता है कि स्टार्च की शकर बन जाती है जिससे आमाशय को उसके पचाने में बड़ी सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त लार के मिलने से ठोस भोजन पतला लेई की भांति हो जाता है जिससे आगे खिसकने में सुगमता होती है। इस ठोस भोजन को पानी की सहायता से पतला करने का उल्टा प्रभाव होता है जो आगे बताया जावेगा। यदि मनुष्य बुद्धि से काम लेकर भोजन को भली प्रकार चबाकर खावे तो यह गिल्टियां लगभग सवा सेर लार भोजन में नित्य प्रति मिलाकर आपको स्वास्थ्य और बलवान बनाने में बड़ी सहायता कर सकती हैं। बालकों में जब तक लार नहीं टपकती और दांत नहीं निकलते तब तक सलाइवा (लार) उत्पन्न नहीं होता। इसी कारण उस समय उनको स्टार्च वाला भोजन देना मना है क्योंकि उसका पचाने वाला रस विद्यमान नहीं है। पर युवा

मनुष्य को तो प्रकृति की इस देन से पूर्ण लाभ उठाना चाहिये। कुछ लोग भोजन के साथ कई कई गिलास जल के और बर्फ मिले जल के पी जाते हैं यह बड़ी भूल है क्योंकि इससे सलाइवा पतला पड़ जाता है और स्टार्च की शकर बनाने का कार्य ठीक तौर पर नहीं कर सकता। जब भोजन आमाशय में पहुँचता है तो वहां एक दूसरा रस जो एक प्रकार का तेजाब होता है और जिसे अपने यहां आमाशय रस तथा डाक्टरी में गैस्ट्रिक जूस कहते हैं आकर मिलता है और भोजन को गलाता है पर जब उसी समय पानी अधिक मात्रा में पिया जाता है तो वह रस भी पतला हो जाता है और उसकी भोजन गलाने की शक्ति क्षीण हो जाती है। इसी कारण पशु जो प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं कभी भोजन के साथ जल नहीं पीते। कई घण्टे पश्चात् जल पीते हैं। मनुष्य को भी भोजन के डेढ़ व दो घण्टे पश्चात् जी भर कर जल पीना लाभप्रद है।

पाचन क्रिया पर बुरा प्रभाव डालने वाला एक और रिवाज बीड़ी, सिगरेट, हुक्का पीने अथवा तम्बाखू खाने का बढ़ रहा है। तम्बाखू का हमारे शरीर पर कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है और उससे अनेकों रोग उत्पन्न होते हैं इसका विस्तृत वर्णन तो हमने अपने ग्रन्थ "आरोग्य शास्त्र" में किया है पर तम्बाखू खाकर या पीकर बार बार थूकने से जो हमारी लार नष्ट होती है और भोजन पचाने के काम नहीं आती यह हानि भी कम नहीं है। बिना तम्बाखू का पान यदि भोजन के पश्चात् दिन में एक दो बार खा लिया जावे तो वह ऐसी हानि नहीं करता पर सबसे उत्तम तो वही है कि इन सब व्यसनों से पैसा बचा कर हम भोजन के साथ अधिक से अधिक फल और दूध खाने में व्यय करें तो इससे हमारे स्वास्थ्य की उन्नति होगी।

मुंह के नीचे आमाशय तक एक नौ इन्च लम्बी नाली है जिसे "नरखरा" कहते हैं। इसके भीतर की ओर पेशियां है जिनमें फैलने और सिकुड़ने की असाधारण शक्ति विद्यमान है। जब हम भोजन निगलते हैं तो पहले यह पेशियां फैलती हैं और फिर सिकुड़ कर तुरन्त उस भोजन को दबाती हैं जिससे यह झटपट आमाशय

में चला जाता है। जब तक भोजन मुंह और नरखरा में रहता है सलाइवा भोजन में मिलता और शकर बनाता रहता है। पर ज्यों ही भोजन आमाशय में पहुँचा यह कार्य बन्द हो जाता है। इस कारण भी आवश्यक है कि हम भोजन को खूब देर तक चबाने के लिए मुंह में रखें। एक और बात है भोजन के भीतर जो प्राण शक्ति होती है वह भी खूब चबाने से उभरती है अतः चबाया हुआ थोड़ा भोजन अधिक शक्ति देता है और बिना चबाया अधिक भोजन शक्ति क्षीण करता है। युवावस्था में कुछ लोग शक्ति के अभिमान में इन बातों पर ध्यान नहीं देते। किसी विद्वान का इस सम्बन्ध में उपदेश सुनने की आवश्यकता भी नहीं समझते। अपितु कुछ युवक तो ऐसी बात का उपहास उड़ाते हैं पर उनको याद रखना चाहिए कि प्रकृति अपने नियम तोड़ने वाले को कभी क्षमा नहीं करती। इन नियमों की अवहेलना करने वाले को आज नहीं तो कल पाचन विकार के किसी रोग से कष्ट उठाना पड़ेगा और ऐसे लोगों का जीवन-काल तो घट ही जावेगा स्वास्थ्य अवस्था में स्वस्थ रहने और रोग अवस्था में चिकित्सा करने दोनों ही बातों में पाचन क्रिया का बड़ा महत्व है। इस बात को भली प्रकार समझ लेने से ही हम स्वस्थ रह सकते हैं और रोगी होने पर शीघ्र आरोग्यता प्राप्त कर सकते हैं। शरीर सम्बन्धी अब आगे का वर्णन सुनिए।

आमाशय एक लम्बोत्तरी चमड़े की मशक सदृश्य थैली है जिसमें दो छेद हैं एक वह जहाँ से नरखरे में से भोजन पचने के लिये आमाशय में आता है और दूसरा वह जहाँ से भोजन पचने के पश्चात् आंतों में जाता है। यह दूसरा छेद भगवान ने इस कारीगरी के साथ बनाया है कि जब आमाशय के भीतर भोजन आता है तो यह दूसरा छेद बन्द रहता है और जब भोजन पचकर आंतों में जाने योग्य हो जाता है तो वह खुल जाता है और भोजन को नीचे डाल कर फिर उसे आमाशय में लौटने नहीं देता। भोजन डालने के पश्चात् वह तुरन्त बन्द हो जाता है। भगवान ने हमारा आमाशय यद्यपि मांस का बनाया है किन्तु यदि ठीक प्रकार दांतों से पिसी हुई कोई कितनी दुष्पाच्य वस्तु उसमें आवे तो वह उसके तेजाब से

गल सकती है क्योंकि भोजन के आमाशय में पहुँचते ही सलाइवा (लार) के सदृश्य यहाँ भी आमाशय की गिल्टियों से रस रसता है जिसे डाक्टरी परिभाषा में गैस्ट्रिक जूस कहते हैं। आमाशय की सहायक यह गिल्टियां दो चार नहीं किन्तु एक इञ्च के आठवें भाग में 225 और कुल आमाशय में 12,96,000 हैं। जिनमें से प्रत्येक के चारों ओर अत्यन्त बारीक रक्त की नालियों और स्नायु मंडल का जाल बना हुआ है। इन्हीं बारीक रक्त नाड़ियों से गिल्टियों में रक्त आता है जिससे शक्ति प्राप्त करके वह इस पाचक रस को बनाती रहती है और भोजन के आमाशय में आने पर उसमें वह रस छोड़ देती हैं। यह रस इतना तेज तेजाब होता है कि यदि भोजन के साथ अधिक जल पीकर उसकी शक्ति को निर्बल न किया जावे तो कठिन से कठिन भोजन को यह तेजाब थोड़े व अधिक समय में पचा डालता है।

जिस प्रकार मुंह में जिह्वा भोजन को इधर उधर घुमा कर लार को भोजन में मिलाने का प्रयत्न करती है उसी प्रकार आमाशय की पेशियां भोजन को आमाशय में इधर उधर ढकेल कर घुमाती हैं ताकि गैस्ट्रिक जूस उसमें भली प्रकार मिल जावे और भोजन गलकर पतली लेई सी बन जावे। जब तक भोजन पतला लेई सा न बन जावे, आमाशय को बराबर कार्य करना पड़ता है। अतः यह स्पष्ट है कि यदि हम भोजन को दांतों से खूब पीस कर और लार से गला कर आमाशय को दें तो उसे थोड़ा कार्य करना पड़ेगा और यदि झट पट खाकर बिना चबाये ही निगल जावेंगे तो आमाशय पर अधिक कार्य भार पड़ेगा और वह निर्बल हो जावेगा। आमाशय में पिसने के पश्चात् इस भोजन का नाम वैज्ञानिकों की परिभाषा में आम रस, कैलुस या कायम होता है। आम रस बन जाने पर आमाशय का दूसरा छिद्र खुलता है और भोजन आमाशय के दूसरे भाग डोडेनम में जो छोटी आंतों का ऊपरी भाग है जा पहुँचता है। यह लगभग 12 इञ्च लम्बा है इसके भीतर दो और रस आकर मिलते हैं और भोजन को पकाते अथवा पचाते हैं। इन दो रसों में पहला रस यकृत (जिगर Liver) से वह कर आता है जिसे पित्त (Bile सफ़रा) कहते हैं। यकृत के भीतर भी गैस्ट्रिक जूस के समान तेजाब को तैयार करने का

प्रबन्ध भगवान ने किया है। रक्त भ्रमण करता हुआ जब यकृत में पहुँचता है तो वह अपना भोजन उसमें से लेकर पित्त बनाने में लग जाता है और जैसे जैसे वह रस बनाता जाता है गालब्लेडर नामक थैली में एकत्रित करता जाता है और जिस समय भोजन डोडेनम में पहुँचता है इसी गालब्लेडर से वह कर वह रस एक दम उस भोजन (आम रस) में जा मिलता है इसके मिलने से भोजन का रंग तथा स्वाद तुरन्त बदल जाता है। इसका एक काम यह भी है कि वह सड़न, खटाई और तीव्रता जो गैस्ट्रिक जूस के मिश्रण से आमाशय में उत्पन्न हुई थी उसको कम कर दे। फिर भी शकर और स्नेह (चिकनाई) इस रस से भी नहीं पच पाते। अतः इसके पचाने को दूसरा रस जिसे क्लोम रस अथवा पैनकरियास कहते हैं भोजन में आकर मिलता है। यदि भोजन खूब चबा कर खाया गया है और लार इत्यादि से पचता हुआ ऊपर से आया है तब तो क्लोम रस को केवल शकर और चिकनाई को पचाना होता है। पर खूब न चबाने से अन्य पदार्थ प्रोटीन स्टार्च भी अनपचे पहुँचते हैं तो लार का काम भी क्लोम रस को करना पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप प्यास अधिक लगती है और क्लोम रस बनाने वाले अंग कार्य भार अधिक पड़ने से निर्बल हो जाते हैं। क्लोम रस के मिलने के पश्चात् कायम का नाम कायल हो जाता है जिसकी रंगत दूध के समान श्वेत हो जाती है। जब स्नेह का अधिक भाग इस कायल में रहता है तो क्लोम रस को उसके पचाने में कुछ अधिक समय लगता है। इसके पश्चात् यह कायल छोटी आंत के दूसरे भाग में पहुँचता है जहाँ आंतों का रस अर्थात् पांचवा रस भोजन में मिलता है और वह भी पचाने का कार्य करता है। छोटी आंत की लम्बाई 25 फीट के लगभग होती है पर भगवान ने उनको इस सुन्दरता से लपेट कर रखा है कि वह केवल 6 इञ्च स्थान में आ जाती हैं। इनके भीतर अनगिनती छोटी छोटी रस शोषक ग्रन्थियां हैं जो उस भोजन में से रस चूस चूस कर रक्त में पहुँचाती हैं। यदि भोजन ठीक पीसा हुआ लेई सदृश्य है और सात्विक वस्तुओं का मिश्रण है, दुर्गन्ध रहित है और मांस इत्यादि अप्राकृतिक पदार्थ रहित होने से उसमें सड़न उत्पन्न नहीं की गई

है। तब तो इन ग्रन्थियों का कार्य हल्का रहता है और यह रस शोषक ग्रन्थियां बड़ी सुगमता से रस चूस कर रक्त में हृदय की ओर पहुँचाती रहती हैं और रक्त भी शुद्ध रहता है फिर कोई रोग नहीं होता पर यदि भोजन ठीक चबाया नहीं गया है या खूब ठूंस कर किया गया है जिससे वायु का स्थान भी भोजन से भर गया है अथवा भोजन के साथ अधिक जल प्रयोग करके लार और गैस्ट्रिक जूस को पतला कर ठीक पचने का अवसर नहीं दिया गया है या भोजन के दो घण्टे पश्चात् उचित मात्रा में जल पीकर ठीक लेई नहीं बनाई गई है अथवा वार्य का अधिक नाश करके जठराग्नि को निर्बल कर दिया गया है जिससे यकृत इत्यादि पाचक यन्त्र निर्बल होकर अपना रस ठीक नहीं बना रहे हैं अथवा अंडा, मांस इत्यादि अप्राकृतिक पदार्थ खाकर भोजन को सड़ाया गया है तो यह ग्रन्थियां उसी सड़े रस का शोषण करके रक्त में पहुँचा देंगी, इससे रक्त दूषित हो जावेगा। वही दूषित रक्त सारे शरीर में भ्रमण करके अपना विष फैलावेगा। ऐसी अवस्था में किसी भी अंग का सुगमता से रोगी हो जाना सम्भव है। ऐसे ही रक्त वाले के शरीर में जब किसी रोग के कृमि श्वांस अथवा भोजन द्वारा पहुँचते हैं तो वह रोग उत्पन्न कर सकते हैं। आजकल के अधिकांश रोगी और चिकित्सक इन बातों पर विचार न करके कुछ नियत की हुई विषैली औषधियों द्वारा रोग के विष को दबाना चाहते हैं और कुछ काल के लिये वह दब भी जाते हैं जिससे रोगी और चिकित्सक बहुत प्रसन्न होते हैं पर विकार दब कर सर्वदा दबे नहीं रह सकते। वह कुछ समय के पश्चात् उससे भी अधिक भयंकर रोग उत्पन्न करते हैं और प्रकृति उस दबे विष को शरीर से बाहर निकालने का प्रयत्न करती है। उतावले रोगी और अर्द्ध शिक्षित चिकित्सक तेज़ औषधियों अथवा इन्जेक्शन से उनको फिर दबाने का यत्न करते हैं अंत को इसी तना तनी में तपेदिक आदि कोई भयंकर रोग इत्यादि होकर रोगी बिना मौत मर जाता है। अब फिर उसी श्रृंखला पर विचार कीजिये। भोजन २५ फीट लम्बी छोटी आंतों में उनकी केंचुए जैसी चाल के कारण आगे बढ़ता जाता है और वह रस शोषक ग्रन्थियां भोजन के सार भाग

का रस चूस चूस कर रक्त में पहुँचाती हैं। अंत को सब सार भाग चूसे जाने के पश्चात् शेष अवशिष्ट भाग बड़ी आंत के अन्तिम भाग कोलन अथवा मलाशय में पहुँचता है।

बड़ी आंत अथवा बस्ती

बड़ी आंत लम्बाई के विचार से नहीं किन्तु चौड़ाई के विचार से बड़ी आंत कहलाती है। छोटी आंत से जब भोजन का अवशिष्ट भाग नीचे जाना चाहता है तो इसके एक फाटक के पास पहले एकत्रित होता है जो ऊपर से सामान नीचे भेजने के समय खुलता है और सामान नीचे डालकर तुरन्त बन्द हो जाता है। स्वस्थ अवस्था में ऐसा कभी नहीं हो सकता कि नीचे का मल उस फाटक से ऊपर छोटी आंत में चला जावे। बड़ी आंत के तीन भाग होते हैं जिनमें सबसे नीचे वाला जहाँ मल एकत्रित होता है मलाशय अथवा कोलन कहलाता है। छोटी आंतों की भाँति ही बड़ी आंत में भी रस चूसने वाली लाखों ग्रन्थियां हैं जो इस भोजन के शेष भाग में से बचा खुचा सार भाग रस चूसती रहती हैं और यह क्रिया उस समय तक चालू रहती है जब तक मल गुदा द्वारा बाहर नहीं निकाल दिया जाता यदि हम अपना जीवन नियम पूर्वक प्रकृति के आदेशानुसार बितावें, प्राकृतिक भोजन करें तो कोलन में पहुँचने के तीन घण्टे के भीतर ही शौच का वेग होता है। वेग होते ही उसे त्याग दिया जावे और वह पूरी मात्रा में निकल जावे तो फिर न कोई भीतरी रोग होवे और न किसी रोग के कृमि हमारे शरीर में अड्डा जमा पावें। इसके विपरीत जब हम मांस, मदिरा, तमाखू, चाय तथा विषैली औषधियाँ इत्यादि अप्राकृतिक पदार्थ अपने शरीर में पहुँचाते हैं तो वह प्राकृतिक ढंग से उस प्रकार नहीं पचते जैसे अन्न, फल, दूध और सब्जी। इसी प्रकार यदि शुद्ध प्राकृतिक भोजन भी खाने और चबाने के नियमों के विपरीत किया जाता है तो वह भी ठीक रूप से नहीं पच पाता। ऐसी अवस्था में शौच समय पर पूरा मल न निकल कर उसका थोड़ा भाग कोलन में चिपटा रह जाता है और वहाँ सड़ता रहता है। यहाँ से ही लगभग सारे रोगों का बीज बोया जाता है जिसका वर्णन आगे किया जावेगा।

पाठ 9

रोग का कारण

कृमि या विकार

रोग का असली कारण वह मल ही है जो कोलन में महीनों और बरसों सड़ कर अपनी सड़ायन रक्त द्वारा सारे शरीर में पहुँचाता है। इस सीधी बात की तो उपेक्षा की जाती है और एक गौण कारण को मुख्य स्थान दिया जाता है। डाक्टर लोग रोग का कारण कृमि को बताते हैं और कुछ अन्य चिकित्सक इसका उपहास उड़ाते हैं। हमारी समझ में दोनों ही सज्जन भ्रम में हैं। जो लोग रोग कृमि का उपहास उड़ाते हैं वह अपने स्वाध्याय की कमी का परिचय देते हैं। जब हमारे वेद शास्त्र सभी रोग कृमि के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और आज यन्त्रों द्वारा हम उनको आँख से देख सकते हैं तो उनकी विद्यमानता को स्वीकार न कर उपहास उड़ाना मानों अपना उपहास कराना है। हमने इस विषय को अपनी पुस्तक "यज्ञ चिकित्सा" में विस्तार से लिखा है जो चाहें वहाँ से देख लें। वेद में अनेकों मन्त्र हैं जिनमें रोग कृमियों का वर्णन आता है और अनेक स्थानों पर उनका नाश करने वाला यज्ञ को बताया है पर यहाँ तो केवल उनके अस्तित्व का प्रश्न है जो निम्नलिखित एक ही मन्त्र से सिद्ध होता है।

दृष्टम दृष्टम तृहमथो कुरुरुभतृहम।
अल्गण्डून्त्सर्वा उच्छ्रलुनान क्रिमीन् वचसा जम्भवामसि ॥
अथर्व का २ सू० ३१ मंत्र २

अर्थ–दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले कृमि गण को मैंने नष्ट कर दिया है और भी भूमि पर रेंगने वाले को मैंने नष्ट कर दिया है। सब उपधानों में भरे हुये वेग 2 से चलने वाले कीड़ों को वचसा से हम मार डालें। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण 1-1-4 में वर्णन किया है। चर्म झटकने से उस पर चिपके हुए राक्षस नीचे गिरते हैं और उनका नाश होता है राक्षस चमड़े पर चिपक जाते हैं वे

मनुष्य को आँखों से नहीं दिखाई देते हैं। इतने सूक्ष्म वे राक्षस हैं। सूर्यास्त होने पर इन्हें बल आता है और सूर्य की किरणों से इनका नाश होता है। यह नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं और मनुष्य तथा अन्य प्राणियों को सताते हैं। आगे और भी लिखा है–किलात और आकुली, अतिसार और विशेष सूजन के रोग आर्यों को दुख देते थे। इनके नाश करने को ऋषभ नामी औषधि से सफलता न हुई। आर्यों को इस कारण क्लेश था। बहुत अन्वेषण के पश्चात् उन असुरों को यज्ञ से नाश करने की विधि सूझी और इसमें सफल हुए। यहाँ पर इन रोगों को असुर कहा है। फिर एक स्थान पर लिखा है कि असुर तथा राक्षस अर्थात् रोग कृमि यज्ञ से भयभीत होते थे क्योंकि यज्ञ रोग कृमियों का मारने वाला होता है।

आयुर्वेद में भी कुष्ठादि में जीवाणु को रक्तमय बतलाया है (सूक्ष्मारक्त जा जन्तवोऽणव:) ऐसे ही और भी कृमि जन्य रोग आयुर्वेद ने माने हैं। हमारा अनुमान तो यह है कि भूत प्रेत को रोग का कारण मानने की जड़ में यही कृमि का सिद्धांत था क्योंकि उनको राक्षस आदि शब्दों का जो प्रयोग किया गया है उससे नासमझ लोगों ने भूत प्रेत की धारणा बना ली हो तो कोई आश्चर्य नहीं। जो हो पर रोग कृमि का अस्तित्व तो प्राचीन काल से माना ही जाता है।

अब आजकल के डाक्टर लोग केवल कृमि को ही रोग का कारण मानते हैं। यह कृमि रोगी के समीप विशेष रूप से और अन्य स्थानों में वायु मंडल में घूमते रहते हैं और श्वांस भोजन अथवा किसी अन्य मार्ग से जब किसी मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तभी वह रोगी हो जाता है क्योंकि यह मनुष्य के रक्त में पहुँच कर उसे दूषित कर देते हैं और वहाँ अपनी सन्तति बढ़ाने लगते हैं। इसी सिद्धान्त को मानकर कृमि मारने को आज बड़ी तीव्र और विषैली औषधियों को मुँह व सुई (इंजेक्शन) द्वारा अन्दर पहुँचाया जाता है। कृमि मारने की धुन में हमलोग यह भी नहीं सोचते कि रोग कृमि के मृतक शरीर और औषधि दोनों का विष मिलकर रक्त पर कोई बुरा प्रभाव तो न पड़ेगा। कुछ भी हो रोगों के कारण कृमि हैं। यह सिद्धांत बहुसंख्यक वैज्ञानिकों का है। पर अब उच्च कोटि के

वैज्ञानिक का, कृमि का अस्तित्व मानते हुये भी, यह विश्वास नहीं रहा है कि रोग का मुख्य कारण कृमि ही है। इस विश्वास के हटने का मुख्य कारण तपेदिक की चिकित्सा में डाक्टरों की असफलता है। पाश्चात्य देश के वैज्ञानिक भिन्न भिन्न काल में क्षय रोग का कारण कभी छूत अर्थात् कृमि और कभी दूषित शरीर रचना अर्थात् शरीर के भीतर के विकार मानते रहे और इन विचारों में कई बार परिवर्तन होता रहा है। अंत में सन् 1882 ई० में जर्मन के डाक्टर राबर्ट काख (Robert Koch) ने जब क्षय रोग के कृमि मालूम किये तब से सब लोग रोग का कारण कृमि मानने लगे और दूषित शरीर रचना की ओर से ध्यान हटाकर केवल कृमि मारने की औषधियाँ प्रयोग करने में लग गये। पचास वर्ष तक ऐसा करने पर भी जब एलोपैथी को क्षय रोग की चिकित्सा में सफलता न मिल सकी तो अब उच्च कोटि के वैज्ञानिक जहाँ यह कहने लगे हैं कि डाक्टरी में कोई ऐसी औषधि न खोजी जा सकी है जो शरीर के भीतर क्षय-कृमियों को मार दे और शरीर को कोई हानि न पहुँचावे वहाँ वह यह भी खुले शब्दों में कह रहे हैं कि हमारी इस असफलता का मुख्य कारण रोग का कारण केवल कृमि को मानकर दूषित शरीर रचना की उपेक्षा करना है। वह कहते हैं कि रोग कृमि तो वायु मंडल में भरे पड़े हैं और यह लगभग असम्भव है कि उनका संक्रमण न हो पर प्रभाव उन पर ही होता है। जिनका शरीर दूषित नहीं है उनके शरीर में कृमि पहुँच भी जावे तब भी रोग नहीं हो सकता क्योंकि शरीर की रोग रक्षक शक्ति उनको मार कर समाप्त कर देती है अर्थात् इनकी सम्मति में रोग का मुख्य कारण दूषित शरीर रचना है अर्थात् किसी को रोग तब ही होता है जब उसके शरीर में रोग ग्राह्य शक्ति विद्यमान हो।

आयुर्वेद क्योंकि बहुत गहराई में गया है अतः वह इसी को वात, पित्त, कफ का दोष मानता है और इस पुस्तक में इसी वस्तु को विकार के नाम से पुकारा गया है जिसका अनुभव अपने जीवन में हर मनुष्य को अनेक बार हुआ होगा। शरीर भारी है, तबियत उठने को नहीं चाहती, मन मलीन है ऐसी अवस्था में

भोजन, औषधि अथवा प्रकृति की सहायता से हमें दो चार दस्त हो गये बस तबियत तुरन्त हल्की मालूम होने लगी। ऐसा क्यों हुआ ? शरीर के भीतर से कुछ विकार निकल गए। दूसरा मनुष्य 104 व 105 डिग्री के ज्वर से पीड़ित है बहुत बेचैनी है; उठा नहीं जाता; दर्द से कराह रहा है ऐसी अवस्था में प्राकृतिक रूप से अथवा किसी साधन व औषधि की सहायता से खुलकर पसीना आ गया और मिनटों में अवस्था बदल गई। वही मनुष्य जो अभी किसी से बोलना नहीं चाहता था हँसी खुशी से गम्भीर विषय पर भी विचार कर रहा है। ऐसा क्यों हुआ ? पसीना के मार्ग से विकार निकल गया। ऐसे अवसर तो जीवन में कभी कभी ही आते हैं। हम वह बात बताते हैं जिसका अनुभव रोज़ होता है। आप प्रातःकाल उठते हैं तबियत में सुस्ती होती है। भोजन का बढ़िया से बढ़िया पदार्थ की भी उस समय खाने की इच्छा नहीं होती। अंगड़ाई ले रहे हैं। अब आप उठे शौच गये। जिह्वा, मुँह, दाँत सबके विकार दातून द्वारा बाहर फेंक दिये। सारे शरीर के विकार स्नान द्वारा निकाल दिए। बस आप प्रसन्न हैं। हर काम करने की और खाने की भी रुचि होती है। यह विकार निकाल देने की ही महिमा है। अब यह बात आपकी समझ में आने लगी होगी कि हमारे कष्ट का कारण केवल कृमि नहीं किन्तु विकार हैं। कभी कृमि भी इन विकारों का एक अंग हो सकते हैं और इन्हीं विकारों के अधिक समय तक शरीर में रहने से दूषित शरीर रचना होती है अथवा रोग ग्राह्य शक्ति उत्पन्न होती है। अथवा आयुर्वेद के शब्दों में दोष कुपित होते हैं। अब हम इसी विकार के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से बताते हैं क्योंकि यही रोग का मुख्य कारण है।

विकार

भगवान ने हमारे शरीर में प्राकृतिक रूप में वह शक्ति उत्पन्न की है कि हमारा शरीर शरीर के भीतर केवल वही वस्तु रहने देता है जो हमारे शरीर का अंग रक्त, मांस इत्यादि बन जावे। शेष जो कुछ होता है उसे शरीर के बाहर निकाल देता है। उदाहरणार्थ यदि हम भूल से पैसा या इकन्नी निगल जावे तो

चूंकि यह शरीर का अंग नहीं बन सकती अतः वह शौच के साथ निकाल दी जावेगी। इसी प्रकार यदि हम बन्दूक की गोली को निगल जावें तब भी प्रकृति उसे इसी प्रकार निकाल देवेगी। किन्तु यदि वही गोली हमारे शरीर को भेदकर, बन्दूक द्वारा, मांस में घुस जावे तो अब चूंकि यह प्रकृति के उस सीधे मार्ग में नहीं है जहाँ से वह विकार निकालती है अतः उसके निकालने में उसे कठिनता पड़ेगी। पर विकार निकालने की चेष्टा वह अवश्य करेगी और उस समय तक करती रहेगी जब तक हमारे शरीर में जीव है। यह हो सकता है कि इस प्रयत्न में यहाँ तक नौबत पहुँच जावे कि जीवात्मा को इस शरीर को छोड़ना ही पड़े। पर सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य नहीं हो सकता। रक्त के अणु उस स्थान का रक्त संचार बन्द कर देंगे और रक्त के अणुओं का पीप बनाकर उस स्थान को ऐसा मुजायम (पिलपिला) बनावेंगे कि गोली उस स्थान से निकल जावे। फिर उस स्थान का पीप सुखाने और शत भरनेकी क्रिया भी शरीर स्वयं ही करेगा। यदि शरीर को अपने इस कार्य में सफलता न मिले तो वह अधिक से अधिक भाग में पीप उत्पन्न करता रहेगा और अपने कार्य को उस समय तक जारी रखेगा कि या तो गोली निकल जावे अथवा जीवात्मा शरीर को छोड़ जावे। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर स्वयं ही विकार निकालने की चेष्टा किया करता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार जो भोजन हम करते हैं उसमें से शरीर उतने भाग को ग्रहण कर लेता है जितना उसका अंग बन सकता है शेष मल के रूप में निकाल देता है।

शरीर के पास इस मल अथवा विकार के निकालने के चार मार्ग हैं। तीन साधारण और एक असाधारण। साधारण मार्ग यह हैं:–

1. फेफड़ों से सारे शरीर की गन्दगी (विकार) श्वांस द्वारा निकलती है।

2. मल, मूत्र, कफ़, चंप, नाक, कान, आँख के मैल रूप में इनसे सम्बन्धित इन्द्रियों द्वारा विकार निकलते हैं।

3. भाप और पसीने के रूप में रोम छिद्रों द्वारा विकार निकलते हैं।

असाधारण मार्ग

यदि उपरोक्त मार्गों से ठीक ठीक विकार निकलते रहते हैं तब असाधारण मार्ग रोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर यदि ऐसा नहीं होता और विकार शरीर में एकत्रित हो जाते हैं तो प्रकृति अथवा हमारा शरीर रोग उत्पन्न कर विकार निकालता है। जैसेः—बहुत बदहज़मी होने पर स्वयं दस्त आ जाते हैं। वात, पित्त, कफ़ इत्यादि के रूप में विकार एकत्रित होने पर ज्वर आने से विकार जलते हैं और पसीने से विकार बाहर निकलते हैं। यह असाधारण मार्ग केवल उसी समय काम में लाया जाता है जब विकार शरीर में इतनी मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं कि शरीर के काम में बाधा पड़े अथवा उसे कुछ खतरा हो।

विकार कहाँ से आते हैं

यह प्रश्न हो सकता है कि यह विकार कहाँ से आते हैं और क्यों शरीर में जमा होते हैं ? इसका उत्तर सुनियेः— श्वांस के साथ वायु में उड़ने वाले कृमि और अन्य पदार्थ भीतर पहुँचते हैं इसी प्रकार जल और भोजन के साथ गन्दगी पहुँच सकती है। मक्खी पहले किसी रोगी अथवा किसी मनुष्य के मल पर बैठ कर उसके कृमि अपनी टाँगों अथवा पंखों में लगा लाती है और फिर वही हमारे भोजन पर बैठ कर उसे गंदा कर देती है जिसे खाने से वही गन्दगी हमारे शरीर में पहुँच जाती है। घर पर तो कुछ देख भाल भी रहती है पर बाज़ार का भोजन मिठाई इत्यादि तो लगभग सभी इस गन्दगी से ओत प्रोत रहते हैं।

शरीर के भीतर जो क्रियायें हो रही हैं इनसे तथा हमारे कार्य करने (बोलने चालने इत्यादि सब कामों) से शरीर के भीतर कोष (Cells) टूटते रहते हैं जो विकार रूप हो जाते हैं और यह कार्य सोते जागते हर समय होता रहता है। यह टूटे कोष या तो पसीने के रूप में बाहर निकाल दिये जाते हैं या रक्त अपने भ्रमण में इनको लेकर फेफड़ों में पहुँचा देता है और वहाँ श्वांस में ली हुई ओषजन से जलाये जाने के पश्चात् प्रश्वांस द्वारा बाहर फेंके जाते हैं। यदि ठीक तरीके पर

श्वांस ली जाती है, ओषजन युक्त वायु में श्वांस ली जाती है और फेफड़ों को पूर्ण विकास का अवसर दिया जाता है तब यह विकार इस मार्ग से पूर्ण रूप में निकल जाते हैं अथवा भीतर रुके रहते हैं। इसी प्रकार जब त्वचा को ठीक रखा जाता है त्वचा का मैल नित्य प्रति ठीक स्नान द्वारा साफ़ करके उसके छिद्र खोल दिये जाते हैं और शरीर को पूर्ण वायु और धूप का सम्पर्क मिलता रहता है तथा शरीर का व्यायाम भी होता रहता है तब यह विकार शरीर से बाहर पसीना द्वारा निकल जाते हैं अन्यथा शरीर में सड़ते रहते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं।

खाये हुये पदार्थों का जो भाग रस, रक्त बन कर शरीर का अंग नहीं बन जाता वह मल मूत्र के रूप में बाहर निकल जाना चाहिये। पर भोजन की अनियमितताओं से यदि उस मल का कुछ भाग शरीर में चिपटा रह जाता है तो वह सड़ता और विष उत्पन्न करता है और रस शोषक ग्रन्थियों द्वारा रस चूसे जाने पर रक्त दूषित होता और विष युक्त रक्त से सब अंग रोगी हो सकते हैं।

एक बात और है जो आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने खोजी है कि हमारे रक्त में 80% क्षार और 20% खटाई होती है। अतः हमें भोजन ऐसा करना चाहिए जिससे शरीर में दोनों वस्तुयें इसी अनुपात से बनें। जब हम खटाई उत्पन्न करने वाला भोजन अधिक मात्रा में खाते हैं तो हमारा रक्त दूषित हो जाता है। फिर वह किसी भी अंग का रोग उत्पन्न कर सकता है। यदि हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करें, नींद भर सोवें, समय पर जागें, ठीक श्वांस लें, शुद्ध अन्न जल समय पर सेवन करें, मन को शुद्ध रखें, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार में अनुचित रूप से न फंसे तो हमारे शरीर में न विकार रुकें और न कोई रोग हो। पर आजकल मनुष्य ने विदेशी सभ्यता के चक्कर में पड़ कर बहुत से नियम बदल डाले हैं और प्रकृति के असाधारण विकार निकालने वाले मार्ग रोग को दबाने के गलत साधन प्रयोग किए हैं। इससे विकार शरीर से नहीं निकलते हैं। विकार निकालने की जो शक्ति हमारे शरीर में है उसे नाड़ी संस्थान कहते हैं जिसके विषय में अगले पाठ में बताया जावेगा।

पाठ 10

नाड़ी-संस्थान

विकारों के निकालने में शरीर को सहायता देने अथवा न निकालने की शक्ति-हीनता का मुख्य कारण नाड़ी-संस्थान है। नाड़ी संस्थान क्या है इसे भली प्रकार समझ लीजिये। क्योंकि इसको ठीक न समझने के कारण ही आप निर्बल और रोगी बनते हैं और इसे ठीक प्रकार समझ कर और उसे ठीक बना कर ही हम स्वस्थ रह सकते हैं और शक्ति शाली संतान उत्पन्न करके देश और जाति का उपकार कर सकते हैं।

हमारे शरीर में जीवात्मा है जो सब इन्द्रियों और शरीर पर शासन करता है पर वह निराकार है। उसकी साकार शक्ति हमारा मस्तिष्क है जो सोचता बिचारता और ज्ञान प्राप्त करके हमें कुमार्ग से बचाता है। मस्तिष्क से एक मोटी नाड़ी रीढ़ में होकर कमर तक जाता है जिसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। यदि मस्तिष्क को हम राजा मानें तो यह नाड़ी उसका मन्त्री है। फिर इसके राज कर्मचारियों के रूप में सैकड़ों नहीं लाखों नाड़ी सूत्र सारे शरीर में फैले पड़े हैं। हड्डी, मांस, पेशी, त्वचा इत्यादि कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ यह नाड़ियाँ न हों। इनमें से कुछ इतनी बारीक होती हैं जो आँख से दिखाई भी नहीं देतीं। हमारे शरीर की प्रत्येक क्रिया खाना, पीना, चलना, सोना, मल-मूत्र त्याग करना, सोचना और विचारना इत्यादि बिना नाड़ी-संस्थान की सहायता के नहीं हो सकती।

यदि हमारा नाड़ी-संस्थान बलवान होगा तो हमें अच्छी भूख लगेगी, भोजन ठीक पचेगा और आवश्यकतानुसार पूरा मल-मूत्र-पसीना इत्यादि शरीर से निकलता रहेगा और हम स्वस्थ बने रहेंगे। पर यदि नाड़ी संस्थान निर्बल है तो न खुल कर भूख लगेगी न भोजन में स्वाद आवेगा न वह ठीक पचेगा और न मल मूत्र ठीक मात्रा में समय पर निकलेगा।

मानव शरीर के नाड़ी तन्तु

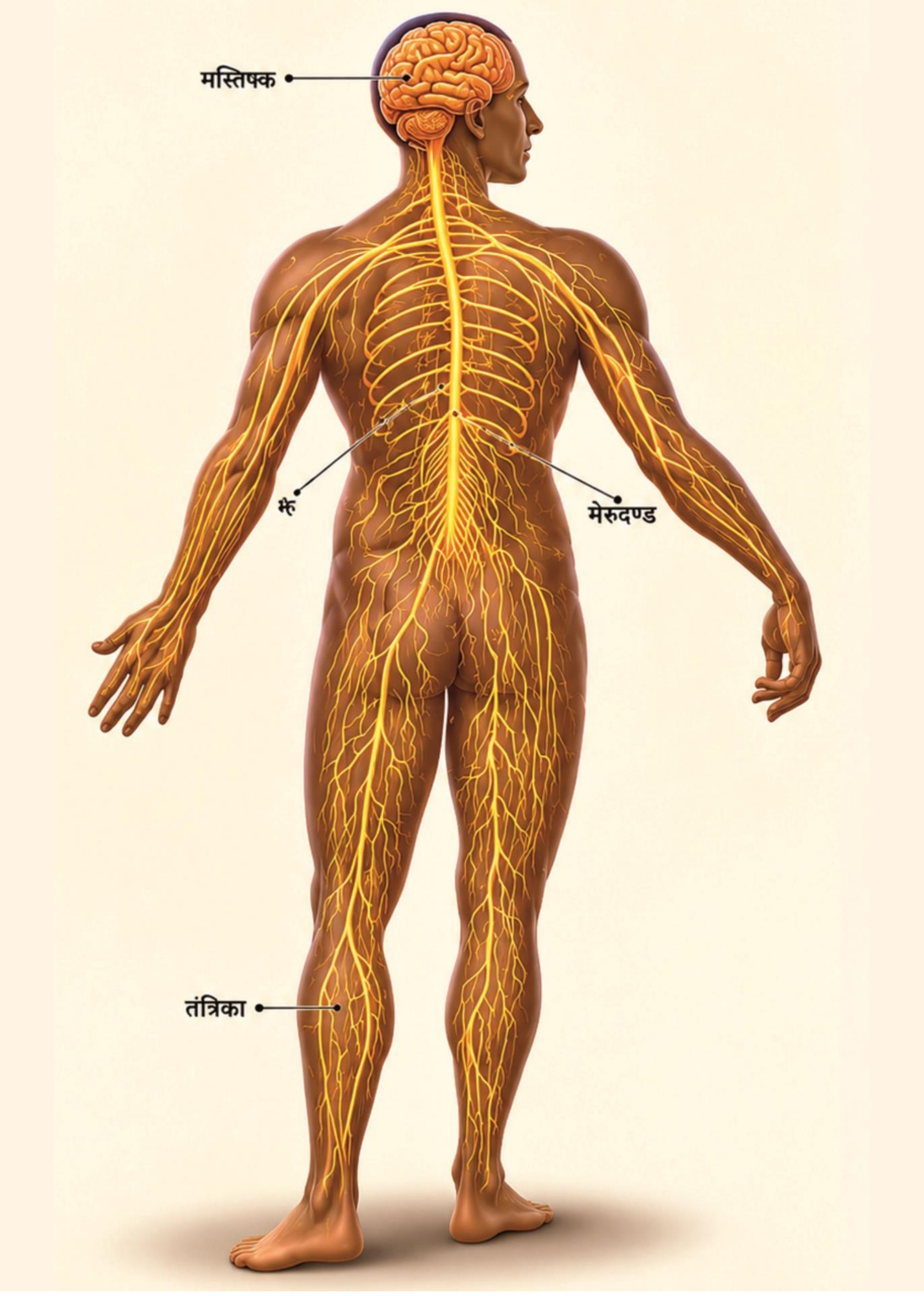

आमाशय और अंतड़ियाँ

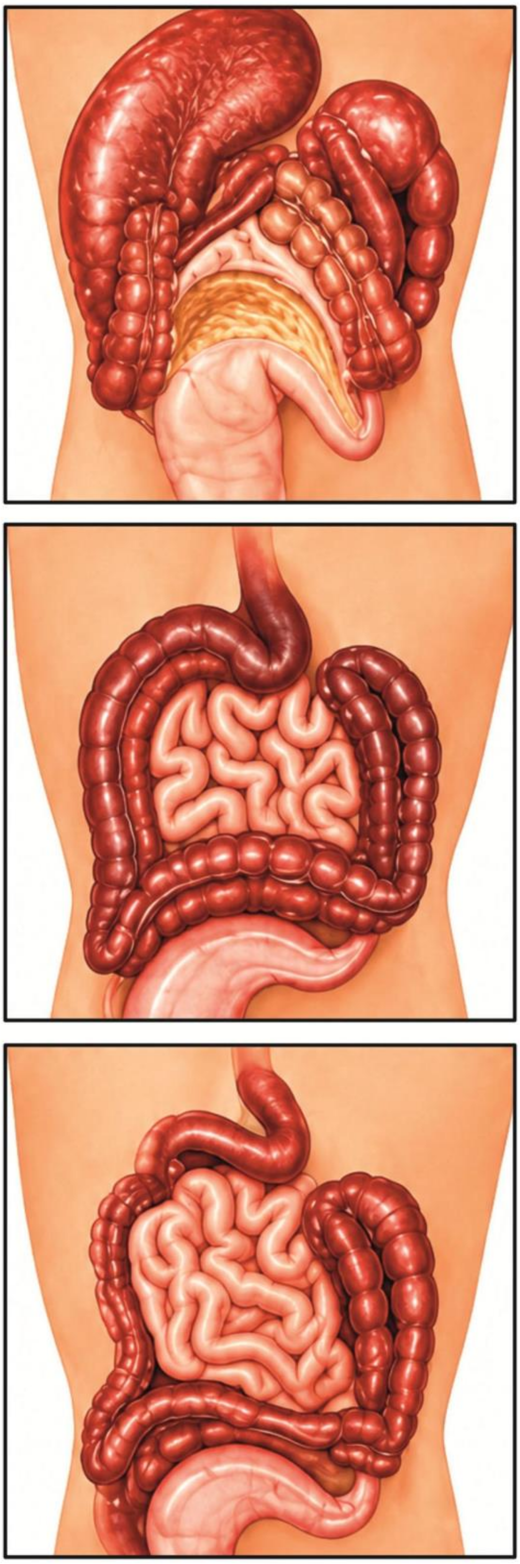

ऐसे आवश्यक अंग के विषय में आपका स्वाभाविक रूप से प्रश्न होगा कि नाड़ी संस्थान किस चीज़ से शक्तिशाली बनता है और किस चीज से दुर्बल होता है? सुनियेः–सूर्य उदय से पूर्व प्रातः सोकर उठने, पर्याप्त मात्रा में धूप और प्राण प्रद वायु सारे शरीर में लगने, शुद्ध वायु में श्वांस लेने, सात्विक भोजन दूध, घी, फल, सब्ज़ी, अन्न खाने, ठीक स्नान, व्यायाम, मालिश करने और ब्रह्मचर्य का पालन करने, प्रसन्नता और शुद्ध विचार रखने, माता पिता इत्यादि पूज्य जनों की सेवा करने, ईश्वर भक्ति तथा परोपकार के कार्य करने और सर्वदा मन, वचन, कर्म से सत्य का आचरण करने से नाड़ी संस्थान बलवान होता है तथा दिन चढ़े उठने, रात को अधिक जागने, विषय सम्बन्धी अधिक वार्तालाप करने, अधिक विषय भोग करने, हिंसा करने, माँस, अंडा, मदिरा, भंग, चरस, गांजा, तम्बाखू, बीड़ी, सिगरेट इत्यादि सेवन करने, झूठ बोलने, चोरी, व्यभिचार इत्यादि कुकर्म करने, ईर्षा द्वेष करने से नाड़ी संस्थान निर्बल होता है। एक बात और है कि निर्बल माता पिता की संतान भी निर्बल नाड़ी संस्थान वाली होती है। पर उपर्युक्त नियमों पर आचरण करके वह अपने नाड़ी संस्थान को शक्ति शाली बना सकती है। इसी प्रकार बलवान माता पिता की संतान भी अनियमिततायें करके अपने नाड़ी बल को निर्बल बना सकती है।

वैसे रक्त से नाड़ी संस्थान का भी पालन पोषण होता है। अतः अच्छे भोजन का प्रभाव रक्त पर और रक्त का नाड़ी संस्थान पर पड़ता है और जिसका नाड़ी संस्थान निर्बल है उसे पौष्टिक पदार्थों से भी बल प्राप्त नहीं होता क्योंकि किसी भी पौष्टिक पदार्थ के केवल खाने से ही बल नहीं आता, बल तब ही आता है जब वह ठीक रूप से पच जावे और पचाने का कार्य नाड़ी संस्थान का है। जब नाड़ी संस्थान निर्बल होगा तो पौष्टिक भोजन के पचाने में नाड़ी संस्थान को अपनी शक्ति से अधिक बल लगाना पड़ेगा जिससे वह और भी निर्बल होगा। इसी प्रकार बहुत डटकर खाने से भी नाड़ी संस्थान वाले को शक्ति बढ़ाने के लिए उपाय बस्ती कर्म, उपवास और व्यायाम से प्रारम्भ करना चाहिये। जब पाचन शक्ति बढ़े और

खूब भूख लगे तब पौष्टिक पदार्थ खाना चाहिये। जो लोग शक्ति लाने को विषैली औषधियों की शक्ति वर्धक औषधियाँ खा कर रक्त में उत्तेजना बढ़ा कर शक्ति शाली बनना चाहते हैं वह वास्तव में अपने को धोखा देते हैं। नाड़ी संस्थान को शक्ति-शाली बनाने का सबको उद्योग करना चाहिए पर उसके साधन वह काम में लाना चाहिये जो ऊपर इसमें अभी बताये हैं अथवा विस्तार से "आरोग्य-शास्त्र" में वर्णन किये गये हैं जिनमें से मुख्य प्रातःकाल का भ्रमण, व्यायाम, प्राणायाम और ब्रह्मचर्य हैं। अब हम अगले पाठ में आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा के एक आवश्यक अंग "हवन यज्ञ" पर लिखेंगे।

पाठ 11

हवन-यज्ञ

प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाने वाले डाक्टरों ने यद्यपि केवल जल के प्रयोग से आरम्भ होने वाली प्राकृतिक चिकित्सा में अनेकों बातें सम्मिलित करके उसे पूर्ण बनाने का यत्न किया है पर वह लोग अभी तक हवन यज्ञ के वैज्ञानिक लाभों को नहीं समझ पाये हैं। इसी कारण जहाँ उनको कई रोगों में आशातीत सफलता होती है और एलोपैथिक डाक्टरों के असाध्य बताये हुये रोगियों को आरोग्य करके वह लोगों को चकित कर देते हैं, वहाँ कुछ रोगों को आरोग्य करना उनकी शक्ति से बाहर है। अतः अब तक के प्राकृतिक चिकित्सकों ने उनको तीन भागों में बाँटा है।

1. तीव्र अथवा नवीन 2. जीर्ण अथवा पुराने 3. घातक अथवा मारने वाले

तीव्र और जीर्ण रोगों को अच्छा करने का प्राकृतिक चिकित्सक बड़े ज़ोर से दावा करते हैं पर घातक रोग वह उसे कहते हैं जो किसी भी उपचार से अच्छा न हो। इन घातक रोगों की सूची में वह पुराना यक्ष्मा और पुराना कोढ़ इत्यादि बताते हैं। उनकी इस निर्बलता का कारण हवन यज्ञ की प्राकृतिक और वैज्ञानिक फिलासफी (Philosophy) को न समझना है। वास्तव में यक्ष्मा एक ऐसा रोग है जिसको पूर्णतया अच्छा करने का कोई चिकित्सा विधि द्वारा नहीं करती। हमारे सम्मति में उसकी चिकित्सा केवल यज्ञ द्वारा ही हो सकती है क्योंकि रक्त शुद्ध करने और फेफड़ों के शत भरने के वास्ते बहुत बड़ी मात्रा में शुद्ध ओषजन के शरीर में पहुँचने की आवश्यकता है। पर फेफड़े स्वयं रोगी होने के कारण ओषजन पहुँचाने को गहरी श्वांस भी नहीं ले सकते। ऐसी अवस्था में ओषजन का भी सार भाग ओज़ोन युक्त वायु की रोगी को आवश्यकता है। वही ओज़ोन युक्त वायु हवन यज्ञ से उत्पन्न होती है। डाक्टर लोग इसी की प्राप्ति के लिये रोगियों को पहाड़ पर अथवा समुद्र पर भेजते हैं पर हवन यज्ञ की वायु इन स्थानों की वायुयों पर

भी प्रधानता रखती है। इसके प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेकों बार परीक्षण हो चुके हैं। प्राकृतिक साधनों में हमारे प्राचीन आचार्यों ने हवन यज्ञ को भी माना है क्योंकि यह कृमि नाशक है। इसी कारण यह संक्रामक रोगों में अनिवार्य है क्योंकि जैसा कि बताया जा चुका है कि रोग-कृमि अवश्य होते हैं और जब दूषित शरीर रचना के कारण कृमि हमारे शरीर पर अधिकार जमा लेते हैं तब उनकी सन्तान वहाँ दिन रात बढ़ने लगती है, और वह इस तीव्रता से बढ़ते हैं कि साधारण बुद्धि से अनुमान भी नहीं हो सकता। डाक्टर कार्नेट साहब का अनुमान है कि एक दिन में एक क्षय रोगी 7 अरब बीस करोड़ कीटाणु अपने शरीर से बाहर निकालता है। कई डाक्टरों का अनुमान है कि प्रतिदिन एक रथ्य वाले क्षय रोगी के शरीर से इतने कीटाणु निकलते हैं कि उनकी पंक्ति बनाई जावे तो वह 12 मील लम्बी होगी। इनमें से यदि 100 कीटाणु किसी ऐसे मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जावें कि जिसकी दूषित शरीर रचना है अथवा उसके शरीर में विकार विद्यमान हैं तो वह क्षय रोगी हो जावेगा। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि कीटाणु अपनी संतान किस तीव्रता से बढ़ाते हैं और यह इतने सूक्ष्म होते हैं कि बिना अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) की सहायता के नहीं देखे जा सकते। साधारणतया इनकी लम्बाई 1/15000 इंच और चौड़ाई 1/150,000 इंच होती है। क्षय कीटाणुओं की इतनी सूक्ष्मता और बहुत संतान वृद्धि के कारण ही एलोपैथी में अब तक ऐसी किसी औषधि का आविष्कार नहीं हो पाया जो शरीर के भीतर इन कृमियों को तो मार दे और शरीर को कोई हानि न पहुँचावे। पर वेद भगवान के आदेश और वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि यज्ञ गैस रक्त के दूषित कृमियों को मार सकती है और शरीर को कोई हानि न पहुँचाकर लाभ ही पहुँचाती है। अग्नि में जलाने से किसी वस्तु के परमाणु इतने सूक्ष्म हो जाते हैं कि उनकी शक्ति करोड़ों गुना बढ़ जाती है। जायफल, जावित्री, बड़ी इलायची, चन्दन इत्यादि को जलाकर देखा गया तो विदित हुआ कि अग्नि में जलाने से इनके तेलों का नाश नहीं होता किन्तु इनके तेलों के परिमाणु

1/100,00,00,000 सेन्टीमीटर व्यास वाले तक सूक्ष्म होते देखे गये, और यह तो सभी जानते हैं कि यह वस्तुयें हमारे शरीर का अंश हैं और शरीर को कोई हानि न पहुँचा कर सर्वदा लाभ ही पहुँचाती हैं। फिर हवन गैस श्वांस द्वारा शरीर में पहुँचने के कारण सीधे फेफड़ों और रक्त से मिलती है। अतः उसका प्रभाव भोजन की वस्तु की अपेक्षा और अधिक सुगमता से होता है। वैज्ञानिक तो अपनी बुद्धि और यंत्रों द्वारा प्रत्येक प्रकार के परीक्षण कर ही सकते हैं। साधारण बुद्धि के लोग भी एक मिर्च जिसे एक मनुष्य बड़ी सुगमता से खा सकता है, आग में डाल कर परीक्षा कर सकते हैं वही मिर्च अपने निकट के तथा दूर के मनुष्यों को खांसने के लिये विवश कर देगी। दाल में ज़रा सा हींग का छौंक बटलोई भर दाल को स्वादिष्ट बना देता है। इन सब बातों से हवन-यज्ञ की उपयोगिता विशेष रूप से संक्रामक रोगों में सिद्ध होती है। इसी कारण हमारे देश में अब तक देश वासियों की धारणा बनी हुई है कि कालरा फैलने पर बड़े बड़े यज्ञ किये जावें यद्यपि विदेशी सभ्यता के प्रभाव से अब उस धारणा को कुचला जाता है और विलायती विषैली औषधियों का प्रचार किया जाता है और सरकार की उपेक्षा के कारण उस विद्या को वैज्ञानिक ढंग पर जानने वालों की संख्या भी कम हो गई है पर अब भारत की बहुसंख्यक जनता का इन विषैली औषधियों की अपेक्षा हवन यज्ञ की उपयोगिता पर अधिक विश्वास है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि टीका मुफ्त लगवाने से जनता बचती है और हवन यज्ञ पर अपना धन व्यय करके स्वयं कराती है। विदेशी वैज्ञानिकों ने भी परीक्षण द्वारा इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया है।

(1) मद्रास से (Sanitary) कमिश्नर डा० कर्नल किंग आर० एम० एस० ने कालिज के विद्यार्थियों को उपदेश दिया था कि घी, चावल और केसर मिला कर जलाने से रोग कृमि का नाश होता है।

(2) फ्रांस के विज्ञान-वेत्ता प्रोफेसर टिल्वर्ट साहब का कहना है कि अग्नि पर खाँड (चीनी, शकर) जलाने से वायु शुद्ध होती है और इससे हैजा, तपेदिक,

चेचक इत्यादि का विष शीघ्र नष्ट होता है। तभी तो वेद भगवान ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उपदेश दिया:–

इन्द्रस्य या मही दुषत्क्रिम विखस्वयं तहरणी
तथा पिनष्मि सं क्रिमीन दुषदा खल्वां इवा

अथर्व का २ सू॰ ३१ मं॰ १

अर्थ–बड़े यज्ञ की जो विशाल शिला प्रत्येक कृमि को नाश करने वाली है उससे सब कृमियों को यथा नियम पीस डालूँ।

इसका अभिप्राय यही है कि इस वेद मन्त्र में इस बात का उपदेश दिया है कि यज्ञ से रोग कृमियों का नाश होता है। इसी कारण हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों ने जो सर्वदा प्राकृतिक जीवन बिताते थे, अपने नित्य कर्म में यज्ञ को भी स्थान दिया है। वह इसे संसार के हित की दृष्टि से परोपकार की भावना रखते हुए नित्य प्रति किया करते थे। चूंकि वह स्वयं भी संसार के भीतर थे अतः संसार के साथ उनको भी लाभ होता था। चिकित्सा के रूप में समस्त संक्रामक रोगों में इसका प्रयोग होता था तथा ऐसे रोगों में भी इसका विशेष उपयोग होता था जिनमें शरीर को शुद्धि की विशेष आवश्यकता होती है। महाराजा दशरथ के जब बुढ़ापे तक संतान नहीं हुई तब प्राकृतिक यज्ञ चिकित्सा द्वारा ही राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघन जैसे सुपुत्र उत्पन्न हुए थे और यह सब चिकित्सक जानते हैं कि सन्तान होने के लिए शुद्ध रज, वीर्य और नाड़ी संस्थान की प्रबलता ही मुख्य कारण है और सन्तति शास्त्र के विशेषज्ञ यह भी जानते हैं कि मद्य, माँस, अण्डा तथा मल मूत्र की खाद से उत्पन्न वस्तुएं खाने से जो रज, वीर्य बनता है उससे संतान बुरे स्वभाव और गन्दे विचार वाली होती है। सात्विक भोजन और हवन गैस से उत्पन्न रज, वीर्य से धर्मात्मा और आज्ञाकारी संतान का जन्म होता है।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा का एक मुख्य अङ्ग 'हवन यज्ञ' हमारे यहाँ बहुत काल से चला आता है जब से उसको भुलाकर विधि अनुकूल और अधिक

मात्रा में करना छोड़ दिया है तब से हमारा देश रोगों की खान बन रहा है। अब यदि इसे फिर से उन्नत करना है और रोगों को मिटाना है तो हवन यज्ञ को हाईजीन (Hygiene) का एक अङ्ग बनाना होगा। अब आगे प्राकृतिक चिकित्सा के एक और आवश्यक अङ्ग 'भोजन और उपवास' के विषय में लिखा जावेगा।

पाठ 12

भोजन व उपवास

पथ्ये सति गदा तस्यै किमौषधि न सेवणो।
पथ्येऽसति गदावस्यै किमौषधि निषवणो ॥

यह आयुर्वेद के ग्रन्थ लिम्बराज का कथन है जिसका भाव यह है कि यदि पथ्य ठीक है तो औषधि सेवन से रोगी को क्या लाभ अर्थात् औषधि की आवश्यकता ही नहीं। पथ्य से रोगी स्वयं ठीक हो जावेगा और यदि पथ्य ठीक नहीं है तो अमृत समान औषधि से भी क्या लाभ। अर्थात् पथ्य ठीक न होने पर सब औषधियाँ व्यर्थ हैं। प्राकृतिक चिकित्सा पर यह सिद्धांत पूर्ण रूप से लागू है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के सब साधन, पट्टी, स्नान इत्यादि किये जावें और भोजन सुधार न किया जावे तो प्रायः सब क्रियायें निरर्थक ही सिद्ध होंगी और यदि कोई अन्य साधन न करते हुए केवल भोजन सुधार की ओर जिसमें उपवास भी सम्मिलित है, ध्यान दिया जावे तो अन्य साधन प्रयोग में न लाने से भले ही समय अधिक लग जावे पर रोगी के आरोग्य होने में शंका न रहेगी। हमारा अपना अनुभव भी इसी सिद्धांत को सिद्ध करता है। जब हम जबलपुर में टी० बी० सेनीटोरियम में मेडीकल आफीसर थे, दो गुजराती रोगी पिंडरी सेनीटोरियम से कई वर्ष असफल चिकित्सा कराने के पश्चात् हमारे पास चिकित्सा कराने के लिए आए। पर सेनीटोरियम में स्थान न होने के कारण वह स्वयं एक कोठी किराये पर लेकर हमारे निकट ही रहने लगे। पर कई मास तक चिकित्सा कराने पर भी उनको आशातीत लाभ न हुआ चूंकि वह अपने खानपान के सम्बन्ध में हमें पूर्ण विश्वास दिलाते थे कि वह हमारी आज्ञा के अनुकूल है। इस कारण हम बड़े हैरान थे कि लाभ क्यों नहीं हो रहा है। दो तीन मास के पश्चात् पता लगा कि उनमें से एक रोगी दो तीन सेर दूध की मलाई से नित्य प्रति चावल खाता है जिससे उसे भूख न लगती थी और प्रायः उबकाइयाँ आतीं थी, फिर भूख लगाने को चाट और तेल के पकौड़े खाया करता था। अतः हमने उसकी चिकित्सा छोड़ दी और

हमारा विश्वास है कि वह कहीं भी आरोग्य न हुआ होगा। दूसरा छिप कर तम्बाखू खाया करता था उसने समझाने से यह व्यसन छोड़ दिया तभी उसको लाभ होने लगा। एक रोगी भैंस का दूध पीता था इस कारण उन्नति नहीं हो रही थी। गाय के दूध का प्रबन्ध न होने पर उसका दूध विल्कुल बन्द करके फलों की मात्रा बढ़ा दी गई, तभी उन्नति करने लगा। यह सब कुछ केवल इस कारण लिखा गया है कि कोई भी रोगी जब खान पान के नियमों का ठीक पालन नहीं करेगा, इस चिकित्सा से लाभ न उठा सकेगा।

इसी बात पर मिस्टर लूई कूने ने अपनी जल चिकित्सा में बड़ा बल दिया है और भोजन सम्बन्धी कठिन नियम बनाये हैं। यदि इन नियमों का पालन न किया जावे तो केवल स्नानों से कदाचित् कुछ भी लाभ न हो। कई प्राकृतिक चिकित्सक अपना अनुभव बताते हैं कि उन्होंने गठिया, बवासीर और दमा जैसे रोगों को केवल भोजन सुधार से ही ठीक कर दिया। इस बात को ठीक तौर पर समझने के लिये भोजन करने का सिद्धान्त समझ लेना चाहिये। बात यह है कि जो कुछ काम काज, सोच विचार हम करते हैं उसमें हमारे शरीर के कुछ कोष नष्ट हो जाते हैं। जब शुद्ध रक्त उस अंग के पास अपने भ्रमण में पहुँचता है तो नवीन कोष उस अंग को देकर वहाँ के मुर्दा कोष अपने साथ ले आता है। इस प्रकार रक्त के कण कम होते जाते हैं जिसके लिये नया रक्त बनाने को हमें भोजन की आवश्यकता होती है। जैसा भोजन हम करेंगे वैसा ही रक्त बनेगा। अतः समझदारी की बात यह है कि जिस प्रकार के भोजन से हमारे रक्त में वह कमी पूरी हो वही भोजन हमें करना चाहिये। रोग की अवस्था में इस सिद्धान्त का ठीक से पालन करने से औषधि का कार्य भी हो जावेगा। जैसे एक मनुष्य के शरीर में विटामिन बी (B) की कमी हो गई जिससे वह निर्बल है। इसकी पूर्ति के लिये हमें दूध व गाजर इत्यादि वह पदार्थ खाना चाहिये जिसमें विटामिन B अधिक है इस प्रकार शरीर की कमी पूरी होने से रोग स्वयं दूर हो जावेगा।

दूसरी बात यह जानने की है कि जब हमारे शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है तब प्रकृति हमें सच्ची भूख लगाती है और भोजन करने पर शरीर की सारी शक्ति उसके पचाने में लग जाती है। जब शरीर में कोई विकार एकत्रित होते हैं तब वही शक्ति उन विकारों को जलाने अथवा बाहर निकालने में लग जाती है। क्योंकि भगवान ने हमारे शरीर को एक ऐसी शक्ति प्रदान की है कि वह अपनी सफाई स्वयं कर ले। जब इस शक्ति को सफाई की ओर लगने की आवश्यकता होती है उस समय प्रकृति हमारी भूख बन्द कर देती है। जबरदस्ती से किसी स्वादिष्ट पदार्थ की ओर मन चलाना दूसरी बात है और प्राकृतिक भूख दूसरी बात है। प्राकृतिक भूख वह है जिसमें हर भोज्य पदार्थ बड़ा स्वादिष्ट लगता है। सूखी रोटी भी स्वादिष्ट लगती है। बिना भूख के खाना रोग की जड़ है। भूख न होने अथवा शरीर में अन्य कोई कष्ट होने पर हम शरीर की उस शक्ति को रोग की चिकित्सा में लगाना चाहते हैं तो हमें कुछ समय उपवास करना चाहिये। नवीन रोगों में एक दो दिन का उपवास रोगों की कमर तोड़ने की बड़ी शक्ति रखता है। जोर्ण रोगों में चिकित्सा के बीच बीच में कभी कभी उपवास आवश्यक होता है। भोजन पचाने के काम से छुट्टी मिलने पर हमारा नाड़ी संस्थान और जीवनी शक्ति सभी इस शरीर रूपी मशीन की सफाई में लग जाते हैं। रोग प्रायः पेट व रक्त के दूषित होने से ही होता है। इन दोनों की शुद्धि के लिये उपवास एक अमोघ अस्त्र है। नवीन रोग की अवस्था में शक्ति कायम रखने के विचार से कुछ न कुछ खाते रहना अपने को धोखा देकर मारना है। अन्न शब्द संस्कृत के अद् धातु से बना है जिसका अर्थ खाना है। अतः यदि हम अन्न खाकर उसे पचा लेते हैं तब हम अन्न को खाते हैं और नहीं पचा पाते तो अन्न हमें खाता है। चाणक्य नीति में भी कहा है:–

अनभ्यासे विषं शास्त्रम जीर्णे भोजनं विषम्।

अर्थात्–बिना अभ्यास के शास्त्र विष है और अजीर्ण में भोजन विष है। इस प्रकार उपवास करने से शरीर को शक्ति मिलती है। जो लोग अपने पाचक यन्त्रों

की शक्ति का ध्यान रखते हुये खान पान के नियमों का पालन करते हैं उनको उपवास की आवश्यकता नहीं। पर जो ऐसा नहीं करते वह यदि कभी कभी मास में एक दो बार पेट को आराम देने के लिये उपवास कर लिया करें तो फिर उनको रोग शय्या पर लेट कर उपवास करने की आवश्यकता न पड़े। ऐसा न करने पर जब किसी रोग का आक्रमण हो ही जावे तब तो यह अनिवार्य हो जाता है कि अन्य उपचार करने से पूर्व भोजन बन्द कर दिया जावे। यह देखने में आया है कि लम्बे चलने वाले मियादी बुखार भी उपवास और बस्ती कर्म से दो चार दिन में समाप्त हो गये। जबकि उसी प्रकार के ज्वर दूध, वार्ली, आरारोट के बिस्कुट खाने वालों के महीनों में ठीक हुये और कभी कभी टी० बी० में बदल गये। जीर्ण रोगों में उपवास इससे भी अधिक उपयोगी है। क्योंकि जीर्ण रोग तब ही होता है जब हमारी जीवनी शक्ति शरीर को शुद्ध करने में असमर्थ हो जाती है और थक कर बैठ जाती है। अब उसे शक्ति पहुँचाने की आवश्यकता है और इस बात की भी आवश्यकता है कि शरीर में नवीन विकार उत्पन्न न हों। जीवनी शक्ति में जो थोड़ी बची खुची शक्ति होती है वह नित्य के भोजन पचाने में व्यय हो जाती है और नाड़ी संस्थान निर्बल होने से नवीन भोजन से कुछ न कुछ विकार भी बनते रहते हैं। यदि हम भोजन बन्द कर देते हैं तो हमारी जीवनी शक्ति और नाड़ी संस्थान को थकी अवस्था में काम करने से छुट्टी मिल जाती है और नवीन विकार न बनने से विकारों की मात्रा भी कम होती है। अतः जिस प्रकार थका मनुष्य आराम करने से फिर काम करने के योग्य हो जाता है इसी प्रकार हमारी जीवन शक्ति आराम पाकर शरीर की शुद्धि की ओर झुक जाती है और विकारों को निकालने का फिर से प्रयत्न करती है। इसी कारण पुराने (जीर्ण) रोगों की चिकित्सा में कभी कभी पिछले रोगों का उभार होता है जिससे घबड़ाना नहीं चाहिये, किन्तु प्रसन्न होना चाहिये, कि जीवनी शक्ति फिर से काम के योग्य हो गई। कभी ऐसा भी होता है कि दो चार उपवास से जीवनी शक्ति जाग्रत होकर रोग निवृति में लगी और यदि भोजन आरम्भ कर दिया तो कुछ दिन पश्चात्

आरोग्यता की ओर जाने की गति फिर रुक गई। इसका अर्थ यह होता है कि जीवनी शक्ति फिर दब गई है इससे फिर आराम देकर उभारा जावे। अतः जीर्ण रोगों में एक दो मास पश्चात् उपवास का क्रम दोहराया जाता है। देखने में आया है ऐसा करने से वे असाध्य रोगी भी अच्छे हो गये जिनको कई डाक्टरों ने असाध्य कह कर छोड़ दिया था। उपवास की इतनी महिमा होते हुये भी यह सोचना पड़ता है कि रोगी किस मिज़ाज का है। कुछ रोगी इतने समझदार होते हैं जो स्वयं कई दिन का उपवास करके रोग के समय को घटा लेते हैं। पर ऐसे रोगी भी होते हैं जो निर्बलता के कारण अथवा खाने की हौक के विचारों के कारण अपने को मुर्दा समझने लगते हैं जो वास्तव में निर्बल हैं उनको तो प्रारम्भ में पूरा उपवास न कराना ही हितकर है और जिनके विचार बदले नहीं जा सकते उनको भी रसाहार कराते हुये उपवास कराना चाहिये और फिर हल्का भोजन देना चाहिये। इससे भी जीवनी शक्ति को कुछ आराम मिलेगा। क्योंकि जितना भारी और अधिक भोजन होता है जीवनी शक्ति को उसके पचाने में उतना ही अधिक बल लगाना पड़ता है और जितना हल्का और अल्प भोजन होता है उसकी शक्ति उतनी ही कम व्यय होती है।

उपवास के नियम

1. एक दिन के उपवास में भोजन बिल्कुल बन्द करके दिन में एक से लेकर चार बार तक आधा नींबू पानी में निचोड़ कर पीवें। यदि खांसी जुकाम इत्यादि हो अथवा कब्ज हो तो नींबू गर्म पानी में पीवें। कुछ समय हल्का कार्य और कुछ समय विश्राम करें। प्रातः सायं दोनों समय एनीमा करें। दूसरे दिन यदि उपवास न करना हो तो पहले संतरा इत्यादि किसी रसीले फल का रस एक दो बार पीवें उसके पश्चात् अन्न, सब्जी और रोटी खा सकते हैं। यदि रोग पूर्णतया शांत न हुआ हो तो या तो दूसरे दिन भी उपवास करें अथवा दूसरे दिन केवल फलों का भोजन करें, रोटी न खावें।

2. जीर्ण रोगों में पहले उपवास की आवश्यकता नहीं है किन्तु पहले एनीमा से आंतों को शुद्ध करने की आवश्यकता है और भोजन वह होना चाहिये जो रोग की औषधि हो। बीच में जब देखें कि उन्नति की प्रगति धीमी है तब उपरोक्त ढंग पर एक दो दिन का उपवास कर लें। लम्बा उपवास अर्थात् १०-२० दिन का उपवास जिसकी कभी २ ही आवश्यकता पड़ती है किसी अनुभवी व्यक्ति की देख रेख में ही करना चाहिये और बिना आवश्यकता के बार २ उपवास करना ठीक नहीं है इससे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। जब कभी इस निर्णय में शंका हो कि हमें स्वाभाविक भूख है व नहीं तो यही निर्णय करना चाहिये कि भूख नहीं है और उपवास लाभदायक होगा।

अर्द्ध उपवास

स्वस्थ अवस्था में कभी एक दो दिन केवल फल अथवा धारोष्ण गाय का दूध या मठा पर रह जाना अर्द्ध उपवास कहलाता है यह स्वास्थ्य तथा रोग अवस्था दोनों में लाभदायक है। एक और ढंग भी उपयोगी पड़ता है वह यह कि एक समय में केवल एक वस्तु खाना। किसी समय केवल संतरा, किसी समय केवल सेब, किसी समय केवल गऊ का धारोष्ण दूध, किसी समय केवल एक सब्जी, और किसी समय केवल रूखी रोटी। इस क्रम से भी पेट को कुछ आराम मिलता है। आप स्वयं अपना भोजन चुन सकें और भोजन के गुणों को जान जावें इसके लिए भोजन को कई भागों में बाँटा जाता है।

1. रसाहार 2. फलाहार 3.जू स व शाकाहार

4. दुग्धाहार 5. अन्नाहार 6. पौष्टिक आहार।

1. रसाहार–से अभिप्राय फलों के रस से है। यह सबसे शीघ्र पचने वाला भोजन है। इनमें नींबू का रस तो खूब विकार निकालने वाला है यह शौच भी लाता है और रक्त भी शुद्ध करता है अतः इसका प्रयोग उपवास अवस्था में भी होता है। इस काम के लिये सबसे उत्तम कागजी नींबू है। वह न मिले तो

दूसरा कोई भी नींबू ले सकते हैं। कुछ लोग नींबू से डरते हैं और कहते हैं कि हमें इससे खांसी और जुकाम होने का भय है। बात ठीक है जिन लोगों के शरीर में विकार भरे पड़े हैं और केवल शौच द्वारा ही नहीं, नाक द्वारा भी निकालने की आवश्यकता प्रकृति समझती है, उनकी नाक से पानी के रूप में विकार निकलने लगते हैं जो विकार निकल चुकने पर स्वयं बन्द हो जाते हैं और फिर उसके प्रयोग करते रहने पर भी नहीं निकलते। इससे घबड़ाना नहीं चाहिए किन्तु समझना चाहिए कि इस प्रकार भविष्य में होने वाले रोगों से हमने अपनी रक्षा कर ली है। हाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि एक साधारण बड़ा कागजी नींबू काट कर एक समय में केवल आधा लेना चाहिये और पानी की मात्रा एक कप होना चाहिये। जुकाम, खाँसी, गठिया, दमा इत्यादि रोगों में और उन लोगों के लिये जो नींबू से डरते हैं गर्म पानी में पीना चाहिए। रात्रि के समय भी गर्म पानी में पीना चाहिये। पर दस्तों में और लू लग जाने आदि रोगों में तथा साधारण अवस्था में ठंडे पानी में ही हितकर है। इसी प्रकार दूसरे नम्बर पर संतरा या मोसम्मी का रस है जो निर्बल, वृद्ध, बालक और उपवास से डरने वाले लोगों को उपवास में दिया जाता है। प्रत्येक रोगी को उपवास के पश्चात् इसी रस से पथ्य देना चाहिये। यह भी बहुत हल्का भोजन है। इसके पश्चात् अनार, अनन्नास, सेब, नाशपाती, फालसा, टमाटर, गाजर, रसमरी, अंगूर इत्यादि का रस है जो संतरे के पश्चात देना चाहिये।

2. जब रसाहार से कोई हानि न हो और रोग घट गया हो तो फल भी देना चाहिये। फलों में उपरोक्त रस वाले फल तो हैं ही इसके अतिरिक्त आम, खरबूजा, खिरनी, कसेरू, आलू बुखारा, आलूचा, लीची इत्यादि सब अच्छे फल हैं पर रोग के अनुसार उनमें से अपने योग्य चुन लेना चाहिये। उसके पश्चात जूस (तरकारी को उबाल कर उसका रस निकाल लेना जूस कहलाता है) सब्जी और दूध का नम्बर है। जब यह सब पचने लगे तब दलिया,

खिचड़ी, दाल-रोटी, सब्जी रोटी इत्यादि अन्न पर आना चाहिये। जब यह भी पचने लगे तब बादाम, अखरोट, काजू इत्यादि मेवे और पुष्टिकारक पदार्थ खीर, हलुवा, हरीरा इत्यादि देना चाहिए। इनसे शरीर पर माँस आता है। पर सूखे मेवे के साथ ताज़े फल अवश्य खाना चाहिए जैसे-जिस समय बादाम या अखरोट खावें उसी समय एक दो संतरा या गाजर खा लेना चाहिये। यदि एक समय में एक ही वस्तु खाने का नियम रखा हो तो मेवा खाने के पश्चात् दूसरे समय ताज़े फल अवश्य खाना चाहिये। मेवों में मुनक्का और किशमिश दो मेवे ऐसे हैं जो प्रारम्भ में रसाहार व फलाहार के साथ दिये जा सकते हैं। किशमिश को पानी में भिगोकर रख दें। दो तीन घण्टे बाद उसमें चम्मच से किशमिश लौट पौट करके निकाल लें। यह पानी रसाहार के साथ दिया जा सकता है और किशमिश तथा मुनक्का भी फलाहार के साथ खाया जा सकता है। दाल के स्थान में समूचा नाज अर्थात् बिना दली मूँग, मसूर उपयोगी हैं। उन्हें केवल उसी समय दिया जावेगा जब रोगी आरोग्य होकर पौष्टिक पदार्थ खा रहा हो और पौष्टिक पदार्थों के लिए समय वही उपयुक्त है जब रोगी स्वस्थ होकर व्यायाम भी करने लगे।

3. भोजन धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए, शीघ्रता न करें। यदि कभी भूल से शीघ्रता करने से कुछ हानि होने लगे तो फिर उपवास और एनीमा पर लौट आना चाहिए। यह सिद्धान्त सर्वदा याद रखना चाहिये कि रोग शरीर के विकार मय होने से होते हैं और विकार निकालने में बस्ती कर्म और उपवास ही प्रधान साधन हैं।

पाठ 12 [क]

भोजन का ज्ञान

आधुनिक वैज्ञानिकों ने एक नवीन खोज विटामिन की यह निकाली है कि प्रत्येक खाद्य-पदार्थ में किन्हीं विटामिनों की अधिकता और किन्हीं विटामिनों की कमी या अभाव है। रोग की अवस्था में विशेष रूप से जिस मनुष्य में जिस विटामिन की न्यूनता हो उसी की अधिकता वाले पदार्थ खाना हितकर है। इस ज्ञान से यह लाभ है कि हम अपने लिए खाद्य-पदार्थों में से अधिक उपयोगी पदार्थ सरलता से चुन सकते हैं। और रसाहार, फलाहार के समय अपने उपयोगी पदार्थ चुन कर शीघ्र आरोग्य हो सकते हैं। अतः उसका कुछ विवरण यहाँ दिया जाता है।

विटामिन के गुण इस प्रकार हैं:–

विटामिन 'ए' (A)

शरीर की रोगों के कीटाणुओं से रक्षा करता है। अर्थात् जिसके शरीर में विटामिन 'ए' नित्यप्रति पूरी मात्रा में पहुँचता रहता है तो उस पर रोग कीटाणु अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। शरीर में जाकर नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि घी में विटामिन "ए" पर्याप्त मात्रा में होता है। अतः भोजन में घी का प्रयोग हमारे देश वासी अनिवार्य समझते हैं। बिना घी के भूत की रसोई कहलाती है। इसका अर्थ यही है कि घी जर्म्स (कीटाणु) नाशक है। अतः घी वाले भोजन पर कीटाणुओं का प्रभाव नहीं होता। इसी कारण यात्रा के लिये रोटी के स्थान पर पूरी की रीति है और रोटी केवल चौके के भीतर और पूरी बाहर भी खाई जा सकती है। हवन यज्ञ में भी घी इसी कारण जलाया जाता है कि उसके परमाणु छिन्न भिन्न होकर रोग कृमि को मार सकें। वनस्पति आयल में विटामिन 'ए' बिलकुल नहीं होता। अतः वह छूत के रोगों से नहीं बचा सकता। विटामिन 'ए' शरीर के तरल भाग को एकत्रित नहीं होने देता है तथा शरीर को स्वस्थ और रक्त को ठीक रूप में रखता

है। यदि भोजन में विटामिन "ए" न खाया जावे तो इस शरीर को बढ़वाड़ रुक जाती है। इसी कारण बालकों को युवास्था तक दूध नित्य प्रति मिलना अनिवार्य है। इस विटामिन के अभाव से तपेदिक, हैज़ा, निमोनिया, पेचिश, प्लेग, इन्फ्ल्यून्ज़ा, गर्दन तोड़ बुखार, जुकाम, और दमा इत्यादि छूत के रोग बड़ी सुगमता से हो सकते हैं। रोगी होने के पश्चात् भी यदि यह विटामिन अधिक मात्रा में नहीं मिलता तो मनुष्य निर्बल रहता है। मस्तिष्क को भी यह विटामिन बहुत शक्ति देता है और आँख की ज्योति को बढ़ाता है। वनस्पति आयल के सम्बन्ध में जो परीक्षण (Research Institute) रिसर्च इंस्टिट्यूट में हुये थे, उनसे सिद्ध हुआ था कि वनस्पति आयल खाने से चूहों की तीसरी पीढ़ी अन्धी हो जाती है क्योंकि वनस्पति आयल में विटामिन 'ए' बिल्कुल नहीं होता। रोग से रक्षा, स्वास्थ्य को ठीक रखना, रक्त को प्राकृतिक अवस्था में रखना, बुद्धि और नेत्र-ज्योति को बढ़ाना इस विटामिन के विशेष गुण हैं। यह विटामिन दूध, घी, मक्खन, दही, बिना नैनी निकाला मठा, पालक, सोया, मेथी, बथुआ, मूली, गाजर, शलजम के पत्ते, सलाद, बैंगन, बंदगोभी मटर, टमाटर हरी मिर्च इत्यादि में खूब मिलता है। अग्नि पर पदार्थ पकाने से यह जल जाता है। अतः जिन पदार्थों में यह है उन्हें देर तक अग्नि पर नहीं पकाना चाहिये। और जो चीजें कच्ची खाई जा सकती हैं उन्हें वैसी ही खाना चाहिये। जैसेः–टमाटर, गाजर, हरी मिर्च और गऊ का धारोष्ण दूध। ताज़ा मिले तो घी की अपेक्षा मक्खन उत्तम है और यदि अधिक दिनों का रखा हुआ मिले तो मक्खन की उपेक्षा घी अधिक उपयोगी है।

विटामिन बी (B)

शरीर को निर्बलता से बचाकर रोग रक्षा इसका मुख्य कार्य है। दूसरे शब्दों में यह निर्बलता को दूर करता है और बलवान शरीर वाला रोगों से मुक्त रहता है। इसका प्रयोग मस्तिष्क, हृदय, यकृत, पाचक ग्रन्थि, नाड़ी संस्थान, माँस पेशी तथा गुर्दों को बलवान और निरोग बनाता है। यह भूख को बढ़ाता है और पाचन क्रिया को ठीक रखता है। यदि भोजन में विटामिन बी न खाया जावे तो मनुष्य

के शरीर में दर्द रहने लगता है टांगों में दुर्बलता आ जाती है। मस्तिष्क निर्बल हो जाता है। नींद अच्छी नहीं आती। हृदय में दुर्बलता आ जाती है। अजीर्ण व मन्दाग्नि रोग आ घेरते हैं। भोजन अच्छा नहीं पचता। कभी कब्ज और कभी दस्त लग जाते हैं। हृदय और गुर्दे के भिन्न भिन्न रोग हो जाते हैं। विटामिन 'बी' अन्न में गेहूँ की भूसी में सबसे अधिक रहता है। आटे में जितनी भूसी रहती है उतना ही यह विटामिन रहता है। बारीक सूजी की मैदा, जिसकी बालूशाही इत्यादि बनती है, में नहीं होता। छिलके सहित मूंग, मसूर, उड़द, चना, मटर में भी मिलता है। सूजी में भी होता है। हाथ के कुटे चावल में रहता है पर मशीन के कुटे चावल में बिल्कुल नहीं रहता। पालक, गाजर, मूली, शलजम, टमाटर, अखरोट, केला, सलाद इत्यादि में मिलता है। रोग की निर्बलता दूर करने को और मस्तिष्क से कार्य करने वालों को इसकी विशेष आवश्यकता है।

विटामिन सी (C)

किसी रोग के होने में रक्त की अशुद्धि का विशेष स्थान है और विटामिन सी (C) का मुख्य काम रक्त को शुद्ध और ठीक अवस्था में रखने का है। यह रक्त को रक्त नाड़ियों से चूने नहीं देता। आँतों को बलवान और स्वस्थ्य रखता है। शरीर में रोगों से बचने की शक्ति उत्पन्न करता है। हड्डी और दाँतों के बनाने में सहायता करता है। इसके अभाव में मसूड़ों से रक्त बहने लगता है। दाँत खराब होकर गिर जाते हैं। मुँह से दुर्गन्ध आने लगती है। एनीमिया (Anaemia) (रक्त की कमी), मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं। विटामिन सी खाने वालों का रक्त शुद्ध, दाँत, हड्डी निरोग तथा स्वास्थ्य अत्यन्त उत्तम रहता है। यह विटामिन फलों तथा हरे साग में अधिक पाया जाता है। नीबू संतरा आमला और हरी मिर्च में खूब होता है। अनार, अंगूर, पालक, धनिया, सलाद और गाजर में भी होता है। यह बड़ा कोमल होता है। अतः थोड़ी सी गर्मी सर्दी से नष्ट हो जाता है। गाय के दूध का विटामिन सी आँच पर पकाने से नष्ट हो जाता है। कच्चे दूध में खूब

होता है। अनाजों में यह विटामिन नहीं होता पर भिगोकर अंकुर निकलने पर यह उत्पन्न हो जाता है।

विटामिन डी (D)

यह विशेषतया बच्चों की बढ़वाड़ के काम आता है और यह विशेष रूप से उन्हीं पदार्थों में अधिक पाया जाता है जिसमें विटामिन 'ए' पाया जाता है। दूध, मक्खन और घी में विशेष रूप से रहता है। धूप में बैठकर तेल की मालिश करने से विटामिन डी खूब उत्पन्न होता है। जो बालक धूप में खेलते रहते हैं उनके शरीर में यह खूब उत्पन्न होता है। इसके विपरीत जो बालक अँधेरे मकानों में रहते हैं उन बालकों को इस विटामिन के अभाव के कारण भिन्न २ रोग हो जाते हैं। जैसे हड्डी का टेढ़ा हो जाता या न बढ़ना अथवा कोमल हो जाना, दस्त, जुकाम इत्यादि।

विटामिन डी के अभाव से स्त्रियों को प्रसव समय बड़ा कष्ट होता है। इस विटामिन के प्राप्त करने को विटामिन ए और सी वाले पदार्थ खाना तथा सूर्य की किरणें शरीर पर लेना चाहिये।

विटामिन ई (E)

यह स्त्रियों के बाँझपन को रोकता है और पुरुष के वीर्य में शुक्र कीटाणुओं को शक्ति प्रदान करता है। यह तेल, सेम, मटर, मसूर, पालक, बादाम, मूँगफली इत्यादि में पाया जाता है। नीचे एक तालिका दी जाती है जिससे ज्ञात होगा कि किस पदार्थ में कौन विटामिन किस मात्रा में है। यह + निशान जितने अधिक लगे हैं उतना ही उस पदार्थ में विटामिन अधिक है और यह ० शून्य का निशान उस विटामिन के अभाव का सूचक है।

नोटः– विटामिन की खोज अभी जारी है नई खोज विटामिन 'के' (K) है। इसका कार्य रक्त के जमने में सहायता देना, रक्त के बहाव को रोकना है तथा यह

विटामिन सी के समान कार्य करता है। यह हरी पत्ती वाली सब्जी, बंदगोभी, गाजर इत्यादि में पाया जाता है। इसके अभाव में ''एनीमिया'' रोग हो जाता है।

विटामिन तालिका

भोज्य द्रव्य	ए	बी	सी	डी
गाय का ताजा दूध	+++	++	+	+
बकरी का ताजा दूध	+	+	+	o
माता का दूध	+	+	+	o
मलाई	+++	+	o	o
मक्खन	++	+	+	++
दही	+++	+	+	o
घी	++	o	o	+
गन्ना	o	+	+	o
गेहूँ का दलिया	++	++	o	o
गेहूँ का आटा चोकर सहित	+	++	o	o
मैदा	o	o	o	o
सूजी	+	+++	o	o
गेहूँ की रोटी दूध के साथ	++	++	o	o
चावल घर के कुटे	+	+++	o	o
चावल मशीन के कुटे	o	o	o	o
बाजरा	+	++	o	o
शलजम	o	++	+	o
बंद गोभी	+++	++	++	o

भोज्य द्रव्य	**ए**	**बी**	**सी**	**डी**
फूल गोभी	+	+	++	०
सेम	++	++	०	०
मूली व शलजम के पत्ते	+++	+++	+	०
टमाटर लाल कच्चा	++	+++	+++	०
लौकी	०	+	+	०
बैंगन	++	०	०	०
पालक	++	+++	+++	०
सलाद (लेत्तुस)	++	+++	++	०
लोभिया की फली	++	++	+	०
प्याज	+	++	++	०
चुकन्दर	०	+	+++	०
हरी मिर्च	++	+	+++	०
हरी इमली	०	+	+	०
खीरा	+	०	++	०
ग्वार	+	++	०	०
मकई	++	++	०	०
सोया	+	++	०	०
दालें	+	++	०	०
चने अंकुर निकले	+	++	++	०
बादाम	+	+	+	०
नारियल	+	++	०	०

भोज्य द्रव्य	**ए**	**बी**	**सी**	**डी**
मूँगफली	+	++	∘	∘
अखरोट	+	+++	+	∘
किशमिश	∘	+	+++	∘
आलू	∘	+	++	∘
शकरकंद	∘	+	+	∘
भिण्डी	∘	+	+	∘
मटर ताजी कच्ची	++	++	+++	+
पेठा	++	+	+	∘
गाजर कच्ची	++	+++	+	∘
मूली	∘	+	+	∘
राई	+	++	∘	∘
तरबूज	∘	∘	+	∘
सेब	+	+	++	∘
संतरा	+	+	+++	∘
पपीता	++	+	+++	∘
नाशपाती	∘	+	++	∘
केला	++	++	+	∘
अंगूर	+	+	+++	∘
नीबू	∘	+	+++	∘
अनार	∘	+	+	∘
अनन्नास	∘	∘	++	∘

भोज्य द्रव्य	**ए**	**बी**	**सी**	**डी**
आम पका	++	०	+++	०
लीची	०	+	++	०
अमरूद	०	+	+	०
अंजीर	०	+	०	०
रसमरी	०	०	+++	०
बेर	०	०	++	०
आंड़ू	०	+	++	०
माठा	+	+	+	०

पाठ 12 [ख]

भोजन विषयक प्राचीन विचार

हमारे प्राचीन आयुर्वेद ने भोजन के महत्त्व को जितना समझा था और जिस विस्तार में वह गया है वहाँ तक अभी आधुनिक विज्ञान नहीं पहुँच पाया है। प्राचीन पूर्ण विज्ञान इस छोटी सी पुस्तक में नहीं दिया जा सकता। जिनको इच्छा हो वह प्राचीन साहित्य का अध्ययन करें यहाँ बहुत ही आवश्यक दो चार बातें बताई जाती हैं।

1. आयुर्वेद भोजन की वस्तुओं से भोजन करने वाले की स्थिति पर अधिक बल देता है। भोजन करने वाले का शारीरिक बल जठराग्नि के विचार से जहाँ भोजन का विचार किया जाता है वहाँ मानसिक विचार-काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि, की अवस्था पर भी दृष्टि रखी गई है। अर्थात् इन वेगों की अवस्था में किया हुआ भोजन चाहे कितना ही उत्तम हो पर लाभ न पहुँचावेगा और न ठीक से पचेगा। यहाँ तक ही नहीं भोजन प्राप्त करने के साधनों पर भी विचार किया गया है। अर्थात् झूठ, मक्कारी, चोरी इत्यादि से प्राप्त भोजन का प्रभाव शरीर, आत्मा और मन पर बुरा पड़ कर रोग उत्पन्न करता है। जिन लोगों का रज-वीर्य, खान-पान दूषित है अथवा जो अशुद्ध रहते हैं उनका छुआ अथवा बनाया भोजन भी रोगोत्पादक है। इसी प्रकार आयुर्वेद अति भोजन का विरोधी तथा रोग अवस्था में उपवास का पक्षपाती है। ''ज्वरादौ लंघनं कुर्यात्'' अतः ज्वर के आरम्भ में लंघनं (उपवास) करने का सिद्धांत बताकर आयुर्वेद ने वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सा के उपवास के सिद्धांत को पुष्टि प्रदान की है। ज्वर एक ऐसा रोग है जो 65% रोगों के आरम्भ में होता है और जीर्ण ज्वर को छोड़ कर सभी प्रकार के ज्वर की अवस्था में आजकल के सद्वैद्य भी अपने रोगियों को उपवास करने का परामर्श देते हैं। जो वैद्य डाक्टरों की दुम बन कर समय के

आधार पर अपने रोगियों को चाय, टोस्ट और अण्डा खिलाते हैं वे साधारण ज्वर को मियादी (Typhoid) और फिर जीर्ण ज्वर बना कर देश में रोगों और रोगियों की संख्या बढ़ा अपनी तथा अपने मित्र डाक्टरों की आय बढ़ाने का कारण बन रहे हैं। पर आयुर्वेद का सिद्धांत यह नहीं है। आयुर्वेद सर्वदा रोग में विशेषतया तीव्र रोगों में उपवास का पक्षपाती है।

2. दूसरा सिद्धांत यह है कि आयुर्वेद ने अन्न की अपेक्षा फल और गौ दुग्ध को हल्का भोजन माना है। अतः रोगी अवस्था में वह अन्न की अपेक्षा उपरोक्त वस्तुओं के उपयोग की आज्ञा देता है।

3. तीसरा सिद्धांत यह है कि उपवास तोड़ने पर पहले बहुत हल्का भोजन फिर उससे कुछ भारी, फिर साधारण भोजन और फिर रोग निवृत्ति पर पौष्टिक भोजन दिया जावे।

4. हर रोग में बात, पित्त, कफ में से एक, दो व तीनों दोष कुपित होते हैं। अतः उनका विचार करके ऐसा भोजन दिया जावे जो भोजन और औषधि दोनों का कार्य करे।

5. पाचवां सिद्धांत यह है कि अग्नि, जल, वायु इत्यादि में से जिस तत्व की कमी रोगी के शरीर में हो उसी तत्व की पूर्ति करने वाला रस रोगी को देना चाहिए। नीचे एक तालिका देकर यह बताते हैं कि कौन से रस में कौन तत्व अधिक और कौन न्यून है।

भौतिक रस संगठन

नाम रस	**कौन तत्व अधिक है**	**कौन न्यून है**
मीठा	पृथ्वी, जल	आकाश, वायु-अग्नि
लवण	जल अग्नि	पृथ्वी, वायु, आकाश
खट्टा	पृथ्वी, अग्नि	जल, वायु, आकाश

चरपरा	आकाश, वायु	पृथ्वी, जल, अग्नि
कड़ुआ	अग्नि, वायु	पृथ्वी, जल, आकाश
कषाय (कसैला)	पृथ्वी, वायु	जल, अग्नि, आकाश

रसों की पहचान और उनके गुणों का कुछ विस्तार आगे लिखते हैं:–

1. **मधुर रस (मीठा):** जो वस्तु चखने पर शरीर को प्रसन्न करने वाली हो, नेत्रों को सुखदायक और स्वाद लेने के अनन्तर मुख भर में लिप्त हो जावे तथा चींटियां जिसकी विशेष चाह करें वह मधुर रस है। यह बलदायक, मांस सूत्र (Tissue), पोषक है। वर्ण, केश, कण्ठ और इन्द्रिय तथा ओज का पोषक है। बालक, युवा वृद्ध सबको प्रिय है। शीत व शत में यह सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है। देर में पचने वाला, दुग्ध वर्धक, स्नायु प्रद, जीवनदायक, चिकना, वात संस्थापक व पित्त से उत्पन्न रोगों का नाशक है। यदि यह अधिक सेवन किया जावे तो यह मेद, कफ के रोग, स्थूलता अग्नि मन्दता, मूर्छा, प्रमेह, गलगण्ड, अर्बुद इत्यादि रोगों को उत्पन्न करता है। इसके पदार्थ मधुर स्वाद वाली वस्तु (कार्वोहाइड्रेट) से अधिक साम्य रखते हैं।

   आधुनिक विज्ञान बताता है कि कज्जल के छह कण, उदजन के 12 और ओषजन के छह कणों का संयोग मधुर रस होता है। अर्थात् इस अनुताप से कणों का संगठन शकरा के कणों को बनाता है।

2. **लवण रस:**–रुचि वर्धक, मुख से सशराव कराने वाला तथा कपोल और गले में जलन उत्पन्न करने वाला है। स्तम्भ, संधि बंधनों के शोथ को आराम करने वाला, अग्नि बर्धक स्नेह, पसीना लाने वाला, तीखा और कफ इत्यादि को छिन्न भिन्न करने वाला है।

अधिक सेवन करने पर यह बात रक्त, और नेत्रों का पकना, चकते, घाव, झुर्री, बालों की सफेदी, गंजापन, कुष्ठ, विसर्प, तृषा उत्पन्न करता है।

नोट–इसी कारण प्राकृतिक चिकित्सा में त्वचा के कठिन रोग एक्जिमा, और कुष्ठ इत्यादि में रोगी को नमक देना बंद करा देते हैं।

3. **आम्ल रस (खट्‌टा)**:–स्वाद लेते ही मुख से लार का स्राव अधिक कराता है। दांतों को हर्षण कराने वाला (दांतों की चवर्ण शक्ति का रोधक) तथा रोयें खड़े करने वाला और जिसके खाने पर आँख और भौहें संकुचित हो जायें। यह आम्ल रस युक्त द्रव्य है। यह ठीक मात्रा में अर्थात् थोड़ा प्रयोग करने पर अग्नि वर्धक, स्निग्ध, हृदय को हितकारी, पाचन व रुचि वर्धक है, वीर्य में उष्ण, स्पर्श में शीत प्राण वायु का पोषक तथा अल्प रोचक होता है। आम्ल रस में ताज़ा नीबू सर्वश्रेष्ठ है।

आम्ल रस अधिक सेवन करने पर कफ व पित के रोग, बात, पित, आम वात शरीर की शिथिलता, तिमिर, भ्रम खुजली, पाण्डु रोग, शोथ, विसर्प, तृषा व ज्वर को उत्पन्न करता है।

4. **चरपरा रस (तिक्त)**:–इसके खाने से जीभ के अग्र-भाग में उद्‌वेग और चुन चुनाइट पैदा होती है। अधिक प्रयोग करने पर नाक, आँख, कान और मुख से अधिक लार स्राव करता है तथा कपोलों में जलन पैदा करता है और वीर्य का नाश करता है। शीतल, तृषा, मूर्छा, ज्वर, पित्त तथा कफ का जीतने वाला। कृमि, कुष्ठ, विष, क्लेग, दाह तथा रुधिर के रोगों का नाशक, रुचि कर्ता, आप रुचि से रहित, कंठ तथा दूध का शोधक, वायु वर्धक, अग्नि कारक, नाक का सुखाने वाला और हल्का होता है।

5. **कड़ुवा**–ऊष्ण, तीक्ष्ण, विशत, बात पित्त करने वाला, कफ नाशक, हल्का अधिक अग्नि के गुण वाला, कृमि, खुजली तथा विष का नाशक, रुखा, दूध का नाशक, मेद तथा स्थूलता का घटाने वाला, आँसू बहाने वाला, पाचन,

रुचि कारक इत्यादि हैं। अधिक सेवन करने से बल तथा कान्ति का नाश होता है।

कषाय (कसैला):–

घाव का भरने वाला, व सुखाने वाला, कब्ज करने वाला, अङ्गों को जकड़ने वाला घाव को शुद्ध करने वाला, हृदय में पीड़ा करने वाला, वायु वर्धक इत्यादि है। अधिक सेवन करने पर अफरा और हृदय में पीड़ा आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

एक आवश्यक नियम

आयुर्वेद ने समस्त आहार को छह भागों में बाँटा है और उनके पचने का नियम बताया है। वे छह भाग इस प्रकार हैं:–

1.चूष्य, 2.पेय, 3.लेह्य, 4.भोज्य, 5.भक्ष्य और 6.चर्व्य। यह उत्तरोत्तर भारी हैं अर्थात् चूष्य से पेय और पेय से लेह्य तथा लेह्य से भोज्य भारी हैं !

1. चूष्य से अभिप्राय यह चीज है जो केवल चूस ली जाती है गन्ना, अनार, मोसमी इत्यादि।
2. पेय में शर्बत, दूध, रस इत्यादि आते हैं।
3. लेह्य में शिकरन, कड़ी इत्यादि आते हैं।
4. भोज्य में दाल, चावल इत्यादि आते हैं।
5. भक्ष्य में लड्डू इत्यादि आते हैं।
6. चर्व्य में चने, परमल इत्यादि आते हैं।

आयुर्वेद ने यह ऐसे विभाग किए है कि मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी समझ कर बहुत कुछ लाभ उठा सकता है।

पाठ 12 [ग]

एक नवीन खोज

आधुनिक विज्ञान ने एक नवीन खोज यह की है कि हमारे रक्त में खार (अल्काइन) 80% और खटाई (अल्काइड) 20% होता है अतः भोजन में भी इस बात का विचार रखना चाहिए कि हम ऐसे पदार्थ खावें जिससे हमारे रक्त में खार और खटाई इसी हिसाब से उत्पन्न हो। यदि ऐसा न किया गया और खटाई उत्पन्न करने वाले पदार्थ अधिक मात्रा में खाये गये तो वह रोग उत्पन्न करेंगे। और यदि खटाई उत्पन्न करने वाले पदार्थों की कमी होगी अथवा नितान्त अभाव होगा और शत प्रतिशत खार उत्पन्न करने वाले पदार्थ खाये जावेंगे तो शक्ति की कमी होगी और शरीर निर्बल हो जावेगा। रोग अवस्था में प्राय: खटाई शरीर में अधिक बढ़ जाती है। इस कारण खार उत्पन्न करने वाले पदार्थों की अधिक आवश्यकता रहती है पर प्राय: सभी रोगों के अन्त में और क्षय इत्यादि रोग की प्रत्येक अवस्था में दोनों प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता रहती है। बहुत से प्राकृतिक चिकित्सक इस सिद्धांत को न समझ कर क्षय रोगी को भी अन्य रोगियों का सा भोजन देकर यमपुर पहुँचाते हैं। इसी प्रकार नवीन ज्वर तथा अन्य रोगों में बहुत से डाक्टर रोगी को खटाई उत्पन्न करने वाले पदार्थ खिला कर साधारण रोगों को घातक रोग बना देते हैं। इस सिद्धांत का पालन करने के लिये पाठकों के हृदय में यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि कौन से पदार्थ खार उत्पन्न करते हैं और कौन से खटाई।

क्षार मय पदार्थ जिनसे रक्त में खारपन आता है

(क) धारोष्ण गऊ दुग्ध, और दूध से बने पदार्थ, दही, मठा, मक्खन, घी दही और मठा अच्छे क्षार मय पदार्थ हैं पर अधिक खट्टे न होने चाहिये। घी वैसे क्षार मय है पर उसमें तली हुई वस्तुयें खटाई उत्पन्न करने वाला हो जाता है।

नोट:– दूध के विषय में नवीन खोज बताती है कि इसके भीतर जो श्वेत कीटाणु होते हैं वह पीने वाले के रक्त में पहुँच कर रक्त के श्वेत कीटाणुओं की संख्या चौगुनी कर देते हैं। श्वेत कीटाणु रोग प्रतिरोधक होते हैं यह सब ही जानते हैं।

(ख) मूली की जड़ व पत्ते, शलजम की जड़ व पत्ते, गाजर, सभी पत्तेदार साग जैसे बथुआ, पालक मेथी इत्यादि सभी फल दार भाजियाँ जो पृथ्वी के ऊपर होती हैं जैसे लौकी, तुरई, चचेड़ा, परवल, टमाटर, परौरा इत्यादि। धनिये व आंवले की चटनी।

(ग) सभी मीठे फल और ऐसे फल जो पक कर मीठे हो जाते हैं, संतरा, नारंगी, चकोतरा, अनन्नास, नीबू (खट्टा होने पर भी क्षार मय है), मोसम्मी, शरीफा, मठा आलू बुखारा, मीठा आलूचा, लीची; सेब, मीठा अनार, खूवानो, पहाड़ी नाशपाती, गन्ना (काला थून अथवा देसी), अंगूर, किशमिश, मुनक्का, अंजीर, पिंडखजूर, ख्रिनी, कसेरू, पपीता, खरबूजा, पके मीठे आम, (पतले रस के) लुकाट, शहतूत, बेर, खारा, रस भरी इत्यादि।

(घ) गेहूँ का दलिया, गेहूँ का आटा चोकर सहित, घर का कुटा चावल।

(ड) बिना छिल्का उतारी दाल अर्थात् समूची मूँग, मसूर, लुभिया इत्यादि।

(च) गुड़ और मधु क्षार मय है और खंड साल की सिवार द्वारा बनी शकर भी क्षार मय है। वैसे शकर बनाने में गन्ने के विटामिन जल जाते हैं पर सिवार मिलाने से उसमें फिर विटामिन उत्पन्न हो जाते हैं। मशीन की बनी दानेदार शकर क्षार मय नहीं है। और आंतों में जलन उत्पन्न करती है।

रोग अवस्था में तो कभी भी न खाना चाहिये। वैसे खाना भी हानिकारक है। रोग अवस्था में यथा सम्भव शकर के स्थान में शुद्ध मधु का प्रयोग करना चाहिये। गाय का धारोष्ण दूध बिना मीठा डाले पीना भी अच्छा है। कुछ लोग ठंड करने का भय दिलायेंगे पर यह भ्रम है। रोग की जिस अवस्था में दूध हितकर है वहाँ धारोष्ण दूध ही सबसे अधिक हितकर है।

खटाई उत्पन्न करने वाले पदार्थ

(क) मैदा, मैदा के बने पकवान, बालुशाही, गुलाब-जामन, इमरती, रसमरी, लड्डू इत्यादि। हलवा, पूरी, कचौरी बड़े, रसगुल्ला, संदेश इत्यादि।

(ख) धुली हुई दालें, सूखी मटर, सेम, लुभिया सूखी हुई।

(ग) ऐसे फल जो पकने पर भी खट्टे रहते हैं, अचार, चटनी, इत्यादि, आंवले, हरफा रेवड़ी।

(घ) सूखे मेवे-बादाम, अखरोट, चिलगोजा, पिस्ता, मूँगफली, काजू, खरबूजे की भींग यह चीजें रोग अवस्था में विकार निकालने में बाधक हैं पर रोग निवृति पर शक्ति लाने के लिये उत्तम हैं। हाँ इनके साथ कोई ताज़ा फल संतरा इत्यादि अवश्य खाना चाहिये।

(ङ) मांस, मछली, अंडा, अप्राकृतिक भोजन होने के कारण शरीर का नाश करने वाले हैं और रक्त में खटाई ही उत्पन्न नहीं करते किन्तु रोगों के बीज उत्पन्न करते हैं। अंडा तो रोगों की खान है। इसके छिल्के के भीतर ही रोग कृमि प्रवेश कर जाते हैं। कुछ रोगी शक्ति लाने को मांस इत्यादि खाना जरूरी समझते हैं। कुछ चिकित्सक भी सुनी सुनाई, पढ़ी पढ़ाई, अनुभव रहित बातों के आधार पर ऐसा ही कह देते हैं। पर याद रखना चाहिये कि इन चीज़ों से प्राप्त शक्ति रोगों की जड़ शरीर में जमाती हैं। क्योंकि इनसे एक प्रकार की सड़न उत्पन्न होकर रक्त को दूषित कर देती हैं जिससे अनेकों रोग उत्पन्न होते हैं। कुछ रोगी ऐसा कहते सुने जाते हैं कि हम मांस को पसन्द तो नहीं करते पर रोग के कारण डाक्टर साहब की आज्ञापालनार्थ खाते हैं। ऐसे समस्त सज्जन भ्रम में हैं। संसार में कोई भी रोग ऐसा नहीं है जो मांस, अंडा मछली इत्यादि खाने से ही अच्छा हो सकता हो। सम्पूर्ण साध्य और कठिन साध्य रोग और कुछ ऐसे रोग भी जिनको डाक्टर लोग असाध्य समझते हैं आयुर्वेदिक प्राकृतिक साधनों द्वारा

बिना मांस खाये अच्छे हो सकते हैं। हाँ जिन लोगों की जीवनी शक्ति रोग अथवा विषैली औषधियों से नितांत नष्ट हो गई है और उनके शरीर में इतनी भी शक्ति नहीं रही है कि अपने भीतर के विकार प्राकृतिक साधनों से निकाल सकें वह मांस खाने पर भी अच्छे नहीं हो सकते। मांस तो और नवीन विकार बनावेगा।

अब हम रोग अवस्था में उन रोगियों के लिये जो अपना भोजन आप निश्चित नहीं कर सकते लिखते हैं:–

1. ज्वर इत्यादि कोई भी रोग होने पर भोजन बन्द करके केवल नींबू का पानी पिया जावे।
2. जो रोगी बहुत निर्बल हों अथवा बालक जो न मान सकें, वह नींबू के अतिरिक्त संतरा, मोसम्भी, मुनक्का और मधु भी खा लें।
3. ज्वर इत्यादि कम होने पर गाय का दूध और फलों का भी प्रयोग करें व सब्जी का जूस पीवें।
4. जब अधिक भूख लगने लगे और ज्वर इत्यादि कोई रोग न रहे तो पहले परवल, शलजम, लौकी इत्यादि खावे फिर मूंग की दाल का जूस, गेहूँ का दलिया, मूंग की पतली खिचड़ी इत्यादि खावें और धीरे धीरे सब्जी रोटी पर आवें। कई दिन चलने वाले ज्वर के उतरने पर दो दिन छोड़कर तीसरे दिन अन्न का प्रयोग करें। इससे पूर्व खाने पर कभी कभी फिर ज्वर आने लगता है।

ऐसे पुराने रोगों में जो बहुत से उपचारों से भी काबू में न आते हों अन्न और नमक तथा दानें की शकर छोड़कर केवल फल, तथा दूध (गाय का) व मठा खाने से बहुत से रोग बिना किसी अन्य उपचार के दूर हो सकते हैं हाँ बीच बीच में बस्ती कर्म व उपवास की आवश्यकता हो सकती है। खानपान में अति कभी न करनी चाहिये।

पाठ 13

औषधि प्रयोग और चिकित्सा सिद्धांत

आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य सिद्धान्त यह है कि शरीर प्रकृति से बना है। और जीवात्मा शरीर पर शासन करता है। जो चेतन शक्ति है। जब तक हम अपने को शासक समझ प्राकृतिक शरीर तथा मन पर शासक के रूप में रहते हैं और प्राकृतिक नियमों का पालन करते हैं इन नियमों पर चलने के कारण हमारे शरीर में न तो विकार एकत्रित होने पाते हैं और न हम रोगी होते हैं। पर जब हम अपने आप को भूल प्रकृति के वश में होकर अप्राकृतिक कार्य करने लगते हैं तब हमारे शरीर की मल निकालने वाली शक्ति, नाड़ी संस्थान इत्यादि निर्बल होकर अपना काम ढीला कर देती है और हमारे भीतर विकार एकत्रित होना आरम्भ हो जाते हैं। ऐसी ही अवस्था में हमारे शरीर में रोग कीटाणु अपना घर बना सकते हैं और ऐसी ही अवस्था में हमारे शरीर को सम अवस्था में रखने वाले वात, पित्त, कफ विकृत अवस्था में हो जाते हैं। ऐसा होकर भी हमारी आत्मा बराबर विकार निकालने की रोग कीटाणुओं के मारने की और वात, पित्त, कफ को सम अवस्था में लाने की चेष्टा करती रहती है। यदि साधारण चेष्टाओं में वह सफल नहीं होती तो फिर असाधारण उपाय कर विकार निकालने को कभी ज्वर तथा कभी दस्त लाती है। ऐसी अवस्था में हमारा कर्त्तव्य है कि आत्मा के इस यत्न में कुछ सहायता करें यदि और कुछ न कर सकें तो कम से कम उसके कार्य में बाधा न डालें। यदि कोई भी उपचार न करके दस्त रोकने के लिए हम केवल भोजन बन्द कर दें और शुद्ध वायु में श्वांस लें तो कदाचित् बिना किसी उपचार के विकार निकल जाने पर दस्त स्वयं बन्द हो जावेंगे और भूख भी खुल जावेगी। पर सम्भव है कि इस प्रकार समय अधिक लग जावे जिसको बचाने के लिए हम कुछ ऐसे प्राकृतिक उपचार कर सकते हैं जो उसके (हमारी आत्मा के) काम में बाधा न डालें तो इस प्रकार रोग की जड़ को खो सकेंगे। इसके विरुद्ध यदि मनुष्य जा चिकित्सा की उल्टी विधि दस्त रोकने की विषैली औषधि अफीम, क्लोरोडीन इत्यादि प्रयोग

करेंगे तो सम्भव है कि दस्त एक दम बन्द हो जावें पर विकार न निकले पर अन्य कठिन रोग उत्पन्न होवेंगे क्योंकि जब शरीर में विकार रहेंगे रक्त दूषित होता रहेगा और जीवात्मा सदैव उसे प्राकृतिक ढंग में लाने के लिए यत्न जारी रखेगी। अतः दस्त बन्द होने पर दूसरे कठिन रोग द्वारा विकार निकालने का प्रयत्न करेगी वह या तो विकार निकाल कर रहेगी अथवा स्वयं शरीर को छोड़ देगी। अब प्रश्न यह है कि प्राकृतिक साधनों की सीमा कहां तक है और मनुष्य जा चिकित्सा की सीमा कहां तक हमारे लिए लाभप्रद है इसका उत्तर स्पष्ट है। हमारा शरीर पंच तत्व से बना है। प्रकृति के भीतर भी पंचतत्व विद्यमान है जिसे हम मल कहते हैं वह भी पंच तत्व के भीतर है पर उसमें किसी एक तत्व की मात्रा इतनी अधिक हो कि जो शरीर को हानि पहुँचाता है। यदि हम उन्हीं पंच तत्व की मात्रा ठीक कर दें तो हमारा शरीर ठीक काम करने लगेगा। अग्नि, जल, वायु, आकाश के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। पर पृथ्वी तत्व जिसकी हमें अपेक्षाकृत कुछ अधिक आवश्यकता है। उसका उल्लेख करना है। मिट्टी से हम हाथ धोते हैं, शरीर पर मलते हैं, भूमि पर चल कर उसकी विद्युत शक्ति ग्रहण करते हैं पर इतने से हमारा काम नहीं चल जाता। जीवन स्थिर रखने के लिए हमें पृथ्वी से उत्पन्न वनस्पति को खाकर पचाना पड़ता है। इसी प्रकार रोग अवस्था में मिट्टी की पट्टी बांध कर, भूमि सूंघकर, भूमि पर बैठकर, भूमि में शरीर को दबाकर जहां हम आरोग्यता प्राप्त करते हैं वहाँ हमें पृथ्वी से उत्पन्न वनस्पति के गुणों को जानकर अपने शरीर की न्यूनता के अनुसार रोग अवस्था में कुछ विशेष वनस्पतियों को प्रयोग करना होता है और कुछ को त्यागना होता है। तब हमारा शरीर प्राकृतिक रूप में आता है। इन वनस्पतियों में कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो हमारे नित्य के भोजन का अंग हैं। उनके लौट पौट से यदि स्वास्थ्य सुधर सकता है तो किसी हानि का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता पर कुछ अवस्थायें ऐसी आती हैं कि बहुत समय से अथवा थोड़े समय में बहुत सी अनियमितताये करके हमने अपने विकारों को शरीर के अंगों में इतना

जकड़ दिया है कि हमारी आत्मा साधारण तरीके से उनके निकालने में असमर्थ है। और वह असमर्थता यदि अधिक समय तक अनुभव करेगी तो सम्भव है कि शरीर को छोड़ जावे। ऐसी अवस्था में प्रकृति से उत्पन्न वह वनस्पति भी जो यद्यपि हमारे नित्य के भोजन में नहीं हैं पर उनका पाचन इत्यादि उसी प्रकार होता है जिस प्रकार भोजन का हम उपयोग कर सकते हैं। जैसे नीम, गिलोय, सोमलता। पर यह एक प्रकार की मरम्मत है और यह सिद्धान्त सभी जानते हैं कि नई मशीन जिसकी मरम्मत की आवश्यकता नहीं पड़ी उस मशीन से श्रेष्ठ है जिसकी बार बार मरम्मत होती है। पर मशीन टूटी पड़ी रहे उसकी अपेक्षा मरम्मत की हुई भी चालू मशीन उत्तम है। इसी सिद्धान्त पर आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा में सबसे श्रेष्ठ यह समझा गया है कि प्राकृतिक नियमों पर चलकर हम कभी रोगी न हों। रोगी होने पर बिना किसी उपचार के केवल उपवास अथवा भोजन के परिवर्तन और मानसिक विचार, ईश्वर भक्ति इत्यादि उपायों द्वारा निरोग हो जावें ऐसा न कर सकें तो दैवी चिकित्सा के प्राकृतिक साधनों का प्रयोग करें जिसमें प्राकृतिक औषधियां भी सम्मिलित हैं। यदि इन साधनों में समय इत्यादि की कठिनाई हो अथवा रोग की स्थिति की मांग हो तब हम मनुष्य जा चिकित्सा उस सीमा तक काम में लावें जो हमारी आत्मा को विकार निकालने में सहायता देवें। यहीं तक चिकित्सा की सीमा है। विकारों को दबाने वाली अथवा शरीर को हानि पहुँचाने वाली उल्टी चिकित्सा हानिकारक होने के कारण त्याज्य है।

विदेश से आई वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सा का आरम्भ केवल जल चिकित्सा से हुआ है। और धीरे धीरे पंचतत्व की सहायता पर आकर अब होम्योपैथिक औषधि और जड़ी बूटी की सहायता भी ली जाती है। इस प्रकार वह अब अंत में वहीं पर आ पहुँचे है जहाँ से आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा का आरम्भ है। फिर भी उनमें का एक समुदाय अभी प्राकृतिक औषधियों को प्रकृति की देन न समझने की भूल कर रहा है। पाठकगण यह जानना चाहेंगे कि कौन प्राकृतिक औषधि है

और कौन अप्राकृतिक ? नीचे के दो उदाहरणों से यह बात आपकी समझ में आ जावेगी।

1. जब आप कोई रेचक औषधि दस्त लाने के लिए खाते हैं तो वह शरीर में इस प्रकार नहीं पचती जैसे हम सेब संतरा खाकर रक्त भी बना लेते हैं और शेष भाग बाहर भी निकाल देते हैं पर रेचक औषधि अग्नि गुण प्रधान होती है अतः ज्यों ही आमाशय इसका पाचन करना प्रारम्भ करता है रस वाही स्रोतों के साथ इसके पथ द्रव्य के अल्पांश में मिश्रित होते ही हमारे शरीर को ज्ञान होता है कि यह वस्तु शरीर के लिये हितकर नहीं है। इसे शरीर से बाहर निकालना चाहिये। अतः इड़ा नाड़ी मंडल संक्षुब्ध हो उठता है। क्योंकि उष्णता वायु को गति देती है। इससे इस विष को शीघ्र बाहर निकालने के साधन शरीर खोजता है। अतः समान वायु के केन्द्र उत्तेजित होकर आंतों की गति तीव्र करते और वहाँ की श्लेष्मिक कलाओं के प्रदाह शमनार्थ श्लेष्मिक द्रव्य की वृद्धि वाली क्रिया को सक्रिय बनाते हैं। अतः द्रव्य बनकर आंतों से बाहर आने लगता है। साथ ही आंतों में का मल भी बाहर आने लगता है। इस कार्य में शरीर को श्लेष्मिक द्रव्य व्यय करने में बड़ी हानि उठानी पड़ती है। जिसके फलस्वरूप जुलाब में निर्बलता होती है। पर वह विजातीय द्रव्य के शरीर में रखने की अपेक्षा इस हानि को सह लेता है। इसी प्रकार सब विषैली औषधियों से हमारे शरीर को हानि होती है।

2. इसके विरुद्ध प्राकृतिक औषधि जड़ी; बूटी, सोमलता इत्यादि का जब हम रस पीते हैं तो वह हमारे शरीर में ऐसे ही पचता है जैसे हमारा भोजन दूध इत्यादि और शक्ति उससे अधिक प्रदान करता है। मान लो हमारे शरीर में यकृत बढ़ गया है। यह अप्राकृतिक अवस्था है जो हमारे अप्राकृतिक जीवन से और शरीर में विकार एकत्रित होने से उत्पन्न हुई है उस समय हम बस्ती कर्म और उपवास की सहायता से शरीर से विकार तो कम कर सकते

हैं पर भय यह है कि जब तक हम विकार निकालने में सफल हों बढ़ा हुआ यकृत कहीं जीवात्मा को शरीर छोड़ने पर विवश न कर दे। इसी लिए यकृत पर शीघ्र प्रभाव करने वाले पपीता का भोजन करें और साथ ही उसका दूध दो चार बूँद निहार मुंह खावे तो अपेक्षाकृत यकृत शीघ्र प्राकृतिक अवस्था में आ जावेगा। यह आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा है।

अब पपीता का दूध देते देख कर एक एलोपैथिक डाक्टर यह कहे कि जब दवा ही देना है तो लिवर जीन, खिला कर और लिवर इक्सट्रेक्ट के इन्जेक्शन करा कर लिवर को कम क्यों नहीं करते। इसका उत्तर यह है कि यह चीजें विकारों को दबाती हैं निकालती नहीं हैं अतः यदि यकृत कुछ समय के लिए दब भी जावे तो या तो फिर यकृत ही जोर पकड़ेगा अथवा कोई रोग। इस कारण यह त्याज्य है। और कोई प्राकृतिक चिकित्सक लिवर जीन और लिवर इक्सट्रेक्ट की हानियाँ देख कर औषधि से इतना भयभीत हो जावें कि पपीता के दूध का भी विरोध करने लगे तो यह उसकी भूल है। क्योंकि पपीता अथवा दूध ऐसा पदार्थ नहीं जो विकारों को दबावे और शरीर को हानि पहुँचावे। इसी प्रकार की अनेकों जड़ी बूटी हैं जिनका समय समय पर व्यवहार कर आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। वेद और आयुर्वेद के अध्ययन से हम ऐसी जड़ी बूटियों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सब जानते हैं कि रामायण काल में लक्ष्मण जी विषैले तीर से मूर्च्छित हो मृत्यु शय्या पर पड़े अन्तिम साँस ले रहे थे और प्रातः काल तक जीवन अन्त होने का भय था तो उस समय के राजवैद्य सुषेण ने किसी धातु, भस्म और इन्जेक्शन का प्रयोग न करके केवल एक बूटी को ही सर्व उपयोगी समझा जो जहाँ से सैकड़ों हजारों मील की दूरी पर पर्वत पर उगती थी और उसका प्रभाव ऐसा तत्कालिक हुआ कि श्री लक्ष्मण जी न केवल स्वस्थ हो गए किन्तु इतने शक्तिशाली हो गए कि दूसरे ही दिन मेघनाथ को मार सके। इससे जहाँ प्रकृति की उत्तम देन बूटियों का प्रभाव प्रगट होता है वहाँ उस समय के वैद्यों के विस्तृत ज्ञान का भी पता लगता है।

इसी प्रकार की अन्य अनेकों घटनायें इतिहास में मिलती हैं कि साँप के डसे हुए अथवा किसी और अन्य रोग से प्रगट रूप में मुर्दा मनुष्य को किसी साधु संन्यासी अथवा वैद्य ने किसी जड़ी बूटी से पुनः जीवित कर दिया। मृत्यु के निकट पहुँचे हुए अन्तिम श्वाँस लेते और दम तोड़ते हुए अनेकों रोगियों को जड़ी बूटी अथवा होम्योपैथिक औषधि द्वारा पुनः स्वास्थ्य लाभ करते इन आँखों ने स्वयं देखा है। अतः आलस्य अथवा अल्पज्ञता वश प्राकृतिक चिकित्सा के नाम पर ऐसी बूटियों की अवहेलना करना भी ठीक नहीं है और वेद विरुद्ध कृत्रिम साधनों का ऐसा प्रयोग जो लाभ का धोका देकर वास्तव में स्वास्थ्य और जीवन की हानि करने वाले हैं और प्रयोग भी ठीक नहीं है। होम्योपैथी का नाम आने से हमारे बहुत से वैद्य बन्धु शंकित होगें कि आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा में होम्योपैथी का क्या काम ? यह तो विदेशी चिकित्सा प्रणाली है। अतः हम बताते हैं कि:–

होम्प्योपैथी क्या है ?

होम्प्योपैथी का सिद्धान्त हमारे आयुर्वेद का है। इसका निर्माण "समः समं शम्यति" "हेतुव्याधि विषमस्तु विषंस्त्वार्थ कार्यां विषस्य विषमौषधम्" प्रभृति वेद और शास्त्र के वाक्यों के आधार पर हुआ है जैसा कि अपने स्थान पर इसी पुस्तक में उल्लेख किया गया है। इसके आविष्कारक महात्मा हैनेमैन साहब ने एलोपैथी की विषैली औषधियों के हानिकारक प्रभाव तथा चिकित्सा में उसकी अपूर्णता को देखकर बड़े तप और त्याग से इस सिद्धान्त के परीक्षण अपने जीवन को भी खतरे में डाल कर किये हैं। उनके साथ व उनके पश्चात् सैकड़ों उच्च कोटि के डाक्टरों ने इसके अधिक परीक्षण करके आज इस विज्ञान को इतना उन्नत बना दिया है कि देश और विदेश के हजारों उच्च कोटि के डाक्टर एलोपैथी की शिक्षा और डिग्री प्राप्त कर उसे तो तिलाञ्जलि दे देते हैं और होम्योपैथी द्वारा जन-सेवा का कार्य करने लगते हैं, जिसके फलस्वरूप आज संसार भर में इसका विस्तार है और असंख्य रोगी एलोपैथी से निराश होकर इसके द्वारा जीवन दान पा रहे

हैं। सिद्धान्त रूप में इस विधि में शरीर पर औषधि के प्रभाव से रोग को दबाया नहीं जाता किन्तु शरीर की हार खाई हुई रोग निवारक शक्ति को औषधि के कुप्रभाव का भय दिलाकर रोग निवारण के लिये पुनः उत्तेजित किया जाता है क्योंकि औषधि की मात्रा इतनी सूक्ष्म होती है कि उसका प्राकृतिक प्रभाव बहुत ही अल्प समय में समाप्त हो जाता है, पर हमारी उत्तेजित रोग निवारक शक्ति उस प्रभाव के समाप्त होते ही उत्साहित होकर आरोग्य करने वाली क्रिया को फिर से आरम्भ कर देती है जिससे रोग जड़ से जाता रहता है। यह पूर्व ही बताया जा चुका है कि शरीर में विकार ही रोग का कारण होते हैं और शरीर की जीवनी शक्ति स्वयं शरीर को निरोग रखने की इच्छा रखती है और यथासम्भव विकार निकालती रहती है। जब अधिक विकारों के कारण जीवनी शक्ति निर्बल होकर अपना कार्य नहीं कर सकती उस समय यदि हम एक ओर विकार निकालने को वस्ती कर्म, कटि स्नान, नदी स्नान इत्यादि प्राकृतिक साधन काम में लावें वहाँ जीवनी शक्ति को उत्तेजित करने के लिये अथवा रोग निवारक शक्ति को चेतन करने के लिये होम्योपैथिक औषधि अथवा कोई जड़ी बूटी प्रयोग करें तो आरोग्यता प्राप्ति में बहुत शीघ्रता हो सकती है और भविष्य में भी किसी हानि की सम्भावना नहीं है। यही कारण है कि विदेशों में कुछ प्राकृतिक चिकित्सक फादरनीप इत्यादि ने जड़ी बूटी के अतिरिक्त केवल होम्योपैथी को प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंग बताया है। एलोपैथी इलाज में एक कठिनता रोग के निदान में उसके नाम रखने की पड़ती है। डाक्टर रोगी के सब लक्षणों को किसी एक रोग पर घटाना चाहता है। जब सब लक्षण एक रोग में नहीं मिलते तो या तो कुछ लक्षणों की उपेक्षा करनी पड़ती है अथवा कई कई रोगों को एक साथ मानकर कई औषधियों को मिलाया जाता है।

यदि डाक्टर का रोग निदान ठीक है तो सम्भव है कि रोग लक्षण दब कर कुछ काल के लिये रोगी आराम अनुभव करे और जो कहीं रोग निदान ठीक न हुआ तब तो रोगी की मृत्यु ही समझो। आयुर्वेदिक में तो वात, पित्त तथा कफ के आधार पर ऐसी भूल की कम सम्भावना है पर एलोपैथी में तो प्रायः ऐसा होता

ही रहता है। रोगों की बड़ी नामावली के कारण कभी ऐसा भी होता है कि एक डाक्टर एक रोग और दूसरा डाक्टर दूसरा रोग बताता है। अब बेचारा रोगी हैरान है कि किसको ठीक समझे और स्वयं वह इसका कोई निर्णय नहीं कर सकता। पर होम्योपैथी में रोग के नाम से कुछ नहीं बनता बिगड़ता। कोई नाम रख लो। चिकित्सा रोग के लक्षणों पर होगी जिनको डाक्टर भी देख सकता है और रोगी भी। अब यदि दो डाक्टरों की सम्मति में औषधि के विषय में भिन्नता है तो रोगी स्वयं औषधि के लक्षण सुनकर अपने लिये ठीक औषधि चुन सकता है। अतः एलोपैथी की चिकित्सा की भाँति इसमें हानि की कभी सम्भावना नहीं है। जैसे:– एलोपैथी में मियादी बुखार को मलेरिया और मलेरिया को मियादी समझने में होती है। इसके अतिरिक्त इस समय हमारे देश में निर्धनता और मँहगाई के कारण हमारे देश को सस्ती चिकित्सा की आवश्यकता है और पौष्टिक भोजन दूध घी न मिलने से तीव्र विषैली औषधियाँ सहने की शक्ति भी नहीं रही है। होम्योपैथिक औषधि सस्ती भी होती है और तीव्र भी नहीं होती है।

एक और सुभीता भी है कि आजकल औषधि खाने का रिवाज बहुत बढ़ जाने से बहुत से रोगी घण्टे दो घण्टे के अन्तर पर औषधि की इच्छा करते हैं। उनकी इस इच्छा की पूर्ति भी होम्योपैथिक औषधि से हो सकती है जिससे उनकी मानसिक शक्ति भी निरोगता लाने में सहायक बन सकती है। इसके विपरीत कुछ रोगी औषधि बार बार खाने से कतराते हैं, उनके लिए होम्योपैथी की उच्च शक्ति (नम्बर) की औषधि उपयुक्त रहती है जो मास में एक दो बार ही दी जाती है और कभी कभी 6-6 मास में एक ही बार। ऐसे ही अनेक गुणों के कारण हम होम्योपैथी को प्राकृतिक आयुर्वेद चिकित्सा का एक अंग मानते हैं और हमारा विश्वास है कि यदि इस समय समझदार वैद्य और होम्योपैथिक डाक्टर मिल कर आयुर्वेद के मूल सिद्धान्तों पर इस समय के अनुकूल चिकित्सा प्रणाली निश्चित कर अपने देश में उसी को प्रचलित कराने का प्रयत्न करें तो स्वास्थ्य और धन सम्बन्धी जो हानियाँ एलोपैथिक इलाज से इस समय देश को उठानी पड़ रही हैं और भविष्य में और भी अधिक उठाने की सम्भावना है वह बच सकती है।

पाठ 14

मनोबल

मानसिक शक्ति अथवा मनोबल भी चिकित्सा का एक आवश्यक अंग है। इस विषय पर हम विस्तार से अपनी पुस्तक "यज्ञ-चिकित्सा" में लिख चुके हैं। उसी में से कुछ थोड़ी बातें यहाँ लिखते हैं।

प्राचीन से प्राचीन ग्रंथ वेद शास्त्र और नवीन से नवीन पाश्चात्य विद्वान इस बात में एक मत हैं कि मन की शक्ति बड़ी प्रबल है। मनुष्य वैसा ही बन जाता है जैसा वह विचार करता है या संकल्प करता है। दृढ़ निश्चय और संकल्प से मनुष्य निर्बल से बलवान, रोगी से स्वस्थ और मूर्ख से विद्वान तथा निर्धन से धनवान बन सकता है। कल्पना, मनोवृत्ति, मन, चित्त, चेष्टा, मनो-व्यापार, ध्यान, विचार, मनोरथ, इत्यादि संकल्प के पर्यायवाची शब्द हैं और अपने २ स्थान पर संकल्प के लिए प्रयुक्त होते हैं। वेद भगवान ने जो चार प्रकार की चिकित्साएँ बताई हैं उन्हीं के अन्तर्गत मानसिक चिकित्सा भी है। वेद में मनको "ज्योतिषां ज्योतिः" अर्थात् ज्योतियों का ज्योति महा ज्योति बताया है। इसी प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक कहते हैं कि "Mind is a great electrical force" अर्थात् मन एक महान विद्युत मय शक्ति है। गोपथ ब्राह्मण में बताया है "मनुष्य जैसा संकल्प करता है वैसा ही वह बन जाया करता है"। यदि संकल्प अच्छे हैं तो वह अच्छा बन जाया करता है और यदि संकल्प बुरे हैं तो वह बुरा बन जाता है। इसी प्रकार एक अंग्रेज़ी लेखक का वचन है "As a man thinketh so is he" अमरीका के उत्कृष्ट विद्वान मार्डन (Mordan) का कथन है "Man can renew his body by renewing his thoughts" अर्थात् मनुष्य अपने विचारों को नया कर देने से अपने शरीर को नया कर सकता है। आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता श्री नारायण स्वामीजी महाराज लिखते हैं कि "मनुष्य के संकल्प यदि बुरे हैं तो वह उसे रोगी बना दिया करते हैं"।

पेरिस के डाक्टर वेएल्डुक ने संकल्पों के फोटो लेकर यह सिद्ध कर दिया है कि विचार का प्रभाव प्राकृतिक शरीर पर ऐसा ही होता है जैसा किसी वस्तु के खाने से।

अमेरिका के एक और विद्वान बैनेट (Bannet) ने इस सम्बन्ध में स्वयं परीक्षण किये हैं। उन्होंने अपने जीवन के 50 वर्ष बड़ी असावधानी से स्वास्थ्य रक्षा की परवाह न करते हुये व्यतीत किये थे। उनके उस आयु का फोटो देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वह 70 वर्ष के वृद्ध मनुष्य का चित्र है। बाल सफेद, माथे में शिकन, गले में झुरियाँ पड़ी हुई हैं और तमाम शरीर की त्वचा ने मांस को छोड़ रखा है। 50 वर्ष की आयु के पश्चात् उसके विचार बदले और उसने अपना स्वास्थ्य सुधारने का निश्चय किया और उसके लिये दो साधन अपनाये। पहिला समस्त शरीर के हल्के व्यायाम जिन्हें मनुष्य लेटे लेटे ही कर सके। दूसरे अपने विचारों से हर समय यह सोचना कि मैं स्वस्थ और युवा बन रहा हूँ। इन बातों का 20 वर्ष तक अभ्यास करने के पश्चात् सत्तर 70 वर्ष की आयु का फिर चित्र दिया है जिसके देखने से ज्ञात होता है कि वह किसी 30-35 वर्ष के युवक का फोटो है। उसकी झुरियाँ मिट गई हैं। त्वचा कड़ी पड़ गयी है। तब बैनेट ने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम "Old age, its causes, and prevention" बुढ़ापा और उसके कारण तथा उससे बचाव है। इस पुस्तक में बैनेट ने लोगों को बूढ़े होने का कारण उनके विचार बताये हैं। इस पुस्तक में जहाँ उसने अपना उदाहरण उपस्थित किया है वहाँ एक और घटना अपने पक्ष के समर्थन में उपस्थित की है। जो इस प्रकार है:–

"फ्रांस की एक 16 वर्ष की लड़की ने अपना विवाह वहाँ के एक युवक के साथ करना निश्चय किया। युवक ने अपने पास धन की कमी देखकर लड़की से कहा कि विवाह तो निश्चय हो गया है परन्तु उसे क्रियात्मक रूप देने से पहिले यह आवश्यक है कि मैं कुछ धन संग्रह कर लूँ। लड़की ने स्वीकृति दे दी। इसके

पश्चात् वह युवक धन कमाने अमेरिका चला गया जहाँ कोई भी मनुष्य 6 घण्टे काम करके 24 रुपये रोज़ कमा सकता है। उस युवक ने तीन वर्ष परिश्रम करके पर्याप्त धन पैदा कर लिया पर चलते समय किसी झगड़े में पड़कर उसे 15 वर्ष वहाँ और रुकना पड़ा। 18 वर्ष के पश्चात् वह फ्रांस को लौटा। तब इन दोनों का विवाह हुआ। परन्तु जिस बात ने वर को आश्चर्य में डाल दिया था वह यह थी कि वधू की 37 वर्ष की आयु हो जाने पर भी उसका आकार प्रकार वैसा ही था जैसा कि 16 वर्ष की आयु में। पूछने पर वधू ने बताया कि मैंने निश्चय किया था कि 16 वर्ष की आयु में विवाह करूंगी। विवाह निश्चित तो हो गया पर हो न सका। तब मैंने दूसरा निश्चय यह किया कि विवाह जब भी होगा मैं अपने चेहरे के आकार प्रकार को वैसा ही बनाये रखूंगी जैसा कि 16 वर्ष की आयु में था। इस दूसरे निश्चय की पूर्ति के लिये मैंने अपने घर के एक कमरे में 6 फीट ऊँचा एक दर्पण तैयार करवाया। उसमें देखकर अपनी आकृति भली प्रकार चित्त में रख ली। अब नित्य प्रति 4-6 बार दर्पण के सन्मुख खड़े होकर मैं अपनी आकृति देखती और यह निश्चय करती कि मेरी आकृति वैसी ही बनी हुई है जैसी कि कल थी। यह अभ्यास लगातार 18 वर्ष तक जारी रहा। इस मनोभाव का प्रभाव यह हुआ कि मेरी आकृति में कोई अन्तर नहीं पड़ा।'

रोगियों को इन उदाहरणों से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुये अपने भीतर उत्साह, आशा और श्रद्धा के साथ यह विचार करते रहें कि मेरे शरीर से रोग दूर हो रहा है और मैं स्वास्थ्य बन रहा हूँ। जो ऐसा करते हैं वे स्वस्थ भी हो जाते हैं। इसके विपरीत जो रोते झींकते और शंका की दृष्टि से प्राकृतिक चिकित्सा करते हैं, कभी इन्जेक्शन को दौड़ते हैं, बाथ लेते हैं तो पानी से ठंड लग जाने का भय, नींबू संतरा खाने से निमोनिया का भ्रम और दिन रात यही सोचते हैं कि अब रोग दूर न होगा। ऐसे रोगी कभी अच्छे नहीं होते। अतः चिकित्सा प्रारम्भ करने के पूर्व पुस्तक को कई बार पढ़कर अपने सब भ्रम दूर कर लेना चाहिये और दृढ़ निश्चय हो जाने पर ही चिकित्सा प्रारम्भ

करनी चाहिये और इसके पश्चात् जमकर पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करने तक बराबर चिकित्सा जारी रखना चाहिये और सर्वदा शुभ भावना ही मन में रखना चाहिये। ऐसे मनुष्यों की भगवान भी सहायता करते हैं। चिंता करने और उदास रहने से दुःख बढ़ते हैं तथा आशावादी और प्रसन्न रहने से उत्साह बढ़ता है तथा दुःख कम होते हैं। प्रसन्नता के विषय में अगले पाठ में बताया जावेगा।

पाठ 15

प्रसन्नता

कुछ लोग भ्रमवश यह समझते हैं कि प्रसन्नता किन्हीं वस्तुओं के भीतर है और उन वस्तुओं के अभाव में दुख होता है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। जो वस्तु एक मनुष्य को सुख देने वाली है वही किसी दूसरे को महा कष्टदायक है। एक ही व्यक्ति की कोई वस्तु किसी समय परम सुख का कारण है तो दूसरे समय उसी वस्तु से उसे कष्ट प्रतीत होता है। वास्तव में प्रसन्नता का सम्बन्ध मन और विचार से है। हम अपनी कोठी में सजे सजाये कमरों में सुख पूर्वक रह रहे हैं। हवा के झोके से हमारे कमरे में गर्द भी न आये उसके लिये बहुमूल्य पर्दे और चिकें डाल रखी हैं। गंगा स्नान का पर्व आता है और हम एक बैलगाड़ी पर बैठ कर कई दिन की यात्रा तय करके गंगा पर पहुँचते हैं। पृथ्वी पर सोना, धूल, गर्द में घूमना, भोजन भी धूल मिला हुआ खाना यह सब कष्ट दायक बातें उस समय हमें प्रसन्न करने वाली हैं। यदि किसी कारण वश हमें इस अवसर पर जाने से वंचित रहना पड़े तो उस समय उस कोठी में हमें दुःख होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विचारों से हम ऐसी अवस्था में भी अपने आपको प्रसन्न रख सकते हैं जिसे रोग कष्ट अथवा चिंता कहा जाता है। रोग अवस्था में हमें जो कष्ट होता है उसके वास्तविक कारण को खोज कर उसे दूर करने का यत्न करने में और भविष्य में उस कारण को उत्पन्न न होने देने के निश्चय करने में तथा अपनी उस भूल से दूसरों को लाभ पहुँचाने में अपना समय बितावें और यह सोचकर प्रसन्न हों कि इस कष्ट से हमें एक नवीन ज्ञान प्राप्त हो गया है। हम प्रसन्न भी हो सकते हैं। लोग कहेंगे कि यह कैसे हो सकता है कि घटनायें हमारे विरुद्ध घटें और हम चिन्तित न हो कर प्रसन्न बने रहें। हमारा उत्तर यह है कि ज्ञान और विचार से ऐसा ही होना सम्भव है। देखिये:–घटनायें तो किसी अज्ञात शक्ति द्वारा घटती ही रहती हैं। हमारे अप्रसन्न होने और चिंता करने से उन में

कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। हम तो केवल यही कर सकते हैं कि जो भी परिस्थिति अपने सामने आवे उसमें अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

उदाहरणार्थ–हम रोगी हैं और उसी समय हमें अपने व्यापार में बड़ा घाटा हो गया। अब हम रह रह कर सोचते हैं कि हाय इतना धन चला गया और हम रोग शय्या पर पड़े हैं कमा भी नहीं सकते। इसी चिंता में दिन रात इन बातों को सोचते रहते हैं। कोई मित्र आता है उससे भी खुलकर प्रसन्नता पूर्वक बात नहीं करते। अतः वह भी आने में कमी कर देता है। घरवाले बाल बच्चे हँसते बोलते हैं तो हम उन्हें डाँट देते हैं, इससे वह भी पास नहीं फटकते और खाली पड़े पड़े हमें चिंता करने का समय और भी बढ़ जाता है और न तो कोई हमें घाटे का धन दे जाता है और न इस सोच विचार से हमारे रोग में कोई कमी होती है किन्तु वृद्धि ही होती है। अब यही घटना एक ज्ञानी पुरुष के साथ घटती है। वह सोचता है कि ईश्वर को बड़ा धन्यवाद है कि उसने मेरे पिछले किसी पाप का फल ऐसे समय में देकर मुझे पाप मुक्त कर दिया जब कि मैं अभी फिर से धन कमा सकता हूँ। सबसे बड़ी प्रसन्नता इस बात की है कि केवल धन का ही नाश हुआ। मेरे हाथ, पैर, बुद्धि, आंख, कान जो इस धन से करोड़ों गुना मूल्य की वस्तुयें हैं ठीक हैं। अब इस समय मेरा कर्त्तव्य यह है कि पूरे प्राकृतिक नियमों का पालन करके शीघ्र आरोग्यता प्राप्त करूँ और अधिक परिश्रम करके फिर से धन कमाने का प्रयत्न करूँ। ऐसे व्यक्ति के पास जब उसके मित्र सहानुभूति के लिये आते हैं तो वह उनसे भी इसी प्रकार की प्रसन्नता की बातें करता है जिससे वह मित्र उसके और भी घनिष्ट मित्र बन जाते हैं तथा अपने दुःख के समय में भी उसके उपदेश की इच्छा रखते हैं। अब आपकी समझ में आया कि एक ही घटना दो व्यक्तियों पर दो प्रकार का प्रभाव रखती है। ऐसे ज्ञानी पुरुष बनने के लिये कहीं बाहर से कोई वस्तु लेने की आवश्यकता नहीं है। यह हमारे अपने मन और विचार पर है कि जैसे चाहें हम बन जायें। ऐसे विचार बनाने के कुछ साधन यहाँ लिखे जाते हैं।

1. सबसे प्रथम साधन यह है कि हम उस परम पिता परमात्मा को सर्वव्यापक, दयालु और न्यायकारी समझ कर उस पर यह विश्वास करें कि जो कुछ भी वह करता है वह सबके हित के लिये करता है। यदि उसके किसी कार्य से हमें कष्ट पहुँचा है तो वह हमारे ही कर्मों का फल है और इस कष्ट से भी भविष्य में हमारा कुछ न कुछ हित है। इस प्रकार हर समय प्रभु को अपने साथ समझते हुये अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुये सदा प्रसन्न रहना चाहिये।

2. हमें यह समझना चाहिये कि उस जगत नियन्ता ने इस संसार रूपी नाटक को रचा है और हमें भी इस नाटक में एक पार्ट अदा करने को भेजा है, पार्ट चाहे सेवक का हो अथवा राजा का। इसमें कोई भेद नहीं। देखा यह जाता है कि पार्ट कैसा अदा किया है। अतः हमें भगवान ने जो जिम्मेदारी सौंपी है उसको पूर्ण प्रयत्न के साथ सच्चाई और ईमानदारी के अनुकूल हमें निभाना चाहिये क्यों कि हमारे पास यही एक साधन है जिससे हम मालिक को प्रसन्न करके अच्छा पार्ट अदा करने वालों की पंक्ति में अपने को बिठा सकते हैं। हमारी दृष्टि अपने कर्त्तव्य की ओर होनी चाहिये न कि इनाम की ओर। भगवान कृष्ण ने गीता में भी इसी बात का उपदेश किया है और हमारे वेद शास्त्र भी यही बताते हैं। इस समय जो हमारी शिक्षा का ढंग है और जिस प्रकार जीवन व्यतीत हो रहा है उसमें अधिकांश विदेशी नवीन सभ्यता का हाथ है। इसी कारण संसार के साथ साथ हमारे देश में भी अशान्ति, ईर्षा, द्वेष, और चिंता का राज्य है। यदि हम अपने प्राचीन आर्य ग्रंथ वेद, शास्त्र, उपनिषद् इत्यादि सत्य ज्ञान और शान्ति प्रदान करने वाली पुस्तकों का स्वाध्याय करें तब इस प्रकार के विचार बन सकते हैं। ऐसे विचार बनाने को सबसे प्रथम बालकपन से ब्रह्मचर्य के नियम पालन करने की आवश्यकता होती है जिससे रोग भी कम होते हैं। ब्रह्मचर्य के विषय में अगले पाठ में बताया जावेगा।

पाठ 16

ब्रह्मचर्य

यों तो हर मनुष्य में जीवन और बल सब उसी अनुपात से होता है जिस अनुपात से उसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। यहाँ तक ही नहीं किन्तु माता पिता के ब्रह्मचर्य का प्रभाव भी संतान की शक्ति और बुद्धि पर पड़ता है। पर रोग अवस्था में तो ब्रह्मचर्य और भी अनिवार्य है। रोगी कोई भी उत्तम से उत्तम चिकित्सा करे यदि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं करेगा तो उसका पूर्ण आरोग्य होना लगभग असम्भव है। फिर प्राकृतिक चिकित्सा तो औषधि के बल पर नहीं किन्तु शरीर को उसी की शक्ति तथा पवित्रता के आधार पर निरोग करने का आदेश देती है। अतः इसमें तो ब्रह्मचर्य की और भी अधिक आवश्यकता और महत्ता है। वैज्ञानिक ढंग पर इस बात को समझने के लिये वीर्य की बनावट और वीर्य की हानि से रोग किस प्रकार होता है इसे समझ लेना चाहिये। आयुर्वेद ने

वीर्य का लक्षण

वर्णन करते हुये बताया है कि प्रत्येक वस्तु में कार्य करने की जो शक्ति होती है वही उसका वीर्य है। कुछ और स्पष्ट रूप में इस प्रकार समझो कि भोजन का स्थूल भाग तो मल रूप में बाहर निकल जाता है और सूक्ष्म तथा क्षार भाग रस बनता है, फिर उससे रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, और हड्डी से मज्जा बनता है। अन्त को मज्जा में से स्नेह या स्निग्ध पदार्थ टपकता है उसे वीर्य कहते हैं। यह मनुष्य शरीर के प्रत्येक भाग में विद्यमान रह कर अपने सूक्ष्म भाग ओज के नाम से शक्ति प्रदान करता है। यदि मनुष्य शरीर में से वीर्य का सारा भाग निकाल लिया जावे तो उसकी आकृति हड्डियों के उस ढाँचे से बहुत कुछ मिलती जुलती हो जावेगी जो कंकाल (Skeleton) के नाम से डाक्टरों के कालिजों में रखा रहता है और उसे देख कर बालक डर जाया करते हैं। मनुष्य में फुर्ती, उत्साह, उमंग, कार्य शीलता, मुँह पर लाली और तेज, वाणी में

मधुरता और ओज तथा प्रभाव उसी अनुपात से रहता है जिस अनुपात से मनुष्य के भीतर वीर्य होता है। जब वीर्य के अभाव से शरीर निर्बल हो जाता है तब ही रोग का आक्रमण होता है अथवा दूसरे शब्दों में, प्राण शक्ति निर्बल होने से उसके यंत्र नाड़ी सूत्र निर्बल हो जाते हैं और शरीर के मलों को ठीक रूप में नहीं निकाल पाते तब शरीर में विकार रुक कर वात, पित्त तथा कफ की समानता को बिगाड़ कर कोई दोष उत्पन्न करके शरीर को रोगी बना देते हैं। इसको और अधिक समझने के लिये यह जान लीजिये कि

वीर्य की हानि से रोग कैसे आक्रमण करता है?

हमारे शरीर का प्रत्येक भाग कोष अथवा कण (Cell) औषधि अथवा बस्ती कर्म इत्यादि का प्रयोग कर रहे हैं जिससे रुके हुये विकार निकलना आरम्भ हुआ है और प्राकृतिक अन्य साधन जल, सूर्य, इत्यादि से नाड़ी-संस्थान को कुछ बल मिलना प्रारम्भ हुआ है। ऐसी अवस्था में हमने वीर्य का नाश कर दिया तो हमारा नाड़ी-संस्थान और प्राण-शक्ति और भी निर्बल हो जावेगी। ऐसी अवस्था में हमारे वह प्राकृतिक साधन हमें कैसे नीरोग कर सकेंगे? अतः रोगी अवस्था में कभी भी ब्रह्मचर्य व्रत का खण्डन न होने देना चाहिये। स्वप्नदोष इत्यादि से इच्छा विरुद्ध वीर्य नाश भी न होने पावे इसके लिये न तो कभी विषय सम्बन्धी विचार मन में लाना चाहिये, न ऐसे उपन्यास पढ़ना चाहिये और न ऐसे सिनेमा देखना चाहिये जिनसे इस प्रकार के विचार उत्पन्न हों। आरोग्यता प्राप्त करने के लिये प्राकृतिक साधन यदि रोग से लड़ने वाले बहादुर सिपाही हैं तो वीर्य सिपाहियों के हाथ का तेज शस्त्र है जिसको हाथ से लेकर ही वह लड़ सकते हैं। बिना शस्त्र के बहादुर से बहादुर सिपाही भी कुछ नहीं कर सकता। युद्ध जीतने के लिये सेना और शस्त्र दोनों की आवश्यकता है। अतः आरोग्यता प्राप्ति के इच्छुक को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन पूर्ण रूप से करना चाहिये। इस उपदेश के साथ हम इस पुस्तक का विचार खण्ड समाप्त करते हैं और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि समस्त संसार को ऐसी स्वच्छ बुद्धि प्रदान करे कि वह विषैली और हानिकारक औषधियों के कुप्रभाव

से बच कर इस से बना है। कोष एक बहुत छोटा परमाणु है जिसका आकार 1/1000 से 1/5000 इंच तक होता है। अर्थात् यदि उनको बराबर बराबर रखा जावे तो छोटे कोष तो एक इंच में 5000 आवेंगे और बड़े से बड़े कोष भी उस स्थान में 1000 आ सकेंगे। अब देखिये इस महान प्रभु की विचित्र रचना कि इस सूक्ष्म वस्तु में क्या क्या चमत्कार है। साधारणतः प्रत्येक कोष में एक बारीक झिल्ली का खोल होता है और उसके भीतर एक पतला चिकना पदार्थ भरा होता है जिसे (Protoplasm) प्रोटोप्लाज्म कहते हैं। यही कोष का मुख्य भाग है। इस प्रोटोप्लाज्म के भीतर क्रिया शक्ति होती है जिससे वह अपने समीप से अपने भोजन के भाग को आकर्षित करके हज्म कर लेता है। शुद्ध वायु (ओषजन) और दूषित वायु (कार्बन) बाहर निकालता है। इस प्रोटोप्लाज्म के बीच में एक गोल विन्दु सा होता है जिसे न्युकलीअस (Nucleus) कहते हैं और जो प्रोटोप्लाज्म का भी जीवन आधार है और बहुत से कोषों का न्युकलीअस मिल कर एक प्रकार से मनुष्य के शरीर का प्राणाधार है। न्युकलीअस के द्वारा ही प्रोटोप्लाज्म श्वास इत्यादि लेता है और नवीन कोष भी बनाता है। विशेषतया जब किसी रोग के कीड़ों के साथ युद्ध में अधिक कोष काम में आते हैं तो यह शीघ्रता से नवीन कोष बनाता है और रोग कीटाणुओं को परास्त करने का यत्न करता है। इनमें से रक्त के श्वेत कोषों में झिल्ली का खोल भी नहीं होता। किन्तु द्रव पदार्थ ही अधिक होता है और यही कोष रोग कीटाणुओं का विशेष सामना करते हैं। कोषों में यह पतला तथा चिकना पदार्थ वीर्य से और न्युकलीअस का अधिक भाग ओज से प्राप्त होता है। अतः जब शरीर में से वीर्य अधिक मात्रा में निकल जाता है तो उसमें रुग्णता उत्पन्न हो जाती है और प्रत्येक कोष का प्रोटोप्लाज्म सूखने लगता है और न्युकलीअस की शक्ति कम होने लगती है। ऐसी अवस्था में जब किसी रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तो उनका विरोध करने वाला कोई नहीं होता क्योंकि हमारी रक्षक सेना तो पहले ही अपना राशन वीर्य न पाने से हमसे विद्रोह किये होती है। अतः रोग कीटाणु बिना किसी रोक टोक के शरीर में अपना

स्थान बना कर हमको मृत्यु की ओर ले जाते हैं क्योंकि जब इन कीटाणुओं की कोई रोक टोक नहीं होती अथवा निर्बल और कम सेना से होती है तो वह नित्य प्रति अपनी संतान को बढ़ाते और शरीर को क्षीण करते जाते हैं। इस अवस्था में यदि कोई रोगी वीर्य का नाश करके केवल चिकित्सा द्वारा रोग कीटाणुओं को समाप्त करना चाहता है वह कितना बड़ा मूर्ख है। जो लोग कीटाणुवाद को इस रूप में नहीं मानते उनको यह समझ लेना चाहिये कि शरीर से मल निकालने वाली प्राण शक्ति और नाड़ी-संस्थान की निर्बलता के कारण ही शरीर में विकार रुक कर वात, पित्त तथा कफ को कुपित करते हैं। जब हम इन विकारों को निकालने के लिये औषधि अथवा वस्ती कर्म इत्यादि का प्रयोग कर रहे हैं जिससे रुके हुये विकार निकलना आरम्भ हुआ है और प्राकृतिक अन्य साधन जल, सूर्य, इत्यादि से नाड़ी-संस्थान को कुछ बल मिलना आरम्भ हुआ है। ऐसी अवस्था में हमने वीर्य का नाश कर दिया तो हमारा नाड़ी-संस्थान और प्राण-शक्ति और भी निर्बल हो जावेगी। ऐसी अवस्था में हमारे वह प्राकृतिक साधन हमें कैसे निरोग कर सकेंगे ? अतः रोगी अवस्था में कभी भी ब्रह्मचर्य व्रत का खण्डन न होने देना चाहिये। स्वप्नदोष इत्यादि से इच्छा विरुद्ध वीर्य नाश भी न होने पावे इसके लिये न तो कभी विषय सम्बन्धी विचार मन में लाना चाहिये, न ऐसे उपन्यास पढ़ना चाहिये और न ऐसे सिनेमा देखना चाहिये जिनसे इस प्रकार के विचार उत्पन्न हों। आरोग्यता प्राप्त करने के लिये प्राकृतिक साधन यदि रोग से लड़ने वाले बहादुर सिपाही हैं तो वीर्य सिपाहियों के हाथ का तेज शस्त्र है जिसको हाथ में लेकर ही वह लड़ सकते हैं। बिना शस्त्र के बहादुर से बहादुर सिपाही भी कुछ नहीं कर सकता। युद्ध जीतने के लिये सेना और शस्त्र दोनों की आवश्यकता है। अतः आरोग्यता प्राप्ति के इच्छुक को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन पूर्ण रूप से करना चाहिये।

इस उपदेश के साथ हम इस पुस्तक का विचार खण्ड समाप्त करते हैं और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि समस्त संसार को ऐसी स्वच्छ बुद्धि प्रदान करे

कि वह विषैली और हानिकारक औषधियों के कुप्रभाव से बच कर इस पुस्तक में बताये साधनों से जहाँ अपनी चिकित्सा स्वयं कर सकें वहाँ सम्पन्न लोग अपने उन साधनहीन भाइयों के लिये, जो अपने घर पर रह कर न स्वच्छ वायु पा सकते हैं और न नदी स्नान और सूर्य प्रकाश तथा हवन यज्ञ से लाभ उठा सकते हैं, स्थान स्थान पर ऐसे आश्रम बना कर जहाँ एक साथ अनेक रोगी रह सकें दुखी भाइयों का दुःख दूर करके पुण्य के भागी बनें। ऐसे सब आश्रमों के साथ गऊशाला परम आवश्यक है।

आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा

भाग २

चिकित्सा-खण्ड

डा० कुन्दनलाल अग्निहोत्री

पाठ 1

चिकित्सा के साधन

आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा में जिन साधनों का उपयोग होता है उन सबका उल्लेख यहाँ एक साथ इस पाठ में किया जाता है। इनको भली प्रकार समझ लेना चाहिये क्योंकि आगे इन्हीं साधनों का उपयोग रोगों की चिकित्सा में बताया जावेगा।

(1) **उपवास** – एक दिन कोई भोजन न करके केवल नीबू का रस मिला जल (ठंडा व गर्म) पीकर रह जाना एक दिन का उपवास कहलाता है। इस अवस्था में दूसरे दिन प्रातःकाल फलों के रस से उपवास तोड़ा जाता है। इसी प्रकार एक से अधिक दिनों का उपवास किया जाता है। बहुत निर्बल रोगी, वृद्ध और बालक नीबू के अतिरिक्त संतरा का रस भी दिन में दो तीन बार पी लें यह भी उपवास है।

(2) **उपवास तोड़ना** – एक दिन का उपवास तोड़ने के लिये तो कोई विशेष बन्धन नहीं है। हिल्के भोजन से भी तोड़ा जा सकता है। पर कई दिन के उपवास तोड़ने के लिये कुछ अधिक सतर्कता से काम लेना पड़ता है। पहले संतरा, मोसम्मी, यह न मिलें तो किसी और फल का रस अवश्य पीना चाहिये और एक दिन केवल रसाहार पर रहना चाहिये। फिर एक दो दिन फलों पर रहें, तब सब्जी खावें, तत्पश्चात् दलिया फिर सब्जी रोटी खावें। फलों के साथ में दूध और मुनका व किशमिश, सूखे फल भी खाये जा सकते हैं। पर दूध सर्वदा गाय का अथवा बकरी का पीना चाहिये। भैंस का दूध रोगी को कदापि न पीना चाहिये। यदि दूध न मिले तो उसके स्थान पर फलों का उपयोग करें पर भैंस का दूध कदापि न पीवें।

(3) **वस्ती कर्म** – अंग्रेजी दवा बेचने वालों की दुकान पर एनीमा, डूश देने का यन्त्र, एरीगेटर अथवा एनीमा पाट के नाम से जो यन्त्र मिलता है उसके तीन भाग होते हैं।

(क) पानी के लिये एक चीनी का बर्तन।

(ख) ५-६ फीट लम्बी रबड़।

(ग) दो नाज़िल–एक स्त्री-पुरुषों का दूसरा केवल स्त्रियों का।

इनमें पहिले को एनीमा देने का नाज़िल और दूसरे को डूश देने का नाज़िल कहते हैं। बस्ती कर्म, एनीमा देने को ही कहते हैं। उसकी विधि इस प्रकार है:–

विधि– पानी के बर्तन में रबड़ व नाज़िल लगाकर पेच बन्द कर दें और बर्तन में आवश्यकतानुसार गर्म व ठण्डा पानी भरकर दीवार पर खूंटी व कील के ऊपर इतनी ऊँचाई पर लटका दें कि दीवार के निकट पलँग पर रोगी लेटे तो नाज़िल उसकी गुदा तक सुगमता पूर्वक पहुँच सके। अब रोगी एक करवट में पलंग पर लेट जावे और नाज़िल के सिरे पर चिकनाई लगाकर पहिले पेंच खोलकर देख लें कि पानी वेग के साथ निकलता है। यदि न निकले तो रबड़ या नाज़िल में जो रोक हो उसे दूर करें। जब पानी निकलने लगे तब पेंच बन्द कर दें और नाज़िल को गुदा में एक इञ्च भीतर रखकर पेंच खोल दें। पानी कोलन में जाता हुआ मालूम होगा कभी कभी आंतों में पहुँचने पर कुछ दर्द का अनुभव होगा क्योंकि पानी चिपटे मल को गीला कर रहा है। इस दर्द से घबरावें नहीं क्योंकि वह तुरन्त ही समाप्त हो जाता है। पाँच मिनट के भीतर सब पानी कोलन के भीतर पहुँच जावेगा। अब नाज़िल को गुदा से निकाल दें और इच्छा शक्ति से काम लेकर जितनी देर रोक सकें रोके रहें।

एनीमा प्रयोग (वस्ति कर्म)

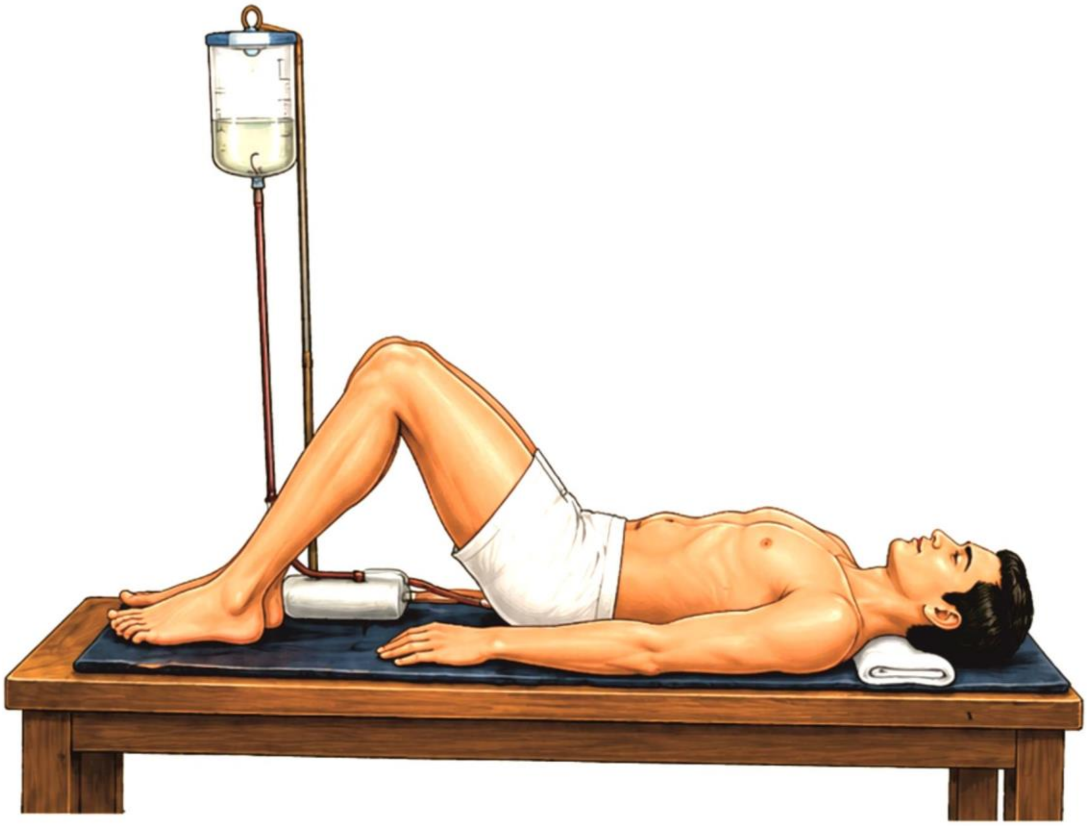

कटि स्नान के लिए साधारण टब

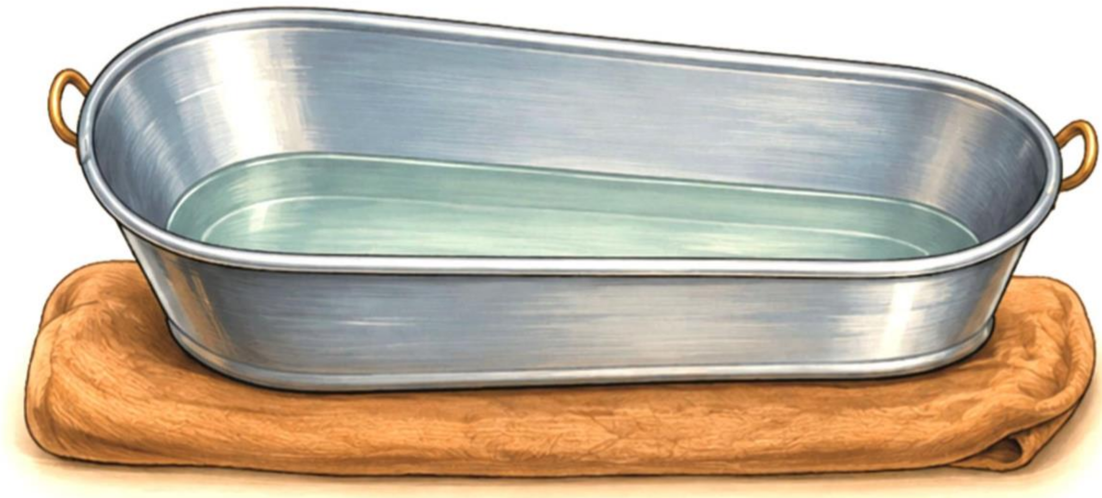

बीस मिनट के पश्चात् (अथवा जब तक पानी रोक सकें) शौच को चले जावें और मामूली से कुछ अधिक समय मल त्यागने में लगावें क्योंकि आँतों में गया हुआ पानी मल को साथ लेकर बाहर आवेगा। अतः इसमें कुछ अधिक समय लगेगा। शौच से लौटकर हाथ मुँह धोकर लगभग आधा घंटा लेटकर आतों को आराम देवें। बस वस्ती कर्म हो चुका इसके पश्चात् आप अपना कार्य कर सकते हैं। स्नान, भोजन सब कुछ कर सकते हैं। योगी लोग इस क्रिया को बिना किसी यन्त्र के नाड़ी दबाकर कर लेते हैं।

(4) कटि स्नान अथवा कोनी साहब का हिप बाथ

बाथ लेने के टब जिसकी तस्वीर यहाँ दी है बाज़ार में बिकते हैं। ऐसा टब न मिले तो साधारण लम्बा टब लिया जा सकता है। वह भी न हो तो मिट्टी की नाद अथवा बड़े गहरे तसले से काम ले सकते हैं। जिस प्रकार तस्वीर में दिखाया गया है रोगी नंगा होकर बैठ जावे। टब में जल पूर्व से इतना भरा जावे कि इस प्रकार पैर बाहर निकाल कर बैठने में पानी नाभी के पास तक रहे। नाभी से कुछ ऊपर पेट तक आ जावे तो भी कोई हानि नहीं पर फेफड़े, दिल, इत्यादि पानी से पृथक रहें। घुटने और पैर पानी से बाहर रहेंगे। बाहर पैर रखने को दो ईंटें अथवा छोटी तिपाई रख लें।

एक मोटा मुलायम कपड़ा पानी में पड़ा रहे। उससे पानी के भीतर ही भीतर पेडू को बाईं ओर से प्रारम्भ करके गोलाई में ऊपर से नीचे को रगड़े। रगड़ न तो इतनी हल्की हो कि कुछ प्रभाव ही न हो न इतनी तेज हो कि खाल दुखने लगे। जितने समय का कटि स्नान करना है बिना रुके हुये बराबर रगड़ते रहें। समय समाप्त होने पर रोगी तुरन्त उठ बैठे और पहले से पृथक रखे हुये सूखे तौलिया (अंगोछा) से भीगे भाग को खूब पोंछ कर सुखा लें फिर वस्त्र पहिन कर शरीर पर पसीना लाने अथवा गर्म करने का यत्न करें। बलवान रोगी व्यायाम करके, दौड़ कर, तेज़ भ्रमण करके, चक्की चला कर, मुग्दर घुमाकर शरीर को गर्म कर सकते हैं। निर्बल अपनी शक्ति के

अनुसार चल कर ऐसा कर सकते हैं। बहुत ही निर्बल रोगी गर्म कपड़े तथा रुई के कपड़े पहिन व ओढ़ कर पलंग पर लेट कर अपने को गर्म कर लें। विशेषतया भीगा भाग गर्म हो जाने पर कटि स्नान की क्रिया समाप्त समझें। जिनके शरीर में शीघ्र गर्मी नहीं आती उनके पेडू पर गर्म कपड़ा लपेट कर गर्मी लावें। यह क्रिया कमरे में द्वार बंद करके पर रोशनदान और खिड़की खुली रख कर करनी चाहिये तथा कपड़े पहिनने के पश्चात् किवाड़ खोलना चाहिये।

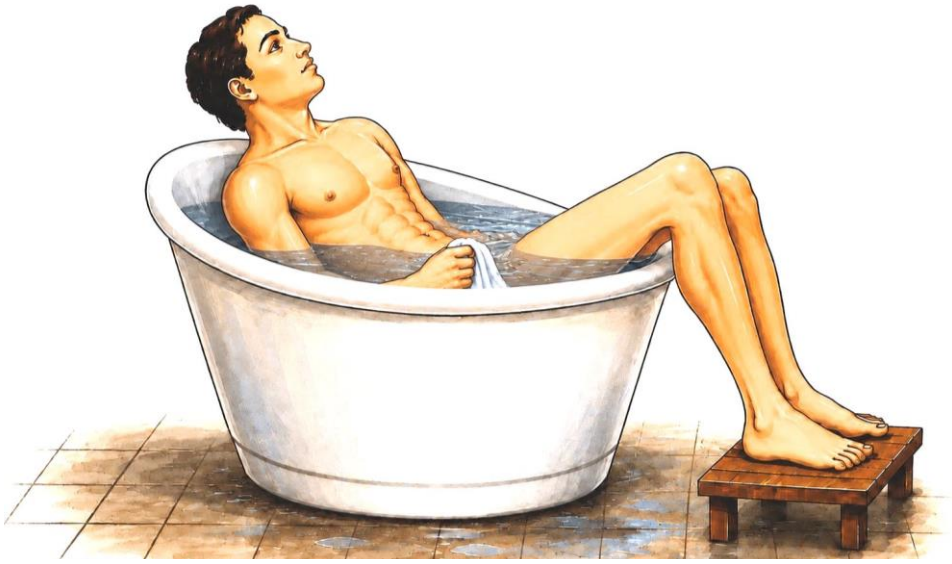

सर्दी की ऋतु में ऊपर से एक कम्बल इस प्रकार ओढ़ा जाता है कि टब के पास सिरहाने की ओर एक कुर्सी रख दें; कम्बल का एक सिरा पैरों से चौकी (अथवा तिपाई जिन पर पैर रखे हों) के ऊपर दवा दें और दूसरा कुर्सी पर डाल दें जो इधर उधर टब के बाहर लटकता रहे।

यह स्नान 5 मिनट से लेकर 30 मिनट तक रोग व रोगी के अनुसार किया जाता है। निर्बल रोगी के लिये पेडू मलने का काम दूसरा आदमी कर सकता है। पानी खूब ठण्डा अधिक लाभकारी है पर आरम्भ में कुयें के ताज़े पानी से प्रारम्भ करें और धीरे धीरे सहने योग्य ठण्डा पानी लें। बहुत निर्बल रोगी जो कुयें के पानी में ठंड अनुभव करे प्रारम्भ में थोड़ा गर्म पानी मिला लें।

(5) उपस्थित स्नान अथवा नाड़ी स्नान – टब को पानी से ऊपर तक भर दें और ऊपर बीच में एक तख्ता रख दें। अब रोगी नंगा होकर तख्ते पर बैठ जावे और पैर पृथ्वी पर रखे। अण्ड कोष व लिंग पानी को छूते रहें। तब मुलायम कपड़े को पानी से भिगो कर दोनों ओर से रांग के जोड़ों तथा अण्डकोष के नीचे सीवन को मलें। कपड़े से बार 2 पानी उठाते जावें। 10 मिनट से प्रारम्भ करके यह स्नान भी 30 मिनट तक किया जा सकता है। स्नान समाप्त होने पर खड़े होकर पहले सूखे तौलिया से भीगे अंगों को पोंछ डाले फिर वस्त्र पहिन कर शरीर में गर्मी लाने को व्यायाम करें। बहुत निर्बल रोगी गर्म तथा रुई के कपड़े ओढ़ कर लेट सकते हैं, तथा निर्बल रोगी अपनी शक्ति के अनुसार परिश्रम करके शरीर में गर्मी लावें। यह उपस्थित स्नान है। मिस्टर कोहनी ने उपस्थित स्नान में लिंग की अगली खाल को मलने को लिखा है पर हमारे अनुभव में यह ढंग कभी कभी कष्ट देने वाला सिद्ध होता है तथा यह कठिन भी है। जो लाभ उससे होता है वह इस प्रकार भी प्राप्त हो जाता है। वैसा सम्भव न होने पर कोहनी साहब ने हमारे इस ढंग के करने को भी लिखा है। हमारी सम्मति में यही नाड़ी स्नान उत्तम है।

(6) शीतोष्ण स्नान – दो टब पास पास रखें। एक में सहने योग्य गर्म पानी और दूसरे में ठण्डा पानी इसी अन्दाज़ से भर दें कि इसी प्रकार पैर निकाल कर बैठने पर पानी नाभि के ऊपर आ जावे। फिर उसी प्रकार नंगे होकर और बन्द कमरे में रोगी पहले गर्म पानी में 4-5 मि० बैठे; उसके पश्चात् उठकर तुरन्त दूसरे (ठंडे पानी के) टब में 1 मिनट के लिये बैठे; तब फिर उठ कर गर्म पानी वाले टब में 4-5 मि० बैठे। इसी प्रकार बारी बारी से गर्म और ठंडे पानी में बैठने के पश्चात् शरीर पोंछ कर जाड़े में गर्म कपड़े और गर्मी में साधारण कपड़े पहिन कर शक्ति के अनुसार शरीर को गर्म करने का व्यायाम करे। निर्बल तथा बहुत निर्बल रोगी ओढ़ कर लेटें। स्नान

गर्म पानी से प्रारम्भ करके ठंडे पानी पर समाप्त करना चाहिये। यह स्नान भी 10 मिनट से लेकर 30 मिनट तक रोग तथा रोगी के अनुसार किया जाता है।

(7) **बल वर्धक स्नान** – नंगे होकर शरीर को हाथों से सूखा मलें। 4-5 मिनट मलने के पश्चात् साधारण तौर पर ठंडे पानी से स्नान प्रारम्भ करें और शरीर को मलते जावें। 2-3 मिनट के पश्चात् स्नान रोक कर शीघ्रता से सारे शरीर पर तिली अथवा सरसों के तेल की मालिश करें। उसके पश्चात् फिर भली प्रकार स्नान करके शरीर को सूखे तौलिया से पोंछ डाले।

(8) **लिंग स्नान** – वाटर वर्क्स के नल से अथवा किसी बाल्टे में ठंडा पानी भर कर उसमें नल की ब्रास काक लगा कर या किसी गड़वा से धार बाँध कर 5 से लेकर 15 मि० तक लिंग के ऊपर पानी डालना हमारी विधि में लिंग स्नान है। मिस्टर कोहनी का लिंग स्नान दूसरा है। पानी जितना ठंडा हो उतना ही उत्तम है पर ऐसा न हो कि 5 मिनट तक उसकी ठंड से रोगी कांपने लगे। पानी डालने के पश्चात् कपड़े पहिन कर रोगी कुछ देर भ्रमण करे अथवा ओढ़ कर लेटे ताकि ठंड वाला अंग व भाग गर्म हो जावे।

(9) **धार स्नान** – नदी की धार जिधर से आ रही है उस ओर मुख करके ऐसे स्थान पर बैठना अथवा खड़ा होना कि नदी का पानी हमारी नाभि तक, पेडू तक अथवा हृदय व सीने तक आवे। इसे धार स्नान कहते हैं। किस रोग में कहाँ तक पानी आने की आवश्यकता है यह रोग चिकित्सा में अपने अपने स्थान पर बताया जावेगा। धार जितनी तीव्र होगी उतना ही शीघ्र लाभ होगा। ऋषिकेष में गंगा की धार बहुत लाभदायक है। गर्मी और जाड़े दोनों ऋतुये वहाँ रहने को बड़ी उत्तम है; पर वर्षा ऋतु में रहना ठीक नहीं है। यह भी ध्यान रखें कि गर्मी में तो रात्रि को भी स्नान किया जा सकता है पर जाड़े में केवल उसी समय करना चाहिये जब धूप तेज़ हो जावे। प्रातः

काल सूर्योदय के पूर्व जाड़े की ऋतु में रोगी अवस्था में स्नान न करना चाहिये।

(10) संगम स्नान – जहाँ दो पहाड़ी नदी मिलती हैं वहाँ ऐसे स्थान पर बैठकर अथवा खड़े होकर नदी की धार लेना कि पानी हृदय को स्पर्श करता हो संगम स्नान कहलाता है। प्रयाग में त्रिवेणी जी पर इसके लिये उपयुक्त स्थान है। पानी ठीक स्थान तक रखने को नदी में कोई पत्थर अथवा स्टूल प्रयोग किया जा सकता है।

(11) तरारा – गर्म पानी गडुये इत्यादि से धार बाँधकर किसी अङ्ग पर डालने को उस अङ्ग का तरारा कहते हैं। इसमें पानी डालने के पश्चात् पहले ठण्डे पानी से साफ कपड़ा भिगोकर और निचोड़ कर तरारा वाले स्थान को पोंछ देना चाहिये। उसके पश्चात् उस स्थान पर 15-20 मिनट के लिये कोई सूखा ऊनी कपड़ा लपेट देना चाहिये। फिर उस अङ्ग को खोल दें।

(12) गर्म पानी का सेक (Fomentation)– अंगीठी के ऊपर किसी बर्तन में पानी खौलने दें। जब खौल जावे तब उसमें साफ कपड़े के दो टुकड़े डाल दें, फिर चिमटे से एक कपड़े को निकालकर अंगौछे में रखकर ऐंठकर कपड़े को निचोड़ लें। दूषित अङ्ग को जिस पर सेंक करना है किसी गर्म कपड़े से ढक लें। तब इस निचोड़े हुए कपड़े को सहने योग्य गर्म गर्म दूषित अङ्ग पर रखकर सेंकें। पानी में पड़ा हुआ दूसरा टुकड़ा निचोड़ा हुआ तैयार रहे। जब पहिला कपड़ा ठण्डा हो जावे तो दूसरा गर्म टुकड़ा उसी स्थान पर रखदें और पहले टुकड़े को फिर उसी खौलते पानी में डाल दें। इसी प्रकार एक टुकड़े के ठण्डा होने पर दूसरा रखते जावें। अन्त को जब सेक समाप्त करें तो उस स्थान को एक भीगे कपड़े से पोंछ दें। यह कपड़े ठण्डे पानी में भिगोकर निचोड़ लिये जावें। इससे पोंछने के पश्चात् भी उस अङ्ग को कुछ देर गर्म कपड़े से ढका रखें। इसे गर्म पानी का सेक कहते हैं।

(13) धूप तथा वायु स्नान–जिस स्थान की वायु शुद्ध हो, धूप फैली हो अथवा सूर्य का उदय हो रहा हो शरीर के प्रत्येक अङ्ग को (यथा सम्भव) नंगे रखकर बैठना या खड़ा होना धूप तथा वायु स्नान कहलाता है। इससे रोग कृमि मरते हैं और पसीना आ जाने से विकार निकलते हैं; पर यह अपनी शक्ति और ऋतु के अनुसार करना चाहिये। न्यूनाधिक करने से कोई लाभ नहीं होता।

(14) भाप स्नान– बान के अथवा बैत के बुने पलंग पर नंगे बदन किसी बन्द कमरे में कम्बल ओढ़कर लेट जावें और पलंग के चारों ओर कपड़े डालकर ऐसा बना लिया जावे कि पानी की भाप बाहर न निकल जावे। तब पलंग के नीचे छोटी अंगीठी अथवा स्टोव पर किसी बर्तन में पानी भरकर, ढककर तथा गर्म करके पैरों और कमर से कुछ ऊपर पीठ के नीचे रखकर पानी के बर्तनों को कोई दूसरा व्यक्ति इतना खोल दे कि भाप शरीर में लगे जो पसीना ले आवे जलने न पावे। सिद्धान्त यह है कि शरीर पर भाप लगने से शरीर के भीतर के विकार पसीना रूप में बाहर निकलें। धूप में शीघ्र पसीना नहीं आता और गर्मी की ऋतु में अधिक देर धूप में रहने से घबड़ाहट भी होती है। पर भाप स्नान से गर्मी के दिनों में भी सारे शरीर पर पसीना आने से घबड़ाहट नहीं होती तथा जाड़े में जब धूप से घण्टों पसीना नहीं आता भाप से मिनटों में आ जाता है। इस कारण इसकी सहायता ली जाती है। यह ध्यान रहे कि पसीना आने से विकार निकलते हैं और रोग कम होता है पर निर्बलता अवश्य होती है। अतः इसे अपनी शक्ति के अनुसार रोग की तीव्रता को देखकर करना चाहिये। जोड़ों इत्यादि के तीव्र दर्दों में और खुजली इत्यादि रोगों में कभी कभी इसका रोज प्रयोग करना अच्छा है पर पुराने रोगों में महीने में एक दो बार कर लेना पर्याप्त है। बीच के दिनों में कटि स्नान इत्यादि करते रहें। यह विधि पूरे भाप स्नान की है। कभी कभी स्थानिक किसी एक अङ्ग का भी भाप स्नान किया जाता है

जिसमें अपनी बुद्धि से उस अङ्ग को भाप देने की विधि सोच लेनी चाहिये। जैसे दाँतों में दर्द है तो सिर पर कपड़ा ढाँककर बैठ जावे और भाप वाले बर्तन को उसके भीतर रखकर थोड़ा थोडा खोलते जावें और भाप मुँह में तथा दाँतों में लगने दें। हर प्रकार के भाप स्नान में पसीना पोंछने को कपड़ा ओटे हुये कपड़े के भीतर रख लें जिससे पसीना पोंछते जावें। पूरे शरीर के भाप स्नान के पश्चात् पसीना पोंछकर तुरन्त ठण्डे पानी में कटि स्नान करें और कटि-स्नान समाप्त होने पर एक दो लोटा ठण्डा पानी सिर और सारे शरीर पर शीघ्रता पूर्वक डालकर सूखे तौलिये से शरीर को खूब पोंछकर गर्म कपड़े पहिनकर और ओढ़कर लेट जावें और यदि किसी विशेष अङ्ग का भाप स्नान है तो उसे पसीना पोंछने के पश्चात् भीगे निचोड़े हुये कपड़े से पोंछकर सूखे कपड़े से ढक दें। गर्मी के बाद तुरन्त ठण्डे पानी में बैठने से न घबड़ावें इससे कोई हानि नहीं है। हाँ इस बात का ध्यान रखें कि जब तक पसीना आता रहे तब तक उसे पोंछते रहें। जब पसीना आना बन्द हो जावे तब कटि स्नान करें। भाप स्नान का समय उसके प्रयोग के साथ बताया जावेगा। उस समय के पश्चात् भाप के बर्तनों को हटा देना चाहिये और रोगी ओढ़े हुये लेटा अथवा बैठा रहे। ओढ़ने के लिये कम्बल अधिक उपयोगी है न होने पर रजाई से भी काम लिया जा सकता है।

(15) गंगा स्नान:– गंगा किनारे किसी नगर व ग्राम में हवादार मकान में रहकर प्रातःकाल गर्मी में चार बजे और सर्दी में अपने रोग की अवस्था अनुसार जब शीघ्र से शीघ्र उठ सकें उठकर भ्रमण को निकल जाना चाहिये। फिर मैदान में शौच जाकर मुँह हाथ धोकर गङ्गा में स्नान करें। तैरने की शक्ति हो तो तैरें भी। विशेष रोगों में ऐसे स्थान पर बैठकर जहाँ नाभि तक पानी आवे पेट को मला जाता है। मुँह उस ओर रहे जिधर से धार आती हो। ऐसे रोगियों को गङ्गा जल पान करना चाहिये और उसी से भोजन इत्यादि बनाना चाहिये। चर्म रोगों में अथवा दुबलेपन को दूर करने को गंगा किनारे

की मिट्टी सारे शरीर पर मलकर स्नान करना चाहिये। अनेकों कठिन रोगी जो बड़ी बड़ी औषधि प्रयोग करके निराश हो चुके थे इस प्रकार गंगा स्नान और यज्ञ करके तथा वैज्ञानिक सात्विक भोजन करके आरोग्य हो चुके हैं। जिनको भागीरथी गंगा स्नान का सौभाग्य प्राप्त न हो सके वह किसी अन्य नदी के किनारे व समुद्र के किनारे इसी विधि से स्नान करके परीक्षा कर सकते हैं पर हमने जो अनुभव किये हैं वह भागीरथी गंगा के ही हैं।

(16) पानी व मिट्टी की पट्टी

(क) पानी की पट्टी:–एक साफ कपड़े की आठ दस तह करके उसको इतना लम्बा चौड़ा रखा जावे कि रोगी की नाभि के नीचे पेडू तक आ जावे। उस कपड़े को ठण्डे पानी में भिगोकर हल्के हाथ से ऐसा निचोड़ लें कि पानी टपकता न रहे पर कपड़ा खूब भीगा रहे। इस पट्टी को पेडू पर रखकर ऊपर से कोई ऊनी कपड़ा मफलर इत्यादि लपेटकर सेफ्टीपिन लगा दें और रोगी कम्बल ओढ़कर गर्मी की ऋतु हो तो कम्बल पैरों पर कमर तक डालकर लेट जावे। तीस मिनट के पश्चात् उस पट्टी को खोल दें और जिस स्थान पर पट्टी रखी थी उसे दूसरे भीगे कपड़े से पोंछकर सूखे कपड़े से पोंछ दें। यह पानी की पट्टी कहलाती है।

(ख) मिट्टी की पट्टी :– चिकनी मिट्टी या बहुत थोड़ी रेत मिली गंगा के कछार की मिट्टी जो बहुत स्वच्छ स्थान से कुछ गहराई से ली जावे। मिट्टी को अच्छी तरह साफ करके बारीक पीस लें तब किसी स्वच्छ बर्तन में उसमें गङ्गा जल या अन्य शुद्ध जल चांदी, सोने के चम्मच अथवा अण्ड की लकड़ी से मिलाकर लेई सी बना लें मिट्टी कड़ी न रहे और बहुत गीली भी न रहे फिर उसी चम्मच या लकड़ी से मिट्टी उठाकर एक मोटे कपड़े के टुकड़े पर रखें और ठीक करके आध इञ्च से एक इञ्च तक मोटी तह बनाकर पेडू पर रखने योग्य बना लें। उस कपड़े को उठाकर मिट्टी की ओर से पेडू पर रखदें फिर उस पर एक सूती कपड़ा रखकर उसे गर्म कपड़े से

लपेट दें। गर्मी में केवल सूती कपड़े से ही लपेट दें। 45 मिनट के पश्चात् अथवा जब मिट्टी गर्म हो जावे खोलकर उस स्थान को भीगे कपड़े से पोंछ दें। यह मिट्टी की पट्टी कहलाती है। यह पट्टियां खाली पेट पर बाँधी जाती हैं। भोजन करने के पश्चात् जब तक वह पच न जावे नही बांधना चाहिये।

(ग) मिट्टी के रोग नाशक प्रभाव के सम्बन्ध में प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकों में एक घटना इस प्रकार लिखी मिलती है कि एक सांप काटे मनुष्य के अनेकों उपचार हुये पर वह अच्छा न हो सका और सबने उसे मुर्दा समझ लिया। तब एक प्राकृतिक चिकित्सक ने पृथ्वी पर एक लम्बा गड्ढा खुदवाया और उसमें गीली मिट्टी की एक सतह बिछाकर उस आदमी को लिटा दिया। साथ ही अगल बगल में और ऊपर गीली मिट्टी इस प्रकार रख दी कि उस आदमी का सिर और चेहरा तो बाहर निकला रहा पर सारा शरीर गीली मिट्टी के सम्पर्क में आ गया और भीतर ही गड़ा रहा इस अवस्था में लगभग 24 घण्टे तक रहने के पश्चात् उस मुर्दा ने अपने नेत्र खोल दिये। हमें अपने अनुभव में कभी किसी ऐसे रोगी की ऐसी चिकित्सा का अवसर नहीं मिला अतः हम इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते। फिर भी जिस अवस्था में रोगी की यह चिकित्सा की गई थी वैसे रोगी की ऐसी चिकित्सा करने में कोई हानि प्रतीत नहीं होती और सफलता मिल गई तो लाभ आश्चर्यजनक है। एक प्राकृतिक चिकित्सक ने इसी प्रकार के गड्ढे के द्वारा सारे शरीर में दर्द रहने वाले गठिया के रोगी को अच्छा किया था। और एक ने अपनी सम्मति लिखी है कि जब कभी कोई ऐसा रोग मिले जिसकी सच्ची अवस्था न मालूम होती हो या कमजोरी या किसी अन्य कारण से कोई नहान इत्यादि न दिया जा सके तो पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी देने लग जाना चाहिये और शक्ति के अनुसार पट्टी के पश्चात् एनीमा या कटि स्नान भी देना चाहिये।

गर्भिणी स्त्री के जब बच्चा होते समय अधिक कष्ट हो और बालक बाहर न निकले तब पेडू पर थोड़ी थोड़ी देर के बाद मिट्टी की पट्टी बाँधने से बहुत आराम मिलता है और बालक सुगमता से निकल आता है। मिट्टी की पट्टी असमय के गर्भपात को या तो रोक देती है यदि रोकती नहीं तो स्त्री की अवस्था भयानक होने से बचाती है। मिट्टी की पट्टी का असली लाभ ठंडी मिट्टी से ही मिलता है पर कभी कभी जैसे निमोनिया में अथवा प्रसूता में स्त्री के पेट में दर्द इत्यादि के समय गर्म मिट्टी से भी काम लिया जा सकता है। प्रसूता स्त्री को हर प्रकार की ठण्ड से बचाना ही आयुर्वेद का मत है। ऐसी अवस्था में यदि वस्ती कर्म की आवश्यकता पड़े तो वह भी गर्म पानी से ही देना चाहिये। उसे शुद्ध वायु तो मिलना ही चाहिये पर हवा के झोके से बचाना चाहिये।

(घ) कपड़े की गीली पट्टी:–किसी अङ्ग से कट जाने, कुचल जाने, चोट लग जाने, गिर जाने इत्यादि पर ठण्डे पानी में कपड़ा भिगोकर बांधने को कपड़े की गीली पट्टी कहते हैं।

(ङ) रीढ़ की गीली पट्टी:–तख्त पर या भूमि पर चटाई या कम्बल बिछाकर पहले एक तकिया सिरहाने रखें फिर इस तकिये से समकोण बनाती हुई कपड़े की एक ऐसी पट्टी खूब ठण्डे पानी में भिगोकर और निचोड़कर रखें जो कम से कम आध या एक चौथाई इञ्च मोटी एक फुट चौड़ी और दो फुट लम्बी हो। फिर उस पर इस तरह आराम के साथ लेट जावें कि गर्दन के नीचे से रीढ़ का सारा हिस्सा गीली पट्टी पर अच्छी तरह पड़े। यदि तकिया के ऊँचा रहने से गर्दन के ठीक नीचे का हिस्सा गीली पट्टी से कुछ ऊपर रह जावे तो उस जगह पट्टी के नीचे एक कागज का गोला लपेटकर या सूखा कपड़ा लपेटकर रख देवें। जिससे गीली पट्टी उठकर शरीर के उस हिस्से के सम्पर्क में आ जावे। साथ ही एक पतला कपड़ा पानी से भिगोकर तथा निचोड़ कर तैयार रक्खें। पट्टी पर लेट जाने के पश्चात् इस कपड़े को

सीने और पेट पर अच्छी तरह फैला दीजिये इसके पश्चात् ऊपर एक गर्म चादर या कम्बल ओढ़ लीजिये। चेहरा खुला रहे। दो तीन मिनट के बाद ही आराम मालूम होने लगेगा। आंख, कान, नाक मुँह में ठण्डक मालूम होगी और नींद आने लगेगी। यदि नींद आ जावे तो सो जावे। नींद खुलने पर और यदि नींद न आवे तो २० मिनट के पश्चात् उठकर पहले सिर को ठण्डे पानी से धोकर अच्छी तरह पोंछ लेवें और फिर गीले कपड़े से सारे शरीर को अच्छी तरह पोंछकर कपड़े पहन लेवें ! साफ खुली जगह में या गर्मी में ऐसे स्थान में जहां पंखा चल रहा हो इस पट्टी को दोपहर के भोजन के 1-2 घण्टे के पश्चात लेना चाहिये। यह पट्टी क्योंकि नाड़ी संस्थान (Nervous System) को ठीक करती और बल देती है, अतः उपस्थ स्नान का बदल हो सकती है।

(च) सारे शरीर की गीली पट्टी – जमीन पर, चौकी पर अथवा तने हुये पलंग पर कम्बल बिछाये उसके ऊपर ठंडे पानी में चादर भिगो कर और इतनी निचोड़ कर कि पानी टपकता न रहे पर चादर काफी गीली हो बिछा दें। चादर किसी मोटे कपड़े की हो, बारीक न हो। उसके ऊपर एक पतले कपड़े की चादर ठंडे पानी में भिगो निचोड़ कर इतनी चौड़ी फैलाइये जो रोगी के बगल से निकल कर पीठ के नीचे से होती हुई उसके सीने और पेट को ढक ले। अब रोगी को नंगा करके पलंग पर पीठ के बल ऐसे लिटा दीजिये कि उसका सिर इन गीले कपड़ों से बचा रहे और सारा शरीर गीले कपड़े पर रहे। अब शीघ्रतापूर्वक पहले बारीक कपड़े की चादर को सीने और पेट पर लपेट दीजिये। हाथ बाहर रहें जिनको बगल से नीचे फैला दें इसके पश्चात बड़ी चादर को पहले एक ओर से फिर दूसरी ओर से ऐसे लपेट दीजिये कि सारा शरीर गीले कपड़े से ढक जावे। पैरों से बाहर निकला हुआ कपड़ा लौट कर पैरों पर अच्छी तरह लपेट दीजिये। अब कम्बल को पहले एक ओर से फिर दूसरी ओर से ऊपर लाकर इस प्रकार लपेट दीजिये कि

गर्दन से पैरों तक सारा शरीर उसके भीतर आ जावे। कम्बल का जो भाग पैरों के आगे निकला हुआ है उसे भी मोड़ कर लपेट दीजिये। आवश्यकता हो तो स्थान २ पर सेफ्टीपिन लगा कर बन्द कर दीजिये गीला कपड़ा तथा कम्बल ढीला न रहना चाहिये किन्तु भली प्रकार शरीर को लपेटे रखें। इतना कस कर भी न लपेटें कि कष्ट होने लगे। पहले तो इस पट्टी से रोगी को ठण्ड प्रतीत होगी किन्तु दो तीन मिनट में ही आराम प्रतीत होने लगेगा और कम्बल के कारण शरीर में गर्मी फैलने लगेगी। इस अवस्था में रोगी को लगभग आधा घण्टे अथवा कुछ अधिक देर रहने दीजिये। आशा है कि रोगी को पसीना आ जावेगा अथवा गर्मी मालूम होने लगेगी। यदि रोगी इस अवस्था में सो जाये तो उसे सोने दीजिये। नींद खुलने पर या समय हो जाने पर सब कपड़े उतार दीजिये और साधारण रोगी को सिर से आरम्भ करके सारे शरीर का स्नान जल्दी से करा दीजिये। और फिर कपड़े पहना कर गर्म कपड़ों में लिटा दीजिये यदि फिर पसीना आवे तो भीगे हुये निचोड़े कपड़े से पोंछना चाहिये। जो रोगी बहुत निर्बल हैं उनको स्नान न करा कर केवल गीले कपड़े से सारे शरीर को पोंछ दीजिये और फिर कपड़े पहिना कर लिटा दीजिये। यह पट्टी बहुत तेज ज्वर को कम करती है। यदि फिर ज्वर बढ़ने लगे तो तीन-चार घण्टे बाद फिर पट्टी दी जा सकती है।

जुकाम के आरम्भ होते ही दो दिन इस प्रकार की पट्टी देने से बड़ा लाभ होता है पर इस अवस्था में पट्टी इतनी देर रहे कि पसीना आ जावे। पट्टी लपेटे हुये ही रोगी को गर्म पानी में नीबू अथवा संतरे का रस देने से विकार निकलने में सहायता मिलती है।

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जुकाम अथवा अधिक से अधिक 103 डिग्री तक के ज्वर में तो पसीना निकालने का प्रयत्न करना चाहिये इससे अधिक बुखार में केवल टेम्परेचर कम होने पर पट्टी खोल देना चाहिये। 104 डिग्री से अधिक ज्वर पे कम्बल लपेटने की आवश्यकता नहीं केवल

चादर लपेट कर 10 मिनट के बाद पट्टी खोल देना चाहिये। इसी प्रकार यदि आध घण्टे तक पड़े रहने पर भी रोगी के शरीर में गर्मी न मालूम हो तो बोतलों में गर्म पानी भर कर बगलों और टाँगों के पास रख देना चाहिये और एक दो कम्बल और ओढ़ा देना चाहिये। बोतल न हो तो ईंट आग में गर्म करके कपड़े में लपेट कर रख देना चाहिये। यह पट्टी करते समय कमरे के द्वार खुले रहना चाहिये पर जिस समय रोगी को नंगा करे अथवा स्नान करावें उस समय द्वार बन्द कर लेना चाहिये। लिटा देने के बाद द्वार खोल देना चाहिये। खुजली, चेचक, कोढ़, दमा इत्यादि में भी इससे बड़ा लाभ होता है। एक बार के प्रयोग किये कपड़े दूसरी बार तब प्रयोग करना चाहिये जब कि वह खूब अच्छी तरह खौलते पानी में साबुन से धो लिये जावें। केवल कम्बल अच्छी तरह सुखा कर प्रयोग किया जा सकता है।

(17) पैरों का गर्म स्नान – दो बाल्टी या ऐसे बर्तन लें जिनमें टखनों से कुछ ऊपर तक पैर आ सकें इन बर्तनों में पहले से ऐसा गर्म पानी रखना चाहिये जिसे रोगी सहन कर सके। अब रोगी इतनी ऊँचाई पर कुर्सी या पलंग पर बैठ कर पैर बाल्टियों में डाल दे जिसमें उसे कोई कष्ट न हो। 10-15 मिनट अथवा 20 मिनट इसी प्रकार बैठा रहे। पानी जब कुछ ठण्डा हो जावे तो उसमें और गर्म पानी मिला देना चाहिये। पूरे समय पानी अधिक से अधिक ऐसा गर्म हो जो कि सहा जा सके। इस स्नान के समय चेहरे को छोड़ कर रोगी का सारा शरीर ढका रहना चाहिये। स्नान के पश्चात पैरों को ठण्डे पानी में भिगोये कपड़े से भली प्रकार पोंछ देना चाहिये। उंगलियों के बीच का पानी भी पोंछ देना चाहिये। यदि बदन में पसीना आ गया हो तो उसे भी पोंछ देना चाहिये। स्नान के समय एक कम्बल ऊपर से ऐसा डाल देना चाहिये कि जिससे पैर और पानी का बर्तन सब ढका रहे। यह स्नान जुकाम, पुराने बिगड़े जुकाम, पुराने बुखार, मलेरिया बुखार, नींद न

आने आदि रोगों में बड़ा प्रभावशाली है। जब शरीर में दर्द हो, पैर ठण्डे रहते हों, बहुत कमजोरी मालूम होती हो तब भी इसका प्रभाव बड़ा अच्छा होता है। सोने से पूर्व अथवा प्रातःकाल यह स्नान विशेष उपयोगी है वैसे अन्य समय में भी लिया जा सकता है। इस नहान से शरीर की गर्मी खिंच कर रक्त संचार सारे शरीर में हो जाता है। जाड़े बुखार में जिस समय जाड़ा प्रारम्भ हो उस समय भी इसके लेने से लाभ होता है। जिन रोगियों के पैर अधिक ठण्डे रहते हैं और निर्बलता के कारण सर्द ऋतु में कटि स्नान के समय पैरों में बहुत ठण्ड लगती रहती है, उनको कटि स्नान के साथ भी इसका प्रयोग लाभदायक है इस स्नान के समय निर्बल रोगियों के सिर में कभी चक्कर आने लगता है ऐसा होने के लक्षण प्रतीत होते ही सिर पर एक मोटा ठंडा गीला कपड़ा लपेट देना चाहिये। कपड़ा काफी गीला हो पर पानी टपके नहीं।

(18) साधारण स्नान– स्वस्थ अवस्था में और रोग से मुक्त होने पर साधारण स्नान को सभी लोग जानते हैं पर इसमें इन बातों पर ध्यान रखना चाहिये। (क) इस स्नान के लिये सर्वदा कूप का ताजा जल अथवा उसी दर्जे की गर्मी का पानी हर ऋतु में सर्वश्रेष्ठ होता है। गर्म पानी का प्रयोग कभी निर्बलता में आवश्यक हो सकता है पर ऐसे अवसर बहुत कम होते हैं। यथा सम्भव यदि गर्म पानी से स्नान किया जावे तब भी सिर पर गर्म पानी न डालना चाहिये। सिर ठण्डे पानी से ही धोना चाहिये। ठण्डे पानी का स्नान सर्वदा सिर से प्रारम्भ करना चाहिये अर्थात पहले सिर पर पानी डाल कर तत्पश्चात अन्य अंगों पर डालना चाहिये। ठण्डे पानी का स्नान निर्भयतापूर्वक खुले स्थान में भी किया जा सकता है पर गर्म पानी से स्नान सर्वदा बन्द कमरे अर्थात स्नानागार में करना चाहिये। स्नान के समय सारे शरीर को खूब मलना चाहिये जिससे प्रत्येक रोम छिद्र खुल जावे और रक्त

संचार होकर शरीर लाल पड़ जावे। कपड़े से भी मलना चाहिये पर हाथ से अवश्य मलना चाहिये।

रोग अवस्था में कभी २ उपरोक्त स्नान वर्जित समझा जाता है विशेषतया मियादी बुखार (Typhoid) इत्यादि में उस समय भी स्नान आवश्यक होता है। उसे इस प्रकार करना चाहिये।

बन्द कमरे में गर्म पानी में कपड़ा अथवा स्पंज भिगो कर शरीर के एक भाग जैसे एक हाथ को कपड़े से बाहर निकाल इस भीगे कपड़े अथवा स्पंज से मलें और उसका मैल छुटा दें फिर उसको सूखे कपड़े से पोंछ कर कम्बल से ढक दें और दूसरा हाथ निकाल कर इसी प्रकार उसका भी स्नान करें। इस तरह सारे शरीर के अंगों को बारी २ से धोकर गर्म कपड़े से ढकते जावें। कुछ अंगों के मलने पर शरीर के शेष मले हुये अंग नंगे हो सकते हैं। उससे डरने की बात नहीं है पर यथासम्भव शीघ्र ही उनको फिर ढक देना चाहिये।

(19) जलनेती – प्रातःकाल शौच इत्यादि से निवृत्त हो हाथ मुँह धोने के समय, सूर्योदय से पूर्व जलनेती का समय है। एक छोटे गडुवे में पानी भरकर उसकी टोंटी नाक के एक नथुने में लगाकर दूसरी ओर को सिर जरा झुकाकर और श्वांस लेने के लिये मुँह खोलकर नथुने में पानी इस प्रकार डालें कि पानी की धार दूसरे नथुने से गिरने लगे। इस प्रकार लगभग आधा सेर पानी एक नथुने में और इतना ही दूसरे नथुने में डालकर गिरा दे। इस क्रिया से नेत्र ज्योति बढ़ती है और नित्य के करने वालों को कभी जुकाम नहीं होता। जिनको बहुत जुकाम होता है उनको प्रारम्भ में एक दो बार जुकाम होकर फिर यह आदत बन्द हो जावेगी।

(20) इस पाठ के समाप्त करने से पूर्व इन क्रियाओं के सम्बन्ध में कुछ नियम जानना आवश्यक है।

क **पुराने रोगों की चिकित्सा में** और विशेषतया उन रोगियों की चिकित्सा में जिन्होंने अधिक विषैली औषधियों का प्रयोग किया है। स्नान से दबे हुये विकार उभरते हैं। उनको स्नान प्रथम कमी के साथ और कम समय लेना चाहिये। अर्थात पहले कुछ दिनों तक केवल एक समय और 5 मिनट स्नान देवें। बस्ती कर्म से और उपयुक्त भोजन से विकारों को निकालने का प्रयत्न करें। जब शरीर कुछ शुद्ध हो जावे तब स्नान की संख्या और समय बढ़ा देना चाहिये। पुराने रोगों में यह काम कम से कम एक मास में होता है।

ख **बहुत निर्बल रोगी** को प्रारम्भ में कोई स्नान न करा कर केवल मिट्टी की पट्टी और बस्ती कर्म से चिकित्सा प्रारम्भ करना चाहिये।

ग **यदि कभी इन स्नानों से** कोई हानि प्रतीत हो तो चिकित्सा से अश्रद्धा करने के स्थान में अपनी भूल की खोज करो क्योंकि यह सब क्रियायें इतनी वैज्ञानिक और हज़ारों बार की परीक्षा की हुई हैं जिनकी उपयोगिता पर कोई भी शंका करने की गुंजाइश नहीं है। इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि इस चिकित्सा से पुराने दबे हुये विकार उभर कर निकलते हैं। जैसे:— एक पुराने एक्जिमा के रोगी की चिकित्सा की गई जिसको एलोपैथिक इलाज से कष्ट बढ़कर काफी बेचैनी थी। उसकी यह बेचैनी दो तीन रोज़ में जाती रही। फिर साधारण अवस्था में 20-25 दिन तक स्नान होते रहे तब उसकी पुरानी दबी हुई बवासीर उमड़ आई जिसका दो तीन दिन कष्ट रहा। कोई भी क्रिया बन्द नहीं की गई केवल बवासीर पर मिट्टी का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया गया। दो तीन दिन में बवासीर का कष्ट सर्वदा के लिये समाप्त हो गया। इसी प्रकार दबे हुये विकार उभरा करते हैं उनसे घबड़ा कर चिकित्सा बन्द न करना चाहिये।

(21) आम के पत्तों की चाय—आम के कोमल पत्ते जो नये निकलते हैं ताजे मिलें तो ताजे लें अन्यथा ऐसे ही कोमल पत्ते छाया में सुखाकर रख लें। ताजे पत्ते 5-6 एक पाव पानी में औटावें जब आध पाव पानी रह जावे तो उसमें

पाव भर दूध और थोड़ी देसी शकर मिलाकर गर्म गर्म चाय के समान पीते हैं। यह आम के पत्तों की चाय है। किन्हीं रोगों में बिना दूध व मीठे के पी जाती है।

(22) किशमिश का पानी:–किशमिश धोकर साफ पानी में तीन चार घण्टे भिगो दें फिर एक चम्मच से उसको लौट पौट करके किशमिश को निकाल दें शेष रहा किशमिश का पानी कहलाता है। यह फलों के रस के स्थान में दिया जा सकता है। यह किशमिश ऐसा रोगी जिसे फलों के रस के अतिरिक्त और भोजन भी दिया जा सकता है खा सकता है। जो केवल रसा हार करता है उसको यह किशमिश कोई अन्य व्यक्ति खाले हर बार नई किशमिश भिगोना चाहिये। एक छटांक किशमिश तीन छटांक या 1 पाव पानी में भिगोई जा सकती है।

पाठ 2

रोगों की चिकित्सा

आशा है कि अब यह बात पाठकों की समझ में आ गई होगी कि जिस प्रकार वृक्ष की एक जड़ होती है और उससे अनेकों शाखायें और पत्ते इत्यादि होते हैं और जड़ को काट देने से शाखायें और पत्ते सब सूख जाते हैं। इसी प्रकार रोग रूपी वृक्ष की जड़ शरीर में विकारों का एकत्रित होना है और भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उसकी शाखा रूप हैं। चिकित्सा करने में हमारा दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि जहाँ हम रोग के असली कारण विकारों को निकालने की चेष्टा करें वहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के जो ऊपरी उपद्रव उत्पन्न होकर रोगी को कष्ट दे रहे हैं उनको ऐसे साधनों द्वारा शीघ्र से शीघ्र दूर करने का यत्न करे जो इन उपद्रवों को दूर करते हुये असली कारण विकारों को निकालने में बाधक न हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये।

1. पेट और शरीर के भीतर के विकार निकालना पेट की गर्मी को शांत करना और पाचन शक्ति को ठीक करना। यह काम एनीमा, उपवास, पेडू पर मिट्टी की पट्टी, भोजन में उचित हेर फेर और कटि स्नान से हो जाता है। पेट की गर्मी के दूर हो जाने और पाचन-शक्ति के ठीक हो जाने से रक्त ठीक अवस्था में हो जावेगा और नाड़ी संस्थान भी स्वास्थ्य हो जावेगा जिससे रोग दूर हो जावेगा।

2. नाड़ी संस्थान को जगाना और स्वास्थ्य करना। इसका प्रभाव पाचन-शक्ति पर पड़ता है और इसी से जीवन शक्ति जग कर रोग को दूर करती है। ऊपर के साधनों के अतिरिक्त रीढ़ की पट्टी और जल चिकित्सा के अन्य स्नान सोये हुये नाड़ी-संस्थान को फिर से जगाते हैं।

3. जलन, सूजन, दर्द जैसे ऊपरी कष्टों को कम करना। यह काम मिट्टी व कपड़े की गीली पट्टी, भाप स्नान, गर्म अथवा ठंडे सेंक, तरारा इत्यादि से हो जाता है।

नवीन रोगों में उपरोक्त साधनों से ही रोगी अवश्य स्वास्थ्य हो जाता है, पर जीर्ण रोगों में दो और बातों पर ध्यान देना होता है।

क. जीवन शक्ति को जगाना जिससे रोग की जीर्णता तीव्रता में बदल जाय और तीव्र लक्षण उत्पन्न होकर रोग दूर हो जाय। इसके लिये रोगी जानकार समझदार अथवा चिकित्सक पर पूर्ण विश्वास रखने वाला होना चाहिये। यदि ऐसा न हुआ तो जब पुराने रोग के दबे हुए कष्टकर लक्षण प्रगट होंगे तब रोगी घबड़ा कर प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़ कर आरोग्यता से दूर जा पड़ेगा। ऐसी अवस्था में ऊपरी उपायों के साथ साथ उचित व्यायाम, प्राणायाम, हवन यज्ञ और सूर्य की सहायता लेनी होती है और प्राकृतिक औषधि की सहायता अधिक सान्त्वना देती है।

ख. प्रसन्नता और मानसिक भावना भी पुराने रोगों के आरोग्य करने में एक साधन है। चिन्ता रहित होकर हर बात का शुभ परिणाम सोचना, ईश्वर की दया पर पूर्ण विश्वास रखना और यह सोचना कि हम धीरे धीरे अच्छे हो रहे हैं इसके साधन हैं। घर वालों को भी इस बात में रोगी की सहायता करनी होती है। रोगी से कभी चिन्ताजनक और निराशा की बात न करनी चाहिये। सर्वदा उसे प्रसन्न रखने का यत्न करना चाहिए।

1. नवीन रोगों की चिकित्सा विधि

क. जब तक रोग शांत न हो जावे अथवा पूर्ण शांत होने के निकट न पहुँच जावे पूरा उपवास करना चाहिए। उपवास में ठण्डे या गर्म जल में नीबू का रस दिया जा सकता है। निर्बल, बालक, वृद्ध को बहुत आवश्यकता होने

पर 24 घण्टे में दो तीन बार फलों का रस दिया जा सकता है अथवा संतरा, मोसम्मी या अनार के रस में पाँच-छः घण्टा भिगोई हुई किशमिश दी जा सकती है। बहुत दिन चलने वाले रोग में फलों का रस अथवा गाय का दूध फाड़ कर उसका पानी और किसी अवसर पर गाय का धारोष्ण दूध अथवा गाय का ताज़ा मठा भी दिया जा सकता है और कभी मुनक्का से भी कार्य लिया जा सकता है पर यथा सम्भव पूर्ण उपवास करने से रोग शीघ्र दूर होगा। प्लेग, हैजा, गर्दन तोड़ बुखार इत्यादि भयानक रोगों में उपवास परम आवश्यक है।

ख. यदि बहुत मात्रा में बहुत बार पहले दस्त न आते हों तो बस्ती कर्म गुनगुने पानी से प्रातः सायं करना चाहिये। दस्तों का रोग हो तब भी एक बार ठण्डे पानी से करके मलाशय को धो लेना चाहिये। पेचिश के दस्तों में गर्म पानी से बस्ती कर्म दिन में दो बार करना चाहिये।

ग. यदि पूर्ण उपवास किया गया है तो नवीन रोग दूर होने पर पहले रसाहार से भोजन आरम्भ करना चाहिये। दूसरे दिन रसाहार व फलाहार करें। दो दिन फलाहार करने के पश्चात एक समय रोटी तथा एक समय फल और जलपान में गाय का ताज़ा कच्चा दूध पीना चाहिये। दूध के साथ में मुनक्का, किशमिश, संतरा अथवा सेब या नाशपाती भी ले सकते हैं। इस प्रकार दो तीन दिन के पश्चात् साधारण भोजन पर आना चाहिये तथा रोग के पश्चात् इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कब्ज न होने पावे। यदि हो तो ताज़े पानी से बस्ती कर्म करना चाहिये।

घ. नवीन रोगों में प्रायः बस्ती कर्म और उपवास से ही काम चल जाता है। हाँ कभी कभी पानी व मिट्टी के उपचारों अथवा विकारों को न दबाने वाली किसी जड़ी बूटी व होम्योपैथिक औषधि की भी आवश्यकता पड़ सकती है।

(2) जीर्ण रोगों की चिकित्सा विधि

यह रोग दो प्रकार के होते हैं। प्रथम ऐसे कि रोग तो बहुत दिन का है पर रोगी खाता, पीता, चलता फिरता व काम काज करता है। जैसेः–दमा इत्यादि।

ऐसे रोगों का उपचार इस प्रकार करें।

(क) प्रथम तीन दिन पूरा अथवा सन्तरा इत्यादि का रस दो तीन बार लेते हुये उपवास।

(ख) यदि पूर्ण उपवास है तो तीन दिन के बाद दो दिन केवल रसाहार करें। फिर पन्द्रह दिन फलाहार करें और यदि उपवास के दिनों में रसाहार किया गया है तो उपवास के पश्चात् पहले दो दिन एक समय रसाहार और दो समय फलाहार करें। फिर पन्द्रह दिन फलाहार करें। फलों में सन्तरा, नीबू, मोसम्मी, अनार, सेब, नाशपाती, अनन्नाश, पतले रस का आम, अमरूद, लुकाट, शहतूत, पपीता, खरबूजा, इत्यादि लेना चाहिये। केला सिंघाड़ा इत्यादि भारी फल इन दिनों में न लेना चाहिये। एक समय में एक ही फल भर पेट लेना अच्छा है। पन्द्रह दिन में यदि रोग कुछ कमी पर आ गया हो तो धीरे धीरे अन्न का प्रयोग प्रारम्भ करें। यदि अभी रोग काबू में नहीं आया है तो फलों का क्रम चलने देना चाहिये। फलाहार के साथ किन्हीं रोगों में गाय या बकरी का दूध भी लिया जा सकता है; पर दूध कच्चा और ताजा हो। किन्हीं में मठा भी दे सकते हैं। वह भी गाय व बकरी का ताज़ा हो। जीर्ण रोगों में खाने का समय भी बहुत प्रातः नहीं नियत करना चाहिये। गर्मी में नौ बजे और जाड़े में ग्यारह बजे से पूर्व न खावें तो अच्छा है और सायंकाल को जाड़ों में पाँच बजे और गर्मी में साढ़े छः बजे के पश्चात् फिर कुछ न खावें।

किन्हीं रोगियों का फलाहार के समय मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है या कुछ पतले दस्त आने लगते हैं अथवा आँव आती है। चूँकि फलाहार दबे हुये

विकारों को उभारता है। यदि ऐसा हो तो विकारों को निकालने के लिये और अधिक सहायता देने के विचार से केवल नीबू व सन्तरा व अनार का रस ही कई दिन देना चाहिये। विकार निकलते समय कुछ निर्बलता होना आवश्यक है, पर प्रसन्न होना चाहिये कि बहुत समय के दबे विकार निकल रहे हैं। रसाहार के पश्चात् केवल फलों के मिलने व खाने में कुछ कठिनता जान पड़े तो सादी पकी भाजी दो चार दिन लेकर फलों का प्रयोग करें अथवा ताज़ा दूध व मठा लेवें।

(ग) उपवास व भोजन के साथ दूसरी क्रिया जो जीर्ण रोगों में करना है वह वस्ती कर्म है। पहले सप्ताह में दोनों समय गुनगुने पानी से बस्ती कर्म करना चाहिये, फिर दूसरे सप्ताह में आवश्यकतानुसार एक, दो बार गर्म व ताज़े पानी से करें (अर्थात यदि पुरानी आँव चैंप इत्यादि अब तक आ रही हो तो गर्म पानी से और दोनों ही समय जारी रक्खें और यदि अब चैंप वगैरह न आकर केवल मल आता हो तो एक बार कर दें और ठण्डे पानी का प्रयोग करे)। उसके पश्चात् तीन चार बार तीसरे दिन, फिर दो तीन बार चौथे दिन, फिर सप्ताह में एक बार रोग समाप्ति तक करते रहें।

(घ) बस्ती कर्म से पूर्व मिट्टी की पट्टी बाँधना हितकर है। साथ ही कटि-स्नान, नदी स्नान अथवा अन्य उपाय रोग के अनुसार करना चाहिये। किन्हीं अवस्थाओं में एनीमा और उपवास तथा भोजन सुधार से ही जीर्ण रोग भी दूर हो जाता है, केवल छूत के रोगों में और ऐसे रोगों में जिनमें जीवनी शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है उनमें हवन यज्ञ करना भी परमावश्यक होता है। वैसे प्रत्येक रोग में हवन यज्ञ करने से रोग का समय घट जाता है और रोगी के निकट रहने वाले लोग तथा पास पड़ोस के लोगों को भी लाभ होता है।

(ङ) ऐसे जीर्ण रोगों में जिनमें रोगी महीनों से पलंग पर पड़ा है और बहुत सी विषैली औषधियाँ प्रयोग कर चुका है, अथवा पलङ्ग पर नहीं भी पड़ा है

किन्तु विषैली औषधियाँ प्रयोग कर चुका है अथवा क्षय रोगी है, ऐसे रोगियों को प्रारम्भ में उपवास व फलाहार कराने से कभी गड़बड़ी होती है। अतः इनको पहले बस्ती कर्म, मिट्टी की पट्टी, हवन यज्ञ और किसी आयुर्वेदिक जड़ी बूटी व होम्योपैथिक औषधि से चिकित्सा प्रारम्भ करना चाहिये। औषधि में सबसे मुख्य ध्यान इस बात पर रखना चाहिये कि जो विषैली औषधियाँ खा चुका है उनका विष दूर किया जावे। कुछ समय पश्चात् कटि स्नान इत्यादि भी प्रारम्भ कर दें। जब रोगी में कुछ जान आ जावे तब बीच बीच में एक दो दिन का उपवास व कई कई दिन दूध व फल का भोजन देकर धीरे धीरे विकार उभार कर निकालने का प्रयत्न करना चाहिये और हवन यज्ञ से रोग कृमियों की संख्या कम करना चाहिये। ऐसे रोगों में शीघ्रता से काम नहीं चलता। धीरे धीरे लाभ होता है पर होता अवश्य है। जो रोगी इतना निर्बल है कि कटि स्नान भी नहीं कर सकता उसे पहले बस्ती कर्म तथा मिट्टी की पट्टी से ही काम लेना चाहिये। शक्ति आने पर कटि स्नान शुरू करना चाहिये।

जहाँ फल व सब्जी न मिल सके वहाँ उपवास के पश्चात् पतला मठा व गाय के दूध की लस्सी प्रयोग करना चाहिये और फिर धीरे धीरे गेहूँ की रोटी रूखी बिना दाल के खूब चबा चबा कर खावें और यथासम्भव बाहर से फल व सब्जी मंगाने का प्रयत्न करें।

(च) पुराने रोगों के दूर करने में धूप स्नान, वायु सेवन और कुछ व्यायाम की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः ऋतु अनुसार कुछ समय धूप और हवा में नंगे बदन बैठना चाहिये और व्यायाम के रूप में प्रातः सायं शक्ति अनुसार भ्रमण करना चाहिये। जो रोगी खाट पर पड़े हैं वह पहले पलंग पर पड़े पड़े शुद्ध वायु में (जिस स्थान पर हवन यज्ञ होता है वहाँ की वायु यज्ञ के समय तथा उसके एक दो घण्टे पश्चात् तक बहुत शुद्ध होती है) कुछ समय गहरी स्वाँस लेवें। जब खड़े होने की शक्ति आ जावे तब ताड़ासन

करें और जब चलने लगें तब शक्ति अनुसार प्रातः उषाकाल में भ्रमण को जावें। जब अधिक बल आ जावे तो और अधिक व्यायाम करें।

(छ) चाहे नवीन रोग हो चाहे पुराना, हर रोगी को प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठना चाहिये। रोग के बहाने प्रातः काल देर तक सोने से रोग और भी बढ़ता है। स्वास्थ्य अवस्था में भी हर व्यक्ति को वायु में जितना ओषजन अधिक मिलेगा उतना ही उसका रक्त शुद्ध रहेगा और उतनी ही जठराग्नि तीव्र होगी। रोगी को इन बातों की और भी आवश्यकता है। अतः उस अवस्था में उसे और भी अधिक ओषजन चाहिये, जो प्रातःकाल के भ्रमण से प्राप्त हो सकती है और यदि भ्रमण न भी हो सके तो जाग कर स्वच्छ वायु में बैठने से मिल सकती है।

पाठ 3

रोगों के नाम से उनकी चिकित्सा

प्रतिश्याय अथवा सर्दी जुकाम (नज़ला)

जब मलमूत्र, श्वाँस और पसीने के द्वारा शरीर के विकार ठीक ठीक नहीं निकल पाते तब प्रकृति उनके निकालने को कभी कभी नाक और गले की झिल्लियों से विकार निकालने को जुकाम व सर्दी करती है। अतः छींकें आती तथा नाक से पानी बहता व गले में कष्ट होता है और कफ निकलता है। यूनानी में नाक से पानी गिरने को जुकाम और जब वह पानी हलक व सीने पर गिरे तो नज़ला कहते हैं। अंग्रेजी में १-कोराइज़ा (Coryza) २-कोल्ड इन दी हेड (Cold in the head) ३-कटार (Catarrh) राइनाइसिट (Rhinitis) शब्द जुकाम या नजला के लिये प्रयोग होते हैं। आयुर्वेद में इसके लिये प्रतिश्याय कहते हैं जिसके अनेक भेद हैं। डाक्टर लोग ऐसे जुकाम को जिसमें कुछ ज्वर भी हो प्रायः इन्फ्ल्यून्ज़ा (Influenza) कहा करते हैं; पर प्राकृतिक चिकित्सा में इन नामों से चिकित्सा में कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि सबका कारण एक है। कुछ भी हो नीचे की चिकित्सा से सर्दी जुकाम ठीक हो जाता है। हाँ पुराने और बिगड़े हुये रोग में कुछ समय अधिक लगता है। यह याद रखना चाहिये कि जुकाम जहाँ ठीक समय पर चिकित्सा कर लेने से बड़ा सादा रोग है वहाँ गड़बड़ भोजन व चिकित्सा से बिगाड़ लेने पर यह रोग भयानक बन सकता है और इससे सबसे कठिन क्षय रोग हो सकता है। इसीलिये जुकाम के आरम्भ में ही इसे दबाने का नहीं वरन् उसके कारण को दूर करना चाहिये।

चिकित्सा–

(क) पहले तीन दिन का उपवास करें। इन दिनों में गर्म पानी में नीबू, सन्तरा, अथवा नारंगी का रस निचोड़ कर पी सकते हैं। यह विकार निकालने में सहायता देवेंगे पर ठण्डे पानी में न पीवें।

(ख) कम से कम एक बार अथवा दो बार नित्य प्रति गुन गुने पानी से बस्ती कर्म करें। साधारण जुकाम में इतनी चिकित्सा पर्याप्त है।

(ग) यदि शरीर में दर्द, ज्वर, सिर दर्द इत्यादि का कष्ट अधिक हो तो पहले ही भाप स्नान और उसके बाद तुरन्त ही कटि-स्नान करें। यह एक ही दिन करने की आवश्यकता है पर उपवास और बस्ती कर्म तीन दिन करें!

(घ) यदि तबियत में कुछ उलझन प्रतीत हो तो पैरों का गर्म स्नान करें।

(ङ) तीन दिन के पश्चात् चौथे दिन फलाहार करें और भूख लगने पर पाँचवें दिन साधारण भोजन करें। यदि भूख न खुली हो तो एक दो दिन और फलाहार व बस्ती कर्म करें। फल प्राप्त न हों तो तरकारी भाजी खावें अथवा भाजी का रसा पीवें।

(च) यदि आरम्भ से ही प्राकृतिक चिकित्सा की गई है तो न तो जुकाम बिगड़ने पावेगा और न देर तक खांसी चलेगी! पर यदि किसी अन्य उपचार से बिगड़कर खांसी हो चुकी है तब इसके उपचार के साथ साथ बस्ती कर्म से पूर्व मिट्टी की पट्टी का प्रयोग भी करें और चिकित्सा उस समय तक जारी रखें जब तक खांसी समाप्त न हो जावे।

(छ) कुछ लोगों को चाय पीने की आदत होती है और वह जुकाम के दिनों में भी चाय पीकर उसे बन्द करते हैं। यह हानिकारक है। कुछ लोग नित्य दूध पीने का स्वभाव रखते हैं। यह स्वभाव तो अच्छा है पर जुकाम के दिनों में भी दूध अच्छा नहीं है। जब तीन दिन का उपवास समाप्त हो जावे तो उसके पश्चात् फलाहार के समय अथवा भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व आम के पत्तों की चाय पी जा सकती है या दूध में काली मिर्च डालकर दूध पी सकते हैं। एक पाव दूध में 10-15 काली मिर्चें काफी हैं।

भोजनः– संतरा, नीबू, सेव, अनन्नास, मीठा आलू बुखारा, शहतूत, खरबूजा, नासपाती और अमरूद तथा काला गन्ना आग में भून कर खाया जा सकता है।

मुनक्का और किशमिश भी फलों के साथ खाये जा सकते हैं। जब भोजन आरम्भ करें तो पहले गेहूँ व जौ का दलिया, गेहूँ की रोटी, साबुत मूंग और सब्जी में परवल, तुरई, मूली, शलजम, लौकी, टिण्डा, गाजर, पालक इत्यादि खावें।

अन्य उपचार:– बढ़े हुये जुकाम में ठण्डे पानी का पूरे शरीर का स्नान न करना चाहिये। भाप स्नान के पश्चात् कटि स्नान लेने के तुरन्त बाद दो तीन लोटे पानी सारे शरीर पर शीघ्रता पूर्वक डालकर सूखे तौलिये से पोंछकर गर्म कपड़े पहिन लें। अन्य दिनों में गर्म पानी से तौलिया भिगोकर उससे शरीर पोंछ डालें। भाप स्नान के पश्चात् जैसा कि ऊपर पानी डालने को बताया इसके अतिरिक्त तीन चार दिन सिर पर पानी डालकर न न्हावें। जलनेती इस अवसर पर बड़ी उपयोगी होती है। यदि नाक बलगम से भर जावे तो नमक मिले गर्म पानी से जलनेती करना चाहिये।

पाठ 4

ज्वर

ज्वर या बुखार का सबसे बड़ा लक्षण शरीर का गर्म हो जाना इतना स्पष्ट है कि सभी लोग जान लेते हैं कि हमें ज्वर है पर वैज्ञानिकों ने इतने नाम रख दिये हैं कि यदि उनके कुछ नाम और लक्षण यहाँ न दिये जावें तो कदाचित् पाठक इस पुस्तक को अपूर्ण समझ कर उसी नाम की खोज में दौड़ते फिरेंगे। अतः कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं:–

चूँकि डाक्टरी नामों का ही अधिक प्रचार इस समय है अतः उन्हीं के नाम देते हैं।

1. कन्टीन्यूड फीवर (Continued Fever)–इस प्रकार के ज्वर में गर्मी एक दम अधिक होकर कुछ समय तक एक सी रहती है और फिर धीरे धीरे कम हो जाती है।

2. इन्टर मीटेन्ट फीवर (Inter Mittent Fever)–इस प्रकार का ज्वर बारी से चढ़ता और उतर कर फिर चढ़ता है।

3. रिमीटेन्ट फीवर (Remittent Fever)–इस प्रकार का ज्वर प्रायः सात व नौ व ग्यारह व चौदह दिन तक बराबर चढ़ा रहता है, और कभी टाइफाइड (Typhoid) के रूप में बदलकर अधिक समय तक चलता और कभी घातक भी बन जाता है।

4. रिलौप्सिंग फीवर (Relapsing Fever)–इस प्रकार का ज्वर कुछ दिन तक बराबर चढ़ा रहता है और फिर उतर जाता है। रोगी अपने आपको बिल्कुल स्वस्थ्य समझने लगता है परन्तु कुछ दिन के पश्चात् फिर ज्वर जाड़े से चढ़ जाता है। इस प्रकार उसका आक्रमण कई बार होता है। फिर वर्ग के आधार पर इसके (ज्वर के) चार भाग माने जाते हैं।

I सादा ज्वर (Simple Fever)

II जलन वाला ज्वर (Inflammatory Fever)

III तीव्र ज्वर (Hyper pyrexial Fever)–इस प्रकार के ज्वर में गर्मी 107 और इससे भी अधिक हो जाती है।

IV निर्बल कर देने वाला ज्वर–जो कई प्रकार का है:–

क. वृद्ध कर देने वाला ज्वर (Asthenic Adynamic Fever)–इस प्रकार के ज्वर में रोगी इतना निर्बल हो जाता है कि उठने बैठने की शक्ति नहीं रहती। ज्वर तो हल्का ही होता है पर नाड़ी बारीक और बहुत निर्बल चलती है।

ख. आंतों का ज्वर (Typhoid Fever)–इस प्रकार के ज्वर में रोगी बहुत निर्बल हो जाता है। आंतें सूज जाती हैं, जिह्वा सूखी होती है, उस पर भूरा या काला मैल जम जाता है, ओठ सूखते और चटकते हैं तथा उन पर पपड़ी जम जाती है। नाड़ी निर्बल होती है। दस्त आते हैं जिनमें कभी २ अधिक रक्त आकर रोगी समाप्त हो जाता है। इसमें कभी बेहोशी और सरसाम (सन्निपात Delirium) भी हो जाता है। यह आम बोल चाल में मियादी बुखार कहा जाता है और मियादी बुखारों में यही सबसे कठिन है।

ग. घातक ज्वर (Maliq ant Fever)–इस प्रकार के ज्वर में रक्त बहता है तथा त्वचा के नीचे व ऊपर लाल धब्बे अथवा दाने से पड़ जाते हैं।

घ. तपेदिक जीर्ण ज्वर (Hectic Fever)–इस प्रकार के ज्वर में फेफड़े इत्यादि में पीव पड़ जाता है और रक्त दूषित हो जाता है। इसमें ज्वर लगातार भी रहता है और बारी से भी चढ़ता है। आरम्भ में सायंकाल के समय ज्वर कुछ अधिक हो जाता है और अन्य समय

टेम्परेचर नार्मल से भी कम रहता है पर अन्त को ज्वर थोड़ा बहुत हर समय रहता है पर सायंकाल को अधिक हो जाता है।

छूत के आधार पर डाक्टरी में ज्वर दो प्रकार का माना जाता है।

1. छूतदार (Infectious Fever)–इस प्रकार के ज्वर रोगी से स्वस्थ्य मनुष्य (जिसके शरीर में विकार होते हैं) को भी लग जाता है। इस प्रकार के ज्वर में शरीर पर लाल धब्बे अथवा दाने निकल आते हैं तो इसे डाक्टरी में इरयूटिव (Eruptive or Exanthemata Fever) कहते हैं। इन्हीं में चेचक और खसरा इत्यादि रोग हैं।
2. अछूते ज्वर (Un-infectious Fever)–इस प्रकार के ज्वर रोगी से दूसरे स्वस्थ्य मनुष्य को नहीं लगते।

फिर रोग के आधार पर इसके दो भेद हैं

1. असली ज्वर (Specific or Idiopathic Fever)–इस प्रकार का ज्वर शरीर के भीतर किसी विकार के कारण होता है। सारे छूत दार ज्वर इसी के भीतर हैं।
2. लाक्षणिक ज्वर (Symptomatic Fever)–इस प्रकार के ज्वर किसी अन्य रोग के कारण होते हैं। डाक्टरों का भी यह विश्वास है कि ज्वर वही घातक होता है जिसमें शरीर से दस्त व पसीना आ जाने पर भी ज्वर शांत न हो जिसका सीधा अर्थ यह है कि रोग का कारण विकार ही है। यदि वह विकार इस मात्रा में निकल जावे कि शरीर शुद्ध हो जावे तो ज्वर उतर जाता है और यदि विकार इतनी अधिक मात्रा में हो कि शरीर से न निकल पावे तो परिणाम मौत होता है। एलोपैथिक डाक्टर यद्यपि ज्वर के लिये औषधियों का प्रयोग करते हैं पर डाक्टरी में भी ज्वर शांत करने को सबसे बढ़िया चिकित्सा ठण्डे अथवा गर्म पानी से स्पंज करना और पानी से तर चादरों में लपेटना तथा ठण्डे पानी से स्नान कराना इत्यादि मानी जाती है। एक

प्रसिद्ध डाक्टर लेखक ने जो ब्रिटिश सरकार के दूतावास में मेडीकल आफीसर रह चुके हैं और जो अब भी प्राकृतिक चिकित्सक नहीं किन्तु एलोपैथिक डाक्टर हैं, अपनी पुस्तक में लिखा है कि कठिन ज्वरों में विशेषतया (Typhoid) टाइफाइड ज्वर में जल चिकित्सा से बहुत सी जानें बच गई हैं। आयुर्वेद ने ज्वर को सब रोगों का राजा माना है और पहले उसे निम्नलिखित आठ प्रकार का बताया है।

1.वात ज्वर 2. पित्त ज्वर 3. कफ ज्वर 4. वात पित्त ज्वर 5. वात कफ ज्वर 6. पित्त कफ ज्वर 7. सन्निपात ज्वर 8. आगुन्तुक ज्वर।

इनके पूर्व रूप तथा लक्षण रूप इस प्रकार बताये हैं:–

1. **वात ज्वर का पूर्व रूप**:–जमुहाई आना और हाथ पैर में पीड़ा होना। **लक्षण**:–शरीर कांपने लगे, ज्वर का विषम (कभी कम और कभी अधिक) वेग होवे। नींद और छींक का अभाव, शरीर में रूखापन हो जावे, मस्तिष्क और अङ्ग में पीड़ा होवे, जिह्वा का स्वाद बिगड़ जावे अर्थात् स्वाद का ठीक ज्ञान न हो। रेचन की रुकावट हो, पेट में शूल अफरा आदि पीड़ा हो और जमुहाई विशेष आवे तो वात ज्वर समझना चाहिये।

2. **पित्त ज्वर का पूर्व रूप**:–किसी कार्य में चित्त न लगना और नेत्र जलना। **लक्षण**:–नेत्रों में दाह हो, मुख खट्टा हो जावे, प्यास अधिक लगे, मूर्छा (चक्कर) आवे, शरीर अति उष्ण हो, ज्वर का अधिक वेग हो, रेचन द्रव अर्थात् दस्त पतला हो, वमन हो, निद्रा न आवे, मुख सूखे या पक जावे, पसीना आता हो, मल मूत्र और नेत्र पीले पड़ गये हों तो पित्त ज्वर समझो।

3. **कफ ज्वर का पूर्व रूप**:–अन्न से अरुचि और शरीर भारी होना।

   लक्षण:–अन्न पर रुचि न हो, शरीर भारी हो जावे, रोम रोम खड़े हों, मूत्र और नख श्वेत हो जावें, निद्रा अधिक आवें, शरीर ठण्डा सा हो अर्थात हाथ पाँव तो जल से धोने के सदृश्य शीतल हों (पर अन्य शरीर इससे किन्चित

उष्ण हो जावे) मुख मीठा हो, ज्वर का विशेष वेग न रहे, आलस अधिक आवे नाक बहे तथा कफ जन्य मल से नाक रुक जावे तो कफ ज्वर समझना चाहिये।

4. **वात पित्त ज्वर लक्षण**:–चक्कर आवे, निद्रा का अभाव, मस्तिष्क में पीड़ा, कण्ठ और मुख सूखे, वमन हो, रोमाञ्च हो उठे अन्न पर रुचि न चले, अन्धेरी आवे, अङ्ग में पीड़ा हो, जमुहाई आवे और प्रलाप (कुछ का कुछ बकवाद) करे तो वात पित्त ज्वर जानो।

5. **वात कफ ज्वर लक्षण**:– खांसी चले, अन्न पर अरुचि, सन्धिओं और मस्तिष्क में पीड़ा, नाक बहे, शरीर में अत्यन्त थकान, कम्प और भारीपन, नींद का अभाव, पसीना का बहाव, श्वांस चले, पेट में शूल, सर्वथा हंस की सदृश्यता पर नाड़ी की गति, धुयें के रंग का श्वेत चिकना सुरमे के रंग जैसा मूत्र, मल भी काला या चिकना हो, नेत्र धूसर हों (धुयें के रंग के), मुख का स्वाद कसैला या मीठा हो, जीभ काली या श्वेत, और आद्रता या नीलेपन को लिये हो, कंठ में कफ से घर्राटा चले और शरीर ठंडा हो जावे तो वात कफ ज्वर समझना चाहिए।

6. **कफ पित्त ज्वर लक्षण**:–मुख और जिह्वा कफ से युक्त हो, तन्द्रा (आधे नेत्र खुले और आधे बंद), मोह, खांसी, अन्न पर अरुचि, प्यास अधिक हो, बार बार दाह और ठण्ड लगे, शरीर और हृदय में पीड़ा, मूर्छा आवे, भूख न लगे, शरीर जकड़ा सा जान पड़े, नाड़ी हंस या मेढक के सदृश्य गति करे, मूत्र कुछ लाली लिये हुये श्वेत व चिकना हो, मल भी लालिमा पर हो, : नेत्र मेढक के वर्ण सदृश्य पीले हों, मुख मीठा (कभी कड़वा भी) हो, जिह्वा लाल या श्वेत हो तो कफ पित्त ज्वर समझना चाहिये।

7. **सन्निपात ज्वर के लक्षण:–**क्षण में दाह और अकस्मात क्षण में ठण्ड लगे, स्वभाव बदल जावे, इन्द्रियाँ अपने अपने धर्म को त्याग दें, शरीर की हड्डी सन्धि (हड्डियों के जोड़) और मस्तिष्क में विशेष पीड़ा हो, नेत्र में आँसू

बहें, नेत्र काले या लाल हो जावें, कानों में विचित्र शब्द या पीड़ा जान पड़े, कण्ठ में काँटे पड़ जावें, तन्द्रा, मोह, कास, श्वाँस, भ्रम और अन्न पर अरुचि हो जावे, प्रलाप करने लगे, जिह्वा काली, खुदरी या कठोर हो जावे, रुधिर युक्त कफ निकले, दिन को निद्रा आवे, रात्रि को जागे, पसीना कभी तो आवे ही नहीं और कभी अधिक आवे, रोगी अकस्मात नाचना, गाना, रोना, हंसना मस्तिष्क आदि अवयव हिलाना ऐसे ऐसे कार्य करने लगे, प्यास बारम्बार लगे, हृदय में पीड़ा हो, मलमूत्र थोड़ा बहुत हो या पूर्ण ही रुक जावे, शरीर कृश हो, कण्ठ में कफ का घर्राटा चले, कोष तथा इन्द्रियाँ पक जावें, पेट भारी हो, नाड़ी की गति महा मन्द, शिथिल, सूक्ष्म और टूटी सी हो, मूत्र हल्दी के सदृश्य पीला, रक्त के समान लाल अथवा काला हो और मल भी श्वेत युक्त श्याम तथा सूअर के मांस के समान हो तो यह सन्निपात ज्वर के लक्षण हैं।

आयुर्वेद सन्निपात ज्वर को मृत्यु का संदेश बताता है और जो चिकित्सक इस रोग से रोगी की जान बचाता है, उसका उपकार रोगी को आयु भर मानने की आज्ञा देता है। ऐसा ज्वर कैसे उत्पन्न होता है, इसको भी जान लीजिये।

सन्निपात ज्वर के कारण:—जो मनुष्य तर माल खूब उड़ावे अर्थात बहुत चिकने पदार्थ, बहुत मिष्ठान, बहुत खट्टे, तीखे तथा रूखे पदार्थ खावे, भूख से अधिक खावे अथवा विषम भोजन करे, अशुद्ध जल पीवे, पापाचरण अर्थात व्यभिचार इत्यादि करे, अधिक मांस खावे, बिगड़ा व कच्चा मांस खावे तथा देश, काल के विरुद्ध व्यवहार करे जैसे सर्दी में ठण्ड और गर्मी में धूप अधिक खावे तो ऐसे पुरुष के शरीर में विकारों का कोष एकत्रित हो जाता है।

8. **आगन्तुक ज्वर के लक्षण**:–उसके कारणों के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे:–

क. **शस्त्र की चोट से उत्पन्न हुआ आगन्तुक ज्वर के लक्षण**:–शस्त्र प्रहार से पीड़ा उत्पन्न होकर वादी को कुपित करती है। वादी रुधिर को बिगाड़ कर चोट लगे हुये स्थान पर अत्यन्त पीड़ा, शोथा व सूजन करता है तथा शरीर का वर्ण बदल जाता है।

ख. **विषैली गैस व कृमि से उत्पन्न ज्वर**:–शरीर में उद्‌वेग (त्रास, दुःख, गड़बड़, हड़फूटन) होवे, कभी हँसे कभी रोवे, कभी कम्पायमान हो प्रलाप करे और चित्त स्थिर न रहे।

ग. **काम ज्वर**–(पुरुष को) भोजन में अरुचि, मन में दाह होवे, निद्रा, लज्जा, बुद्‌धि, धैर्यता आदि से च्युत हो जावे अर्थात् यह बातें जाती रहें, हृदय में पीड़ा उठे, केवल सम्भोग में ही ध्यान लगा रहे तथा गहरी सांसे ले अर्थात् आह भरे। (स्त्री को) मूर्छा आवे, समग्र अंग में मरोड़े उठें प्यास लगे, नेत्र चपल हो जावें, मन में स्तन मर्दन कराने की इच्छा विशेष हो, पसीना निकले, हृदय में दाह हो, भोजन में अरुचि हो जावे, लज्जा, निद्रा और धैर्य का नाश हो जावे।

घ. **क्रोध ज्वर**–शरीर में कम्प आवे, शिर में पीड़ा हो तथा पित्त ज्वर के सदृश्य सब लक्षण हों।

ङ. **शोक ज्वर अथवा मानसी ज्वर**:–पुत्र, मित्र, स्त्री आदि के विछोह अथवा मृत्यु से, धन हरण से अथवा राज दंड इत्यादि के तिरस्कार से मानसी ज्वर होता है। इसमें रोगी को अधिक शोक होता है। दस्त आने लगते हैं और सब वस्तुओं से ग्लानि हो जाती है।

च. **भय ज्वर**–प्रलाप करे, अतिसार हो, चित्त स्थिर न रहे और भोजन से अरुचि हो जाती है।

छ. **विष ज्वर**:–संखिया इत्यादि खाने अथवा सर्प, बिच्छू के डसने इत्यादि से जो ज्वर होता है उसमें रोगी के मुख पर श्यामलता छा जाती है, अतिसार होता है, भोजन पर अरुचि होती है प्यास अधिक लगती है, मूर्छा आती है और सब शरीर में सुई छेदने सदृश्य पीड़ा होती है।

ज. **श्राप ज्वर अर्थात ग्लानि ज्वर**:–माता, पिता, आचार्य इत्यादि का आवेश में अन्धे होकर तिरस्कार करने से आत्मा में जो ग्लानि होती है उसे श्राप ज्वर कहते हैं। इस ज्वर में शरीर में हड़फूरन होकर शरीर विकल होता है और सब लक्षण ज्वर के सदृश्य होते हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद में लक्षण और कारण भेद से अनेकों प्रकार के ज्वरों का वर्णन है। सन्तत, सतत इत्यादि पाँच प्रकार का विषम ज्वर जिसमें तिजारी, चौथिया इत्यादि आते हैं तथा जीर्ण ज्वर, अजीर्ण ज्वर, रुधिर प्रकोप ज्वर इत्यादि अनेकों प्रकार के हैं। जो देखना चाहें आयुर्वेद का विशेष अध्ययन करें। औषधि प्रयोग के लिये इनका ज्ञान और उसके अनुकूल औषधि का ज्ञान परमावश्यक है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के मूल कारणों को दूर करने के सिद्धान्त पर ऐसे प्राकृतिक साधनों से चिकित्सा की जाती है कि सौ में पिच्चानवे 95 अवसरों पर आयुर्वेद के सम्पूर्ण ज्ञान के बिना भी रोगी अपने को निरोग बना सकता है। अतः अब हम ज्वर के कारण, भेद और चिकित्सा पर प्राकृतिक ढंग से विचार करते हैं:–

(1) ज्वर क्यों होता है?

अनुचित और अप्राकृतिक रहन-सहन, खान-पान और विचार इत्यादि से शरीर के सभी भागों में विकार जमा हो जाता है। उसीसे शरीर में जोश भी उमड़ता रहता है। यह जोश विकार के टुकड़े टुकड़े कर देता है; फिर जोश के कारण इन टुकड़ों में रगड़ उत्पन्न होती है तभी शरीर की गति बढ़ जाती है। इसी को ज्वर कहते हैं। ज्वर के अनेकों भेद हैं, पर यदि आरम्भ से ही प्राकृतिक साधन काम

में लाये जावें तो बहुत से ज्वर तो दो तीन दिन में ही समाप्त हो जाते हैं और कुछ ही ऐसे होते हैं जो महीनों या हफ्तों चलते हैं। मियादी (Typhoid) और चेचक जैसे रोग भी आरम्भ से ही चिकित्सा करने से दूर होकर इन नामों को धारण करने से पूर्व ही समाप्त हो जाते हैं।

चिकित्साः–

यदि रोगी निर्बल नहीं है तो ज्वर प्रारम्भ होते ही सबसे पहला काम यह है कि रोगी का भोजन बिल्कुल बन्द कर देना चाहिये। नवीन ज्वर में इस काम के लिये यह सोचने की भी आवश्यकता नहीं है कि ज्वर किस प्रकार का है। हर नवीन ज्वर में उपवास न केवल आवश्यक किन्तु अनिवार्य है।

1. कफ प्रकृति वाले रोगी को अथवा कफ प्रधान ज्वर में तो उपवास उस समय तक बिल्कुल तोड़ना ही नहीं चाहिये जब तक ज्वर बिल्कुल उतर ही न जावे। उपवास के समय नीबू का रस ठण्डे अथवा गर्म पानी में दिया जा सकता है।

2. पित्त प्रकृति वाले रोगी को एक दो दिन के उपवास के पश्चात् ज्वर रहने पर भी उसकी इच्छानुसार फलों का रस अथवा मुनक्का देना अच्छा है। यदि रोगी न चाहे तो कदापि न देवें।

3. वायु प्रकृति वाले को इच्छा होने पर फलों का रस अथवा मुनक्का देना अनिवार्य है क्योंकि बस्ती कर्म के पश्चात् खाली पेट में वायु और अधिक बढ़ती है। संतरे के अतिरिक्त मोसम्मी, मीठा नीबू और अनार का रस भी दिया जा सकता है। जहाँ फल न मिलें किशमिश भिगोया हुआ पानी देवें।

   सिवाय ऐसे रोगी के जिसे पतले दस्त अधिक संख्या में आ रहे हों, प्रत्येक ज्वर–रोगी को दोनों समय बस्ती कर्म कराना चाहिये।

4. **टाइफाइड (Typhoid)** इत्यादि लम्बे चलने वाले ज्वरों में रसाहार के अतिरिक्त नीबू से फाड़कर गाय के दूध का पानी भी दिया जा सकता है।

जब बुखार छूट जावे तब पहले संतरे का रस मिला गाय का दूध एक दो बार देवें और दो तीन बार फलों का रस देवें। फिर धीरे धीरे अन्य फल और सब्जी अथवा सब्जियों का सूप (रसा) देवें और तब तीन चार दिन बाद सब्जी रोटी देवें। बुखार छूटने पर दूसरे ही दिन अन्न किसी रूप में भी न देवें। चाहे वह डाक्टर की बताई बार्ली ही हो। बुखार उतरने पर कम से कम जब दो दिन बीत जावें तब अन्न दिया जा सकता है अन्यथा रोग फिर बढ़ जाने का भय रहता है। यह याद रखना चाहिये कि उपवास अथवा रसाहार यदि आवश्यकता न रहने पर भी किया जावेगा तो इस भूल से रोगी कभी भी न तो मर सकता है और न रोग बढ़ सकता है। यदि भोजन समय से पूर्व दे दिया जावेगा तब हानि तो सभी रोगियों को होगी; उनमें से कुछ रोगी इस भूल से मर भी सकते हैं।

5. यदि पहले दिन कुछ अधिक बेचैनी न हो और ज्वर अधिक से अधिक 103 डिग्री तक हो तो एक बार सारे शरीर को भीगे कपड़े से पोंछ दीजिये फिर तौलिया से पोंछकर लिटा दीजिये। इसी प्रकार दो तीन दिन तक करते रहें। कदाचित इतने से ही ज्वर समाप्त हो जावे। यदि ज्वर आरम्भ से ही अधिक हो, बेचैनी हो अथवा तीन दिन में उपरोक्त चिकित्सा से लाभ न हो तो बस्ती कर्म के पश्चात् कटि स्नान दीजिये। बालकों को कटि स्नान के स्थान पर कपड़े की गीली पट्टी बाँध सकते हैं। कटि स्नान का समय 10 मिनट का हो। जाड़े में सात आठ मिनट भी पर्याप्त हैं। ज्वर बराबर तेज़ रहे तो हर दो घण्टे के पश्चात कटि स्नान कराया जा सकता है। पर बुखार उतारने में भी उतावले पन से काम नहीं करना चाहिये अर्थात अधिक शीघ्रता भी न करनी चाहिये, क्योंकि भीतरी विकार बुखार की गर्मी से जलते भी हैं। मिट्टी की पट्टी भी बुखार उतारने में सहायता करती है। वस्ती कर्म से पूर्व इसका बाँधना और अधिक उपयोगी है। यदि पेट में दर्द, उबकाई, चक्कर इत्यादि उपसर्ग हों तो मिट्टी की पट्टी से इनको भी लाभ होता है!

6. अधिक दिन चलने वाले ज्वरों में इस प्रकार का कार्य क्रम बना लें।

समय	कार्य
5 बजे प्रातः:	मिट्टी की पट्टी तथा शौच निवृत्ति
6½ बजे तक	वस्ती कर्म व कटि स्नान
7 बजे	रसाहार
10 बजे	दूध का (नीबू से फाड़ा हुआ) पानी अथवा रसाहार
11 बजे	शरीर को गीले कपड़े से पोंछना इस समय कमरा बन्द रहना चाहिये।
12.30 बजे	कपड़े की गीली पट्टी
2. बजे	रसाहार
4. बजे	मिट्टी की पट्टी, उसके पश्चात् कटि स्नान
7. बजे	रसाहार या फटे दूध का पानी

नोट–

1. यह कार्यक्रम ग्रीष्म ऋतु का है। ऋतु के अनुसार प्रातःकाल देर से अर्थात पाँच के स्थान में 6 या 7 बजे से भी प्रारम्भ किया जा सकता है।
2. रसाहार अथवा दूध का पानी रोगी को इच्छा होने पर ही देना चाहिये, यदि रोगी न चाहे तो न देना चाहिये। जहाँ फलों का रस न मिले अथवा ऋतु के अनुसार रोगी फलों से डरता हो तो मुनक्का से काम लिया जा सकता है।
3. कार्यक्रम में और भी परिवर्तन बुद्धिमान व्यक्ति कर सकते हैं। ध्यान इस बात का रखना चाहिये कि मूल सिद्धान्त का उल्लङ्घन न हो। जैसे कटि स्नान के पश्चात् जब तक शरीर में गर्मी न आजावे रसाहार

न करें। इसी प्रकार वस्ती कर्म करने के पश्चात् जब तक आधा घण्टा विश्राम न करलें तब तक बाथ इत्यादि न करें। इसी प्रकार अन्य नियमों का भी ध्यान रखें।

7. जब २ बुखार तेज़ हो पेडू पर मिट्टी की अथवा पानी की पट्टी देवें और अधिक तेज़ ज्वर में सिर पर गीले कपड़े की पट्टी भी देना चाहिये। जैसे ही पट्टियाँ गर्म हों उनको हटा दें और ज्वर कम न हुआ हो तो उसी समय दूसरी पट्टी रख दें।

8. रोगी के आराम का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। यदि इन उपचारों में उसे अधिक कष्ट होता है तो इनको भी कम करें। वस्ती कर्म भी एक ही बार करें और रोगी को आराम से लिटाये रखने का अधिक प्रयत्न करें।

9. यदि ज्वर और अधिक बढ़े तो बहुत ठण्डे पानी से कपड़ा गीला करके उससे स्पन्ज कर देना चाहिये और सर को ठण्डे पानी से धो देना चाहिये। इससे टेम्परेचर गिर जावेगा। हाँ स्वस्थ समय का सा पूर्ण स्नान ज्वर छूट जाने और अन्न का भोजन कर लेने के पश्चात् ही करना चाहिये। हर प्रकार के मियादी बुखार इन्हीं उपचारों से ठीक होते हैं और सब प्रकार के ज्वरों में भी यही चिकित्सा की जाती है। पर सब प्रकार के ज्वर जिस प्रकार एलोपैथिक औषधियों से एक ही दिन में न जाकर आगे जाकर कभी घातक बन जाते हैं, प्राकृतिक चिकित्सा में घातक तो नहीं बनते पर सब प्रकार के ज्वर एक ही बार की चिकित्सा में नहीं जाते; किन्तु जब तक शरीर से सब विकार नहीं निकल जाते हफ्तों चलते हैं। ऐसी अवस्था में जो रोगी घबड़ा कर प्राकृतिक चिकित्सा छोड़ कर अन्य चिकित्सा प्रारम्भ कर देते हैं वह बहुत घाटे में रहते हैं, क्योंकि अन्य कोई चिकित्सा भी प्राकृतिक चिकित्सा की अपेक्षा शीघ्र रोग तो दूर कर नहीं सकती है। हाँ रोग को पेचीदा बना कर समय को और बढ़ा सकती है। प्राकृतिक चिकित्सा का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि जहाँ वह बुखार की घबड़ाहट इत्यादि को कम रखती है वहाँ

उसके द्वारा रोग जाने पर कोई नवीन रोग उत्पन्न नहीं होता। कुछ लोग भ्रमवश यह समझते हैं कि -

मलेरिया ज्वर

केवल कोनैन से ही जाता है। अतः मलेरिया में डाक्टरी इलाज ही करना चाहिये, पर यह उनकी भूल है। यह सत्य है कि इस रोग में कोनैन से बढ़ कर प्रभाव दिखाने वाली अन्य औषधि नहीं है। इसी कारण बहुत से अवसरों पर डाक्टरों की धाक सी जम जाती है, पर यह समझ लेना चाहिये कि कोनैन से दबा हुआ मलेरिया ज्वर कभी किसी रूप में तथा कभी किसी रूप में प्रकट अवश्य होता है। कभी तो मलेरिया के ही रूप में कुछ समय पश्चात प्रकट होता है और कभी रोगी ज्वर के लिये नहीं तो यकृत, तिल्ली, मन्दाग्नि और पीला इत्यादि रोगों की चिकित्सा के लिये डाक्टरों के पास दौड़ा फिरता है। बहुत से रोगी को नैन की गर्मी शान्त करने को महीनों दूध और फलों की शरण लेकर प्राकृतिक चिकित्सा के बड़प्पन का प्रमाण देते हैं। सम्भव है कि प्राकृतिक चिकित्सा से मलेरिया ज्वर पहली ही बारी से न रुके क्योंकि वह तो शरीर के विकार निकाल कर ज्वर का नाश करेगी पर इस शीघ्रता के लिये विकारों को दबाना उचित नहीं है। उपरोक्त उपचारों से मलेरिया भी चला जावेगा। कुछ विशेष साधन इस प्रकार काम में लावें।

(I) जाड़ा लगने और ज्वर चढ़ने के समय कोई भी उपचार काम नहीं करता। केवल होम्योपैथिक औषधि कुछ सान्त्वना दे सकती है। मिट्टी और पानी की पट्टी भी उस समय थोड़ा ही काम करेगी पर फिर भी ज्वर अधिक होने पर अर्थात टेम्परेचर 105 तक हो जावे तो इस प्रकार उपचार आरम्भ करें।

(II) कमरा बन्द करके ठण्डे पानी से शरीर को अच्छी तरह स्पन्ज करें। कपड़ा जल से खूब भीगा हो और थोड़ी थोड़ी देर के पश्चात् उसे जल में फिर डुबा लें। पहले रीढ़ और पीठ को दो मिनिट धीरे २ रगड़ कर पोछें। फिर दोनों

हाथ, टांग, पेट फिर रीढ़ और तब दूसरे पानी में तौलिया भिगो कर चेहरे को रगड़ कर पोंछ दें। अन्त में सिर को एक ओर झुका कर उस पर दो तीन मिनट धीरे धीरे पानी गिरा कर उसे सूखे अंगोछे से पोंछ दें। शरीर का प्रत्येक भाग इस प्रकार भिगो कर पोंछते जावें। अन्त में सूखे कपड़े पहिना कर रोगी को ढक कर कमरा खोल दें। थोड़ी देर के पश्चात् टेम्परेचर लेकर देखें। यदि ज्वर कम से कम दो डिगरी उतर गया है तो रोगी को इसी अवस्था में पड़ा रहने दें और यदि ज्वर नहीं घटा है तो एक घण्टे के पश्चात् फिर इसी प्रकार करें और दो दो घण्टे के पश्चात् मिट्टी की पट्टी रखें। जब ज्वर 98 हो जावे तो गर्म पानी में कमर-नहान देवें। पानी सहने योग्य अच्छा गर्म हो। सिर पर पानी का भीगा कपड़ा लपेट दें। रोगी 10-15 मिनट गर्म पानी में बैठे। पेडू मलने की आवश्यकता नहीं है। उठने पर शरीर सूखे कपड़े से अच्छी तरह पोंछ दें। गर्म पानी में बैठने के कारण यदि पसीना आ गया हो तो पहले पसीना पोंछ कर और फिर ठण्डे पानी में कपड़ा भिगो कर व खूब निचोड़ कर कपड़े से सारे शरीर को जल्दी से पोंछ कर आराम से लिटा दें और ऊपर से गर्म कपड़ा ओढ़ा दें। यदि फिर पसीना आवे तो फिर लेटे हुये ही पसीना पोंछ कर भीगे कपड़े को इसी प्रकार निचोड़ कर उससे शरीर पोंछ दें। दो तीन दिन इसी प्रकार करने से मलेरिया अवश्य चला जावेगा। वास्तव में मलेरिया का इलाज जो टेम्परेचर 98 रहने पर बताया गया है यही है। यदि किसी रोगी को बारी आना दो तीन दिन में इस क्रिया से बन्द न हो तो फिर इस प्रकार करें।

मलेरिया रोकने की दूसरी विधि

ज्वर उतरने पर अथवा 1 डिग्री रहने पर पहले भाप नहान देवें और पसीना पोंछ कर तुरन्त शरीर को ठण्डे पानी से स्पन्ज कर दें और फिर तुरन्त ही ठण्डे पानी में कटि स्नान कराया जावे और उसके पश्चात् कम्बल ओढ़ा कर लिटा दें। कटि स्नान के समय पैरों को गर्म पानी में डुबो रखना चाहिये।

(III) प्रातः सायं दोनों समय गर्म पानी से वस्ती कर्म करावें। यदि अन्य कोई क्रिया न हो सके तो केवल वस्ती कर्म और उपवास से भी मलेरिया का रोगी आरोग्य हो जावेगा। सम्भव है कि समय कुछ अधिक लग जावे। कभी कभी भाप नहान के स्थान पर धूप नहान अच्छा रहता है। उसके पश्चात् भी स्पंज और कटि स्नान उसी प्रकार किया जाता है।

(IV) केवल एनीमा और ठंडे पानी के स्नान से भी साधारण तौर पर काम चल जाता है पर भोजन का विचार आवश्यक है। यह सर्वदा याद रखें कि चाहे कितने ही मच्छर हों पर बिना पेट खराब हुये मलेरिया नहीं होता। मच्छरों के कारण नींद न आने से पाचन विकार हो सकता है। इसलिये मच्छरों का भी निराकरण करना चाहिये पर विशेष ध्यान अपने पेट सुधार पर ही रखना चाहिये।

(V) भोजन–ज्वरावस्था में गर्म व ठण्डे पानी में नीबू पिया जा सकता है। ज्वर उतरने पर रसाहार, फलाहार, मुनक्का व तुलसी के पत्तों की चाय पी जा सकती है। ज्वर छूटने पर अर्थात बारी रुक जाने पर पहले सब्जी तत्पश्चात् सब्जी, रोटी खावें।

मलेरिया नाशक बहुत सी भारतीय जड़ी बूटी है जो खाने व लगाने से कोनैन से भी अधिक शीघ्रता से बारी रोक सकती हैं पर हमारी सम्मति में उपरोक्त साधनों द्वारा विकार निकाल कर मलेरिया की बारी रोकने से भविष्य में किसी नवीन रोग का भय नहीं रहता है। जो लोग औषधि से ही बारी रोकना चाहें उनके लिये एक हानि रहित औषधि लिखी जाती है।

चार भाग देसी शकर और १ भाग सेंधा नमक दोनों को खूब बारीक पीस लें और तीन तीन माशे दवा तीन तीन घण्टे बाद पानी से खावें।

मच्छरों को दूर करने वाली हवन सामग्री जिससे मलेरिया का विष भी दूर होता है:–

गूगल, ऊद, अस्पन्द, अकरकरा, गन्धक, धूप, गिलोय, तुलसी के पत्ते, जायफल, लौंग, हाथोबेर, चिरायता, चिरायते के फल।

गूगल चार भाग तथा अन्य सब औषधियाँ 1-1 भाग लेकर सबको कूट लें फिर सामग्री में घी और देसी बूरा मिला कर इससे हवन करें।

मलेरिया प्रतिरोधक एक अन्य साधन–सहौड़ा वृक्ष की नित्य प्रति दाँतून करने वाले को मलेरिया वाले स्थान पर भी मलेरिया ज्वर नहीं होता।

क्षय रोग व जीर्ण ज्वर

ज्वरों में सबसे भयंकर और घातक क्षय रोग है जिसकी सफल चिकित्सा खोजने में एलोपैथी आज तक असफल रही है। वेद ने इसकी अचूक चिकित्सा का विधान किया है, जिसका विस्तृत वर्णन मैंने अपने अनुभवों और रोग निदान के साधनों सहित अपनी पुस्तक "यज्ञ-चिकित्सा" में किया है। जो सज्जन इस रोग की चिकित्सा करना चाहें वह उस ग्रंथ का अध्ययन करें। इस रोग की चिकित्सा के लिये हर व्यक्ति को उद्‌यत न हो जाना चाहिये क्योंकि यह रोग बड़ा कठिन है पर पुस्तक को बार बार पढ़ कर और बुद्‌धि को काम में लाकर प्रत्येक व्यक्ति चिकित्सा करने योग्य बन सकता है।

काम ज्वर में काम निवृत्ति के उपाय, क्रोध ज्वर में क्रोध शान्त करना और जल पीना, शोक ज्वर में गीता उपनिषद्‌ इत्यादि का पाठ, भय ज्वर में प्रेम, भक्ति और भोग वाद का सिद्‌धान्त तथा गीता का उपदेश, विष ज्वर में प्रथम विष निकालने के उपाय तथा ग्लानि ज्वर में पूर्व किये का पश्चाताप तथा अपमानित वृद्‌ध जनों से क्षमा याचना इत्यादि उपायों से ज्वर शांत होता है। उपवास और फलाहार तथा सात्विक भोजन का सब ही ज्वरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। कुछ समझदारी से काम लेकर सब ही ज्वरों की आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा सफलतापूर्वक हो सकती है।

पाठ 5

पेट के रोग

क. **अजीर्ण**–जब कभी भोजन में अधिक गड़बड़ी होती है और कोलन के भरे होने के कारण अथवा आमाशय की शक्ति से अधिक भोजन व भारी भोजन ठूस लेने के कारण भोजन आमाशय में अधिक समय पड़ा रहता है तो कभी खट्टी डकारें और उबकाई आती हैं, कभी उल्टी होती है और कभी पतले अथवा अनपचे दस्त आने लगते हैं। इसी को अजीर्ण, बदहज़मी अथवा Indigestion कहते हैं।

चिकित्सा–इस रोग में किसी भी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है, केवल उपवास करने से रोग दूर हो सकता है। इच्छा होने पर केवल नीबू का पानी पिया जा सकता है। यदि साथ में वस्ती कर्म भी किया जावे तो और भी शीघ्र रोग दूर हो जावेगा। जो लोग इस अवस्था में तेज़ाब अथवा अन्य तीव्र औषधियों से मिश्रित हाज़मे की दवाइयाँ पीते हैं वह एक प्रकार से अपने आमाशय को निर्बल बनाते हैं और अपने भीतर मन्दाग्नि का बीज बोते हैं। उपवास के पश्चात् पेट ठीक होने और भूख लगने पर रसाहार से भोजन आरम्भ करके फल, मठा, दूध, मूंग की खिचड़ी, दलिया, अरारोट, चावल इत्यादि हल्के भोजन को कई दिन करके साधारण भोजन पर आना चाहिये। आरम्भ से ही अपना साधारण काम करते रहें तो कोई हानि नहीं। अजीर्ण में यदि पतले दस्त अधिक मात्रा में आवें तो एक बार ठण्डे पानी से बस्ती कर्म करके कटि स्नान अथवा पानी की पट्टी का प्रयोग करें जब तक दस्त पूर्ण रूप से बन्द न हो जावें भोजन कदापि न करें।

ख. **पेट का दर्द**–इस रोग को सभी जानते हैं। इसमें पहले सहने योग्य खूब गर्म पानी से वस्ती कर्म करें। इससे दर्द बन्द न हो तो मिट्टी की गर्म पट्टी पेडू पर बाँधे। इससे भी शीघ्र दर्द बन्द न हो तो गर्म पानी के टब में 10-

15 मिनट रोगी को बिठा दें अथवा गर्म व ठण्डा सेंक करें। ग्रामीण लोग अजवायन और काला नमक खाकर भी दर्द अच्छा करते हैं। हमारी सम्मति में ऐसी औषधि प्रयोग करने में कोई अधिक हानि नहीं है; पर नित्य प्रति अथवा अधिक मात्रा में ऐसी औषधियों का खाना भी ठीक नहीं है। वायु अधिक विकृत हो जाने से जब दर्द तीव्र होता है और अधिक समय चलता है और गर्म पानी में बैठाने से भी थोड़ी देर शांत होकर फिर तीव्र हो जाता है तब ऐसी अवस्था में रुद्रवन्ती बूटी जो हिमालय पर्वत पर मिलती है और देहरादून इत्यादि स्थानों पर सूखी हुई बिकती है, तीन माशे लेकर सात काली मिर्च के साथ पानी में पीस कर गर्म गर्म पीने से दर्द तुरन्त रुक जाता है। इसका प्रभाव मारफिया के इन्जेक्शन से भी अधिक होता है। इसी प्रकार बायकेमिक औषधि मेगनेशिया फास ३x गर्म पानी से दस दस मिनट बाद पाँच पांच ग्रेन खाने से दर्द शांत हो जाता है। बालकों के लिये, जिनको अन्य उपचार कराना कठिन है, सबसे सरल यही चिकित्सा है। जब तक दर्द बिल्कुल शांत न हो जावे, बालक, युवा, वृद्ध सबको ही भोजन कदापि न करना चाहिये। आवश्यकता हो तो गर्म पानी में नीबू या सन्तरे का रस पी सकते हैं। दर्द बन्द होने पर पहले रसाहार करना चाहिये। वायु के दर्द में गाय का दूध गर्म किया हुआ गर्म गर्म पीना भी हितकर है। दर्द रुक जाने के पश्चात् भी दो एक दिन गर्म पानी से वस्ती कर्म कर लेना अथवा दिन में दो तीन बार खूब गर्म पानी पीना भविष्य में होने वाले रोगों से बचाता है।

ग. **वायु गोले का दर्द**–शरीर की वायु विकृत होने से और कभी मूत्राशय में पथरी अटक जाने से वायु गोला का दर्द होता है। जब पथरी अटकने से होता है तो पीठ के निचले भाग वृक्क से दर्द आरम्भ होता है और आगे पेट में फैल जाता है।

चिकित्सा–उपरोक्त उपचारों से ही यह दर्द भी शांत होता है पर ऐसे दर्द में अजवायन और काले नमक का प्रयोग ठीक नहीं है किन्तु कटि-स्नान और गर्म ठण्डे पानी में बैठने से अधिक लाभ होता है। गर्म पानी से वस्ती कर्म आरम्भ से ही करना चाहिये और कई दिवस तक बराबर करते रहना चाहिये तथा भोजन पूर्ण आरोग्य होने पर ही करना चाहिये और भोजन सम्बन्धी ऐसे नियमों का पालन करना चाहिये जिससे पथरी भविष्य में न बने और जो बनी हुई है वह प्राकृतिक ढंग पर गल कर निकल जावे। यह याद रखना चाहिये कि पथरी बनने का मुख्य कारण भोजन का ठीक रूप से न पचना है।

कठिन पेट दर्द में रोगी को पट लिटा कर दोनों अंगूठों से गर्दन के पास से नीचे तक इस प्रकार दबाते हुये ऊपर से नीचे को मलें कि रीढ़ की हड्डी के गुरिया बीच में रहें। 5 मिनट में दर्द कम हो जावेगा।

घ. **कोष्ठबद्धता (कब्ज़ Constipation)**–आँतों से मल न निकलने को कोष्ठबद्धता कहते हैं। कुछ लोग अजीर्ण व दस्त को भी कब्ज़ कह दिया करते हैं पर यह भूल है। वास्तव में कब्ज़ शौच न आने अथवा कम आने को कहते हैं। बहुत देर तक शौच के लिये बैठना भी कब्ज़ के अन्तर्गत है। यह दो प्रकार का होता है; १–नवीन, २–पुराना।

नवीन कब्ज़ – यह भोजन में हेर फेर करने से अथवा वस्ती कर्म करने से एक दो दिन में जाता रहता है। व्यायाम और भ्रमण भी इसकी अचूक औषधियाँ हैं। भोजन में बथुआ, पालक, चौलाई, मेथी, मूली, पपीता, अमरूद, आम, खरबूजा, नीबू, सन्तरा, मुनक्का, अंगूर इत्यादि खाने से तथा खूब चबा कर खाने से और प्रातः उठते समय ठण्डा पानी पीने से ही कब्ज़ दूर हो जाता है। वस्ती कर्म करना भी कभी अनिवार्य होता है। खूब ठण्डे पानी से स्नान करना, गऊ का धारोष्ण दूध पीना, गेहूँ और जौ का दलिया खाना,

निहार मुँह फल खाना भी कब्ज़ को दूर करता है। 1 गिलास गर्म पानी में बीस ग्रेन नमक मिला कर पीना भी कब्ज़ को दूर करता है।

पुराना कब्ज़ – इसकी चिकित्सा में कुछ समय लगता है। लग कर चिकित्सा करने से यह दूर हो जाता है।

चिकित्सा

1. पहले तीन दिन भोजन में केवल नीबू अथवा सन्तरे का रस पिया जावे और नित्य एक या दो बार वस्ती कर्म करें। इसके पश्चात् एक समय रोटी, दिन में एक दो बार फल तथा कच्चा दूध, रोटी के साथ कच्ची भाजी व फलों की सलाद अवश्य खावें। दिन में एक बार नीबू गर्म पानी में अवश्य पीवें। हर दूसरे तीसरे दिन एक बार वस्ती कर्म करें। दो सप्ताह के पश्चात् सप्ताह में एक बार वस्ती कर्म करें।

2. प्रातः सायं कटि-स्नान करें। दो सप्ताह के पश्चात् एक समय कटि-स्नान, दूसरे समय रीढ़ की पट्टी अथवा उपस्थ-स्नान करें।

3. नित्य सूर्योदय से पूर्व उठ कर पहले कुल्ला करके एक गिलास ठण्डा व गर्म पानी पीकर शौच जावें। उसके पश्चात् हाथ मुँह धोकर बाहर भ्रमण को निकल जावें और खुली जगह में ताड़ासन इत्यादि कोई व्यायाम करें अथवा दौड़ लगावें।

4. पुराने कब्ज़ को दूर करने के लिये शुद्ध ओषजन युक्त वायु का अधिक मात्रा में रक्त में पहुँचना परमावश्यक है। इसी से अग्नि तीव्र होगी और इसी से नाड़ी संस्थान को बल मिलेगा तथा रक्त शुद्ध होगा। अतः चिकित्सा का सबसे मुख्य अंग खुली वायु में व्यायाम है और ऐसे स्थान में रहना है जहाँ शुद्ध ओषजन युक्त वायु मिलती रहे। शेष चिकित्सा स्नान इत्यादि दूसरे नम्बर पर हैं। व्यायाम के पश्चात् दूसरा नम्बर भोजन सुधार का है। जिन लोगों की वायु अधिक

बनने के कारण कब्ज़ रहता हो उनको मालिश से भी लाभ होता है। चोकर मिले आटे की रोटी खाना भी कब्ज़ को दूर करता है। प्रातः निहार मुँह शहतूत खाने से भी कब्ज़ दूर होता है। नीचे जो व्यायाम लिखे जाते हैं उनसे पुराने कब्ज़ को आराम होता है।

1. पलंग पर लेट कर शरीर को केवल सिर, कंधे और पैरों (एड़ी) के सहारे बिस्तर पर रखते हुये कमर से ऊपर नीचे के भागों को काफी ऊँचा उठा कर पहले दाहिनी ओर और फिर बाईं ओर लगातार दस दस बार ले जाइये, इसके पश्चात् शौच जाइये।

2. पहले एक प्याला (Cup) खूब गर्म पानी का पी लीजिये, फिर खड़े होकर कमर के पास से सामने ज़रा झुक जाइये। अब दोनों हाथों को पीछे ले जाकर घुटनों के पीछे के गढ़े के ऊपर हथेलियों से जोड़ दीजिये और इस तरह कसी कसाई अवस्था में अपने को ऊपर खींच कर सीधा करने का प्रयत्न कीजिये। आप पूर्ण सीधे तो न हो सकेंगे पर इससे पेडू और पेट पर ज़ोर पड़ेगा। इस प्रकार खींच कर तुरन्त ही ढील दे दीजिये और इसी प्रकार तीन चार बार करके एक दो मिनट रुक कर फिर गर्म पानी पीजिये और फिर इसी प्रकार व्यायाम कीजिये। इस प्रकार दस-पन्द्रह मिनट तक कीजिये।

ङ. **संग्रहणी (Sprue)–**यह एक प्रकार के पुराने दस्त हैं जो ग्रहणी के दोष से होते हैं। इस रोग में आँतें निर्बल हो जाती हैं। इनकी दीवारें पतली पड़ जाती हैं और कभी छत भी हो जाती है। इससे कभी आँतों की टी० बी० भी हो जाती है। दस्तों में कई प्रकार के कृमि भी पाये जाते हैं। इस रोग में रोगी का मुँह और जिह्वा लाल होकर दुखने लगते हैं और कभी इन पर छाले व छत हो जाते हैं। रोगी के मुँह से राल बहती है। भोजन निगलना कठिन होता है। दिन में विशेषतया प्रातः काल तीन बार दुर्गन्धित, झागदार, सफेद या मटियाले रंग के दस्त आ जाते हैं। रोगी दिन प्रतिदिन बहुत निर्बल

होता जाता है और उसका रंग फीका पड़ जाता है। इस प्रकार के दस्तों में दस्त रोकने वाली औषधियाँ रोग को दूर न करके रोगी को समाप्त कर देती हैं क्योंकि यह रोग उसी समय होता है जब शरीर में से निकलने वाले विकारों को बार बार औषधियों से दबाने का यत्न किया जाता है। एलोपैथिक चिकित्सा में भी पहले एरण्डी का तेल (Castor oil) देकर दस्त कराने का आदेश दिया है जिसका अर्थ यह है कि एलोपैथिक डाक्टरों को भी इसका अनुभव हो गया है कि दस्तों के विकार रोकने से हानि है। दूसरी बात एलोपैथिक डाक्टर यह भी कहते हैं कि इस रोग में जितना लाभ भोजन सुधार से होता है उतना औषधि से नहीं होता और कहते हैं कि इस रोग में केवल दूध का भोजन देने से ही कुछ रोगियों को पूर्ण लाभ हो जाता है; पर एक दो मास तक केवल दूध (गाय का) ही दिया जावे; गर्म नहीं किन्तु ठण्डा करके देने को कहते हैं। इसके अतिरिक्त ताज़े फल विशेषतया स्टावरी की उपयोगिता को भी अब एलोपैथिक डाक्टर लोग समझ चुके हैं; पर मांसादि अप्राकृतिक पदार्थों के भोजन तथा अफीम व संखिया इत्यादि औषधियों के हानिकारक प्रभाव को अभी तक एलोपैथिक डाक्टर नहीं समझ पाये हैं। इसी कारण उनको इस रोग में अच्छी सफलता नहीं मिलती और यह प्रसिद्ध हो गया है कि संग्रहणी तथा टी० बी० में डाक्टरी चिकित्सा की अपेक्षा आयुर्वेदिक चिकित्सा अधिक उपयोगी है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में प्राकृतिक साधनों द्वारा ही रोगी को अधिक लाभ होता है। इस सत्य को वैद्य महानुभावों को परीक्षण करके समझ लेना चाहिये। तब वह इन रोगों के शत प्रतिशत रोगी आरोग्य करने का श्रेय प्राप्त कर सकेंगे। सुवर्ण पर्पटी इत्यादि बहुमूल्य औषधियों से कुछ रोगियों को लाभ अवश्य होता है, पर कुछ को हानि भी वर्णनातीत होती है; पर प्राकृतिक साधनों से सभी को लाभ होता है और हानि एक को भी नहीं। हाँ जो रोगी अपनी जीवनी शक्ति को विषैली औषधियों द्वारा नष्ट कर के और अपने भीतर विकारों को

इतनी मात्रा में दबा कर प्राकृतिक चिकित्सा प्रारम्भ करते हैं कि उनकी जीवनी शक्ति विकारों को निकाल कर आरोग्यता प्राप्त करने में असमर्थ हो, ऐसे रोगियों की जान प्राकृतिक चिकित्सा से भी नहीं बचती; फिर भी कोई बेचैनी इत्यादि की हानि नहीं उठानी पड़ती। यहाँ हम पहले आयुर्वेदिक मत से रोग के कारण व लक्षण लिखते हैं:–

अतिसार निवृत्त होने पर अथवा मध्य में मन्दाग्नि वाला पुरुष अहित पदार्थों का सेवन करे तो उसके कुपथ्य रूप आहार से अग्नि पुनः दूषित हो कर ग्रहणी नाम की कला को (जो कि आमाशय और पक्वाशय के मध्य अन्न आदि को ग्रहण (पकड़ने धारणा) करने वाली 6वीं कला है) बिगाड़ देती है। तब वह बिगड़ी हुई ग्रहणी कला कच्चे अन्न को ग्रहण और पक्के अन्न को गुदा द्वारा त्याज्य कर देती है। इसी को संग्रहणी कहते हैं। यह चार प्रकार की होती है। 1.वातज, 2. कफज, 3. पित्तज, 4. सन्निपातज। इन कारणों से दूषित होकर वह ग्रहणी कला खाये हुये बहुतेरे आहार को कच्चा (बिना पाचन का) तथा पचे हुये को पीड़ा और दुर्गन्ध युक्त (कभी पतला कभी गाढ़ा) बाहर निकाल देती है।

1. **वातज संग्रहणी के कारण**---जो मनुष्य वादी पदार्थों को विशेष खावे, मिथ्या आहार बिहार करे और अति मैथुन करे तो वायु कुपित होकर उसकी जठराग्नि को बिगाड़ देती है। तब वातज संग्रहणी उत्पन्न होती है।

   लक्षण-खाया हुआ पदार्थ कठिनता से पचे, कण्ठ सूखे, भूख न लगे, प्यास अधिक लगे, कानों में भनभन शब्द हो, पार्श्व, जाँघ, और पेडू में पीड़ा हो, कभी कभी शरीर भर में सुई सी चुभें, हृदय में पीड़ा उठे, शरीर कृश हो जावे, जिह्वा में स्वाद न रहे, मीठे आदि भाँति भांति के पदार्थ खाने की इच्छा होवे, भोजन किये हुये आहार के पाचनान्तर पेट फूले अथवा भोजन करने से ही जीभ को सुख हो अन्यथा नहीं,

भोजन के पश्चात् पेट में गोला या तिल्ली की शंका रहे, बारम्बार मरोड़ें युक्त क्लेशपूर्वक अपशब्द करता हुआ झाग सहित रेचन होवे और श्वांस चले।

2. **कफज संग्रहणी के कारण:–**जो पुरुष भारी, चिकनी तथा शीतल वस्तु खावे तथा भोजन करके तुरन्त सो जावे उस पुरुष का कफ कुपित होकर जठराग्नि को नष्ट कर देता है।

लक्षण–अन्न क्लेश से पचे, हृदय में पीड़ा, वमन और अरुचि हो, मुख मीठा रहे, खांसी चले, पेट भारी रहे, मीठी डकारें आवें, स्त्री भी प्रिय न लगे, आमयुक्त मल उतरे, बल रहित शरीर पुष्ट हृष्ट पड़े और आलस्य अधिक आवे, तो उसको कफ संग्रहणी कहते हैं।

3. **पित्तज संग्रहणी के कारण**–जो व्यक्ति उष्ण वस्तु का अधिक सेवन करे, मिर्च आदि तीक्ष्ण (चरपरे), खट्टे और खारे पदार्थ विशेष खावे तो उसका पित्त दूषित होकर जठराग्नि को बुझा देता है; तब उसका कच्चा ही मल निकलने लगता है। इसे पित्तज संग्रहणी कहते हैं।

लक्षण:–कच्चा मल, नीले पीले वर्ण युक्त पानी सहित गुदा द्वार से निकले, खट्टी डकारें आवें, हृदय और कण्ठ में दाह हो, प्यास लगे और अरुचि हो जावे; यह पित्तज संग्रहणी के लक्षण हैं।

4. **सन्निपातज संग्रहणी के लक्षण**:–जिसमें वात, पित्त और कफ तीनों प्रकार की संग्रहणी के लक्षण मिलें तो सन्निपातज संग्रहणी जानो। इसी सन्निपातज संग्रहणी का एक भेद "आम वात संग्रहणी" भी है जिसके लक्षण इस प्रकार हैं–

आम वात संग्रहणी:–पतला, श्वेत, चिकना, आम युक्त और अधिक मल होवे, रेचन होते समय विशेष पीड़ा होवे, कटि में पीड़ा होती ही रहे, कुछ दिन पर्यन्त अच्छा रहे परन्तु 10-15 दिन अथवा मास

अनन्तर वैसा ही होने लगे अथवा बराबर ही होता रहे, आँतों में शब्द होता रहे, आलस्य आता रहे, शरीर दुर्बल हो जावे, पेट में पीड़ा होती रहे, दिन को ही यह रोग कुपित रहे पर रात्रि में शान्ति रहे।

इसी प्रकार संग्रहणी का एक भेद घटि यंत्र भी है जिसमें दोनों पार्श्व में शूल चलता है और पेट में शब्द होता है तथा और लक्षण ऊपर के होते हैं।

संग्रहणी के असाध्य लक्षण

सूअर के मांस की भांति मल हो, प्यास, दाह, अरुचि, श्वांस, हिचकी, पार्श्व शूल और मूर्च्छा हो, किसी काम में मन न लगे, गुदा पक जावे, अग्नि का नाश हो जावे अर्थात् कोई पदार्थ न पचे; ज्वर बराबर बना रहे, मूत्र बन्द हो जावे और शरीर का बल नष्ट हो जावे।

चिकित्सा

1. **उपवास**:–कफ की संग्रहणी में आरम्भ में तीन चार दिन का पूरा उपवास रोगी की शक्ति अनुसार कराना चाहिये। वायु और पित्त की संग्रहणी में एक दो दिन का ही पर्याप्त है और उपवास में भी बहुत निर्बल रोगी को अनार का रस दिया जा सकता है।

2. **पानी की पट्टी तथा कटि-स्नान:–**कफज संग्रहणी में एक बार तथा वायु और पित्तज संग्रहणी में दिन में कई कई बार कराना चाहिये।

3. **भोजन:–** उपवास के पश्चात् कुछ समय तक केवल अनार का रस और गाय का मठा अथवा गऊ दुग्ध और अनार का रस देना चाहिये। जिन लोगों की कफ प्रकृति होती है उन्हें प्रायः दूध अनुकूल नहीं पड़ता; उनको मठा और अनार का रस देना चाहिये। जिनकी वात तथा पित्त प्रकृति होती है उनको प्रायः दूध ही अनुकूल पड़ता है। जब तक दस्त बन्द होकर शौच प्राकृतिक अवस्था में बँधा हुआ न होने

लगे तब तक यही भोजन रहने देना चाहिये। जब दस्त बन्द हो जावें तब धीरे धीरे निम्नलिखित वस्तुयें भी देना चाहिये। मूंग अथवा अरहर की दाल का पानी, बिना मलाई का अथवा मक्खन निकले दूध का दही, धान की खील का माड़, बेल, मधु, केले का फल पका हुआ अथवा मुलायम केले की तरकारी, जामुन, करेला, पुराने साठी के चावल। जब यह वस्तुयें भली प्रकार पचने लग जावें तब मूंग मसूर की खिचड़ी और सब्जी रोटी खाना चाहिये तथा दूध का प्रयोग यदि पहले नहीं किया है तो अब शक्ति प्राप्त करने के लिये हर प्रकृति के मनुष्य को करना चाहिये। फलों में अनार और केला तथा कसेरू का प्रयोग अधिकतर करना चाहिये। पका बेल भी विशेष अच्छा है।

अपथ्य–रक्त स्राव, जागरण, अधिक पानी पीना, बहुत खाना, बहुत स्नान, विषय भोग, वेगों का रोकना, भैंस का दूध पीना, धूप में अधिक बैठना, जब दस्त आते हों तब गेहूँ, मटर, चने, हरी मटर, उरद, जौ, अदरक, सोया, पालक, लौकी, सेम, ककड़ी, गुड़, नारियल, बादाम इत्यादि मेवे, मिठाई, पकवान, पूरी, कचौड़ी, खटाई उत्पन्न करने वाले पदार्थ खाना तथा बहुत मेहनत करना भी इस रोग में मना है। हाँ शुद्ध वायु सेवनार्थ कुछ परिश्रम भी करना पड़े तो करना चाहिये। इस रोग में उपरोक्त प्राकृतिक साधनों के साथ सूर्य किरण चिकित्सा के साधनों और होम्योपैथिक औषधि से भी सहायता लेना हितकर है। सूर्य किरण चिकित्सा में पीले शीशे का प्रकाश पेट पर डालने से आंब गिरती है और गहरे नीले रंग से दस्त बन्द होते हैं और दस्तों में रक्त भी हो तो हल्के नीले रंग का प्रकाश उपयोगी है। प्रकाश डालने का प्रबन्ध न हो सके तो इसी रंग की बोतलों में पानी भरकर धूप में कम से कम तीन घण्टे रखकर वह पानी पिला सकते हैं ! पर यह सब गौण उपाय हैं। इस रोग में सब बड़ी चिकित्सा

उपवास और ऊपर बताया भोजन सुधार है। बुरा से बुरी अवस्था के रोगी इस उपाय से आरोग्य हो सकते हैं। लम्बे चलने वाले रोग में बीच बीच में उपवास करना भी हितकर है।

च. **पेचिश:–**मरोड़ के साथ शौच आना, शौच में आंब तथा रक्त अकेले या मिश्रित आना और बार बार शौच की प्रवृत्ति होने को पेचिश कहते हैं। वात, पित्त इत्यादि की अधिकता से इसके भिन्न भिन्न लक्षण होते हैं। डाक्टरी में इस रोग का कारण जो एक छोटा सा कृमि है जिसे डाक्टरी में अमोबा (Amoeba Dysenteric) कहते हैं जिसकी खोज सन 1856 ई० में की गई है। कच्चा और भारी भोजन, कच्चे मेवे व फल खाना, मांस मछली का अप्राकृतिक और दूषित भोजन, अशुद्ध जल का प्रयोग, पैरों में सर्दी लगना, गन्दे मकान में या घनी आबादी में रहना, पेट को सर्दी लगना, कोष्ठबद्धता का होना, बार बार दस्तावर औषधि का प्रयोग इत्यादि इसके कारण बताये जाते हैं। पर वास्तविक कारण कोलन में मल का चिपट जाना और उसकी सखती से छत पड़ जाना है। ऐसी अवस्था में जब उपरोक्त सहायक कारण उपस्थित होते हैं तभी पेचिश हो जाती है। पुरानी पेचिश में बड़ी आँतों की रूआबदार झिल्ली बारीक और निर्बल हो जाती है और ग्रन्थियों में गड़बड़ी होकर कभी सूजन आ जाती है और आँतों में छत पड़ जाते हैं। अपने देश में इस रोग की गिनती बहुत साधारण रोगों में है क्योंकि प्रायः लोग स्वयं ही अपनी चिकित्सा करके आरोग्य हो जाते हैं। केवल पुरानी पेचिश की चिकित्सा में कुछ कठिनाई पड़ती है, पर अँगरेज़ इस रोग से बहुत डरते हैं और प्रायः उनकी इस रोग से मृत्यु भी हो जाती है। आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा से किसी भी देश का रोगी पूर्णतया आरोग्य हो सकता है।

चिकित्सा

नई पेचिश में जब तक आँव आती रहे उस समय तक उपवास रखें अथवा अनार का रस सेवन करें। प्रातः सायं पेडू पर मिट्टी की पट्टी बाँधना और वस्ती कर्म करना चाहिये। इतने से लाभ न हो तो कटि-स्नान भी करना चाहिये। जब आँव बन्द हो जावे तब पहले गाय का मठा, फिर दही और फिर मठा अथवा दही और चावल व मूंग की खिचड़ी इत्यादि भोजन करना चाहिये। बेल का गूदा और बेल का शर्बत भी हितकर है। ऐंठन अधिक होने पर पेडू और पेट पर सेंक (Fomentation) करें अथवा गर्म और ठण्डे सेंक करें। जिस समय अधिक दर्द हो टब में गर्म पानी डालकर बैठने से कष्ट तुरन्त बन्द हो जाता है।

पुरानी पेचिश की चिकित्सा भी उपवास से आरम्भ करनी चाहिये। दो तीन दिन का उपवास, उसके पश्चात् रसाहार और फिर उपरोक्त भोजन। पुरानी पेचिश देर से जाती है। अतः आँव रहने पर भी उपरोक्त हितकारी भोजन किया जा सकता है। शेष चिकित्सा विधि वही काम में लाई जावे जो नवीन पेचिश में बताई गई है। हाँ बीच बीच में एक दो दिन का उपवास और अधिक लाभ करता है। पेड़ का पका ताज़ा अमरूद, चिपटी आँव के निकालने में सहायक होता है। इसबगोल की भूसी खाना भी हितकर है। होम्योपैथिक दवा एपीकाक नं॰ 200 (Ipecac 200) की एक मात्रा निहार मुँह खाकर फिर दो घण्टे तक कोई चीज़ न खाने से बहुत बार बड़ा लाभ होता है, पर उपरोक्त प्राकृतिक साधन पूर्ण रूप से काम में लाना चाहिये। आरम्भ में कुछ दिन वस्ती कर्म गर्म पानी से करना चाहिये।

छ. आँतों का क्षय–इस रोग की चिकित्सा पूर्ण रूप से "यज्ञ-चिकित्सा" नामक पुस्तक में दी गई है; वहाँ से देख लें।

ज. **विशूचिका (हैज़ा Cholera)–**एलोपैथी में इस रोग का कारण कालरा वैसीलस (Cholera Bacillus) अथवा हैज़ा का कृमि माना जाता है जिसको डा० कोख साहब ने, जिन्होंने टी० बी० का कृमि खोजा था, सन् 1883 में मालूम किया था। डाक्टरी सिद्धान्त से यह रोग उस कृमि के आँत में पहुँचने से होता है। पर वास्तव में इस कीड़े के आँत में पहुँचने पर भी रोग उसको होता है जिसकी आँत में पूर्व से विकार एकत्रित होते हैं अन्यथा उस कीड़े से कुछ नहीं हो पाता। विलायत में एक वैज्ञानिक ने, जो रोग कृमि की थ्योरी (Theory) को इस रूप में नहीं मानता था, बहुत से लोगों के सम्मुख कालरा के जर्म्स से भरी हुई शीशी पी ली और उसका प्रभाव उस पर कुछ नहीं हुआ; केवल एक उल्टी उसे अवश्य हुई। यह भी इसी को सिद्ध करता है कि रोग उसी को होता है जिसके शरीर में विकार एकत्रित होते हैं।

रोग लक्षण:–जब यह रोग होने को होता है तो पहले सुस्ती, आलस्य, बेचैनी और घबड़ाहट सी मालूम होती है। कभी हल्की सी सिर पीड़ा होती है और फिर दस्त तथा उल्टी होने लगती है। दस्त पहले साधारण मल के और उसके बाद चावलों की पोच जैसे आते हैं। इसके पश्चात् हाथ पैर ऐंठने लगते हैं, कभी सर और पेट में दर्द होता है, प्यास बहुत लगती है। बेचैनी और घबड़ाहट बढ़ जाती है और बहुत निर्बलता आ जाती है। दस्त और उल्टी में रक्त में का पानी का बहुत सा अंश निकल जाने के कारण रक्त गाढ़ा पड़ जाता है। अतः रक्त संचार बहुत धीमा होता है और शरीर की बाहरी गर्मी कम हो जाती है। थर्मामीटर बगल में लगाने से 95, 96 से ऊपर नहीं चढ़ता पर गुदा इत्यादि में लगाने से टेम्परेचर 102 - 104 होता है। ठण्डा पसीना आता है और सारा शरीर ठण्डा हो जाता है, मूत्र बन्द हो जाता है, नाड़ी निर्बल और रुक रुक कर चलती है, रोगी से बोला नहीं

जाता और यदि ऐसी अवस्था में भी ठीक चिकित्सा का अवसर न मिले तो रोगी जान तोड़ देता है। पर यदि इस अवस्था में भी रोगी की प्राण-शक्ति (जीवन-शक्ति) प्रबल बनी रहती है तो कै, दस्त और पसीना द्वारा शरीर के विकार निकल जाने पर शारीरिक अवस्था सुधरने लगती है और रोगी को नींद आ जाती है जिससे नाड़ी फिर तेज़ होकर ज्वर हो जाता है और मूत्र आ जाता है। यदि इस अवस्था में भोजन इत्यादि देकर गड़बड़ी न की जावे तो रोगी बच जाता है।

चिकित्सा

इस रोग में यदि रोग के पूर्व लक्षण अर्थात् सुस्ती, बेचैनी इत्यादि के समय अथवा पहला मल का दस्त आने पर यदि विशूचिका का सन्देह हो तो ठण्डे पानी से केवल एक बार वस्ती कर्म करा देना चाहिये पर अगली अवस्था चावल के पोच जैसे कै दस्त आरम्भ हो जाने पर वस्ती कर्म न कराकर केवल कटि-स्नान से काम लेना चाहिये। कभी कभी एक ही कटि- स्नान से लाभ हो जाता है। किन्तु जब जब दस्त आवें, दस्त के पश्चात् तुरन्त पाँच से दस मिनट तक का कटि-स्नान कराकर रोगी को खूब गर्म विस्तर पर लिटा देना चाहिये। कटि-स्नान के समय रोगी के पैर गर्म पानी में डूबे रहने चाहिये और टब का पानी खूब ठण्डा होना चाहिये। जिस कमरे में रोगी हो उसमें गूगल, लौंग, कपूर और नीम के पत्तों को कूटकर उसमें घी शक्कर मिलाकर इस सामग्री से हवन (यज्ञ) करना चाहिये अथवा इस सामग्री की धूनी देना चाहिये।

यदि रोगी ऐसी अवस्था में मिले कि कटि-स्नान कराना असम्भव है तो मिट्टी अथवा पानी की पट्टी देना चाहिये और हर पन्द्रह बीस मिनट के बाद पट्टी बदलते रहना चाहिये। यदि कै दस्त न रुकें तो जिस प्रकार भी सम्भव हो रोगी को ठण्डे पानी के टब में बिठाने का प्रयत्न करें क्योंकि जीवन मरण का प्रश्न है।

भोजन उस समय तक कुछ भी न दिया जावे जब तक कै दस्त बंद न हों और मूत्र न आ जावे और शरीर की गर्मी लौट कर रोग लौट आने का पूरा खटका दूर न हो जावे। हाँ प्यास लगने पर थोड़ा थोड़ा पानी देना चाहिये। पानी या तो कूप का ताज़ा हो अथवा उसमें नीबू का अर्क एक चौथाई मिला लें और एक दो चम्मच से अधिक एक बार न दें। कटि-स्नान के साथ होम्योपैथिक औषधि एपीकाक (Ipecac), आर्स (Arc), विरेत्रम एल्बम, इत्यादि लक्षण के अनुसार दी जा सकती है, अथवा बायकेमिक औषधि फेरमफास 6 X , काली फास 6X, नेट्रम फास 6 X, कल्केरिया फास 6 X तथा मेगनेशिया फास 3 X सब मिलाकर ढाई ढाई रत्ती की मात्रा में 15-15 मिनट के पश्चात् गर्म पानी के साथ देवें। यदि यह औषधि प्राप्त न हों तो 10 लौंग आधा सेर पानी में डाल कर आँच पर चढ़ा दें; डेढ़ पाव रहने पर उतार लें और ठंडा होने पर 1-1 चम्मच प्यास लगने पर देवें। यदि रोगी का शरीर बिल्कुल ठंडा हो गया हो और नाड़ी लुप्त हो गई हो तो यह अन्तिम अवस्था है; फिर भी निम्नलिखित उपायों से कभी ऐसे मरणासन्न रोगी भी अच्छे हो जाते हैं।

1. सबसे पहले सहने योग्य खूब गर्म पानी से लेटे लेटे ही वस्ती कर्म करावें।
2. देसी कपूर 1 तोला, रेक्टीफाइड स्प्रिट 10 तोला में पीस कर डाल लें और खूब मिला लें और इसकी सारे शरीर पर मालिश करें।
3. पेडू पर मिट्टी की गर्म पुलटस बांधे और हर पन्द्रह मिनट पर बदलते रहें।
4. बोतलों में गर्म पानी भर कर रोगी के बगल में रख दें तथा पैरों के नीचे भी रखें।

5. बायकेमिक औषधि काली फास 6 X हर पाँच मिनट के पश्चात् पांच पांच ग्रेन खाने को दें।

6. जायफल पानी में घिस कर नाभी में लगा दें।

7. कुछ गर्मी आ जाने पर मिट्टी की ठंडी पट्टी रखें और स्नान योग्य होने पर कटि-स्नान करावें।

भोजन – आरोग्य होने पर पहले संतरे या अनार का रस पानी मिला कर देवें। दूसरे दिन खालिस फलों का रस देवें, फिर एक दो दिन फल और बार्ली का पानी देवें, फिर गाय का दूध फाड़ कर और सब्जी का जूस बारी बारी से देवें, फिर गाय का खालिस दूध देवें, तत्पश्चात् सब्जी रोटी पर आवें। भोजन देने में शीघ्रता न करें अन्यथा रोग फिर लौट आता है।

नोट– एक लेखक का मत है कि एक तोला काली मिट्टी पानी में घोल कर और उबाल कर गरम गरम पिलाने से रोगी को शीघ्र लाभ होता है।

एक सज्जन ने एक हैज़ा के रोगी को गर्म पानी में नीबू पिला कर और पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बांध कर अच्छा कर लिया।

झ. बवासीर–बवासीर का रोग इस समय इतना अधिक फैला हुआ है कि कुछ लोग भ्रमवश समझने लगे हैं कि यह रोग सबको होता है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। बात यह है कि गुदा पर बहुत सी नाड़ियों के सिरे हैं जहाँ स्वस्थ अवस्था में रक्त आता है और लौट जाता है। किसी विशेष कारण वश इसका विवरण आगे आवेगा। उस रक्त का कुछ भाग वहाँ रुकने लगता है। तब जिस नाड़ी के सिरे पर वह रक्त रुकता है वह फूल जाती है और लटक जाती है, उसी को मस्सा कहते हैं। फिर जब कभी पेट खराब होने अथवा कोलन में मल एकत्रित होने के कारण उस स्थान पर वायु, पित्त तथा कफ में से कोई दोष बढ़ जाता है (विशेष तथा वायु के भरने से), तब मस्से फूल कर कष्ट देते हैं अथवा फट कर रक्त बहाते हैं। फिर जब किसी

प्रकार वह दोष ठीक किया जाता है तो रक्त बंद हो जाता है अथवा मस्से की सूजन कम होकर दर्द जाता रहता है पर मस्से का अस्तित्व बना रहता है जिसमें थोड़े से कुपथ्य से ही फिर शीघ्र कष्ट हो जाता है। इस कारण रोगी मस्से कटवाने, आपरेशन करवाने अथवा इन्जेक्शन से मस्से को नष्ट कराने की बात सोचता है पर इन सब चिकित्साओं का वास्तविक स्वरूप थोड़ी सी विवेक बुद्धि से समझ में आ सकता है। देखिये रोग का आदि कारण मस्सा नहीं है किन्तु वह अप्राकृतिक रहन सहन है जिसने कोलन को मल से भरा और उसके कारण वात, पित्त इत्यादि दोष कुपित हुये। अब सच्ची चिकित्सा के लिये सबसे पहले अपना रहन सहन प्राकृतिक बनाना होगा और जो विकार शरीर में इस समय एकत्रित हैं उनको निकालने के लिये सबसे प्रथम कोलन को और फिर रक्त को शुद्ध करना होगा। इस प्रकार मस्से स्वयं निर्जीव हो जावेंगे और कुछ समय में नाड़ियों के प्राकृतिक अवस्था में होने पर उनका अस्तित्व भी नष्ट हो जावेगा। इसके विपरीत यदि उपरोक्त साधनों द्वारा मस्सों को दबाया अथवा काटा गया तो सम्भव है कि थोड़े समय के लिये ऐसा लगे कि रोग समाप्त हो गया, पर आदि कारण विकार शरीर में विद्यमान रहने से या तो कोई दूसरा रोग उत्पन्न होगा अथवा थोड़े समय के पश्चात् वही मस्से फिर से होकर कष्ट देने लगेंगे। अतः बुद्धि से काम लेकर हमें सन्मार्ग ग्रहण करना चाहिये। आइये पहले

रोग के कारण

पर विचार करें।

1. सबसे मुख्य कारण मलाशय का मल से भरा होना है क्यों कि उसका दबाव रगों (नाड़ियों) पर पड़ता है और जब मल सूख जाता है तो उसके निकालने के लिये मनुष्य को शौच समय बड़ा बल लगाना पड़ता है जिससे नाड़िये नीचे को लटक जाती हैं।

2. यकृत के ऐसे रोग जो रक्त नाड़ी शिरा के काम में बाधक होकर दूषित रक्त को हृदय की ओर शुद्ध होने के लिये ले जाने में रुकावट डालते हैं।

3. फुफ्फुस के ऐसे रोग जिनके कारण फेफड़ों की कोठरियों में कोई दोष आता है और उनके काम में बाधा पड़ती है। शराब इत्यादि हानिकारक पदार्थों का प्रयोग तथा शारीरिक परिश्रम से जी चुराना और पेटूपन (स्वार्थ पन) का स्वभाव होना, इत्यादि। वात, पित्त तथा कफ दोषों को उत्पन्न करने वाले कारण पृथक पृथक इस प्रकार हैं।

वायु के कारण

कड़वा, कसैला, चरपरा, रूखा, ठंडा और बहुत ही हल्का भोजन करना अथवा बहुत थोड़ा खाना, समय पर भोजन न करके समय कुसमय खाना, बहुत तेज़ शराब पीना, बहुत विषय भोग करना, बिना आवश्यकता के उपवास करना, बहुत ठंडे स्थान में रहना, सर्दी खाना, शक्ति से अधिक व्यायाम करना, बहुत चिंता करना, वायु व धूप में आवश्यकता से अधिक घूमते रहना–इन बातों से वायु कुपित होकर वातज बवासीर उत्पन्न होती है जिसका वेग अधिकतर जाड़ों में बढ़ता है।

पित्त के कारण

कड़वा, खट्टा और नमकीन रस आवश्यकता से अधिक प्रयोग करना। अधिक व्यायाम करना, आग के सामने अथवा गर्मी के दिनों में बहुत समय तक धूप में रहना, शक्ति से अधिक पुरुषार्थ करना, बहुत गर्म देश में रहना, बहुत क्रोध करना, बहुत शराब पीना, ईर्षा, द्वेष करना, बहुत गर्म पदार्थ खाना इत्यादि। पित्त की बवासीर प्रायः गर्मी में ज़ोर करती है।

कफ के कारण

मीठे, चिकने, शीतल, खारी, खट्टे और भारी पदार्थों का अधिक खाना, व्यायाम न करना, दिन में सोना, गद्दे तकिये पर पड़े रहना, पूर्व का हवा खाना, शीतज देश में रहना, शीतकाल में अपने को गर्म न रखना और अपने कर्त्तव्य से विमुख रहना इत्यादि। यह शीत प्रधान देश में ज़ोर करती है।

बवासीर के भेद

1 वातज, 2 पित्तज, 3 कफज, 4 सन्निपातज, 5 रक्तज, 6 सहज। इस प्रकार यह छः भेद बवासीर के हैं। दो दो दोष मिल कर और भी भेद हो सकते हैं पर जन-साधारण में यह वादी और खूनी दो नामों से प्रसिद्ध है। कहीं कहीं लोग रियाही के नाम से तीसरी प्रकार की भी जानते हैं जो वास्तव में वातज बवासीर का ही एक भेद है। औषधियों द्वारा चिकित्सा करने वालों को इन सब भेदों का पूर्ण रूप से जानना परमावश्यक है अन्यथा औषधि से लाभ के स्थान में हानि भी हो सकती है। हमें अनेकों ऐसे रोगी देखने को मिले हैं जिनका रोग ऐसा कठिन न था और यदि वह कोई चिकित्सा न कराते तो पचासों वर्ष बवासीर का रोग रहने पर भी इस रोग से उनकी मृत्यु नहीं हो सकती थी; पर चिकित्सकों की भूल से उनका शरीरान्त इसी रोग से हुआ, और कुछ को उस चिकित्सा से ऐसी हानि पहुँची कि मरे तो नहीं पर दसों वर्ष मुर्दा से बदतर जीवन व्यतीत करना पड़ा। केवल प्राकृतिक चिकित्सा में उपरोक्त भेदों से चिकित्सा में कोई अधिक प्रभाव नहीं पड़ता फिर भी भोजन इत्यादि में अन्तर अवश्य पड़ता है। अतः प्राकृतिक चिकित्सकों को भी बवासीर की चिकित्सा करने से पूर्व इन भेदों का ज्ञान लेना हितकर ही होगा। शरीर रचना के भेद से भी यह तीन प्रकार की होती है।

1. गुदा के भीतरी भाग में प्रवाणी नामक वली है जो कि मल व पवनादिको बाहर निकालती है। इसमें जब मस्से हो जाते हैं तो वह बाहर नहीं निकलते

और कष्ट भी अधिक देते हैं और बड़ी कठिनता से जाते हैं अथवा नहीं जाते हैं। जो लोग भूल से ऐसी बवासीर का आपरेशन कराते हैं उनकी प्रायः मृत्यु हो जाती है अथवा नासूर हो जाता है। हमारे एक सम्बन्धी जो कि स्वयं एलोपैथिक डाक्टर थे इसी भूल का शिकार हो गये जबकि उनकी अवस्था केवल 30 वर्ष की थी।

2. मध्य भाग में सर्जनी नामक वली है जो मल व पवनादि को छोड़ती है। इसमें रोग होता है तब कष्ट साध्य होता है पर पहली की अपेक्षा सुगमता से अच्छा हो जाता है।

3. बाहरी भाग में जो तीसरी वली है वह पवनादि के छूटने पर गुदा को पूर्ववत ढक देती है। इसमें मस्से हों तो बहुत सुगमता से अच्छे हो जाते हैं। इसी प्रकार की बवासीर को अधिकतर डाक्टर आपरेशन या इन्जेक्शन से और वैद्‌य लोग संखिया, नीला थोथा इत्यादि औषधि लगा कर अथवा अताई हकीम थूहड़ का दूध इत्यादि से बनी औषधियों द्‌वारा मस्से गिरा कर रोगियों को अच्छा करके प्रसिद्‌धि प्राप्त कर लेते हैं और फिर अपनी भूल से उपरोक्त प्रकार के रोगियों को हानि पहुँचाते हैं।

बवासीर के पूर्व रूप

बवासीर होने से पूर्व रोगी को निम्नलिखित कष्ट होते हैं। पेट में बोझ और भरा हुआ मालूम होना, पाचन विकार, रीढ़ में पीड़ा, सिर में पीड़ा, चित्त उदासीन, कार्य करने को मन न हो विशेषतया मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करना बहुत ही दुष्कर हो, बराबर मल बन्द रहे और औषधियों से भी दूर न हो, यदि दूर हो तो फिर शीघ्र हो जावे। पतला शौच आने पर भी ज़ोर लगाना पड़े, पेट में वायु अधिक उत्पन्न हो, कभी डकारें आवें, कभी पेट फूल जावे, कभी बहुत जल्दी जल्दी वायु छूटे, कभी गुदा में खुजली चले, कभी बार बार शौच की इच्छा हो और थोड़ा थोडा मल आवे, पेट में दर्द रहा करे, दोनों जांघों की शक्ति क्षीण हो जावे और शरीर

में निर्बलता मालूम हो। इसे कुछ लोग रियाही बवासीर भी कहते हैं पर वास्तव में यह बवासीर के पूर्व रूप हैं।

रोग लक्षण

गुदा में खुजली, जलन, दर्द इत्यादि होना, यदि रक्तार्ष होती है तो गुदा से रक्त जाने लगता है। कभी तो शौच के साथ मिला हुआ रक्त आता है और कभी दो चार बूँदें पृथक निकल पड़ती हैं। कभी ऐसा होता है कि जलन इत्यादि कुछ न होकर रक्त आ जाता है और रोगी रक्त को देखकर समझता है कि कोई गर्म चीज़ खाने से रक्त आ गया। दो चार दिन रक्त आकर प्रायः स्वय ही बन्द हो जाता है और फिर मास दो मास अथवा वर्ष दो वर्ष पश्चात् आ जाता है। कभी आरम्भ से ही रोग का ज़ोर हो जाता है और बराबर आता रहता है और बिना चिकित्सा के बन्द नहीं होता। फिर धीरे धीरे मस्से निकल आते हैं। मस्सों की संख्या भी प्रायः धीरे धीरे बढ़ती है। वैसे तो रक्त का वेग भी धीरे धीरे बढ़ता है पर कुपथ्य से शीघ्र ही बढ़ जाता है और रक्त का दौरा भी शीघ्र शीघ्र होने लगता है। मल त्याग के अतिरिक्त भी रक्त निकला करता है जिससे कपड़े और विस्तर बिगड़ जाते हैं और कभी शौच के समय रक्त की धार चलती है और सेरों रक्त निकल जाता है। एक रोगी को पहले ही दौरे में सेरों रक्त आया और वह हृष्ट पुष्ट होने पर भी निर्बल तथा पीला पड़ गया। कई मास की चिकित्सा के पश्चात् पूर्ववत अवस्था को प्राप्त कर सका।

वादी बवासीर–इसमें रक्त नहीं आता किन्तु दर्द, जलन, कोचन, खाज इत्यादि इतनी होती है कि कभी कभी रोगी दर्द से दुःखी होकर जीवन से मृत्यु को अच्छा समझता है, किन्तु सर्वदा और सब रोगियों को ऐसा कष्ट नहीं होता। जब तक रोग हल्का रहता है तब तक दो चार दिन में कष्ट स्वयं ही कम हो जाता है; पर जब रोग बढ़ जाता है तो कष्ट अधिक होता है और दौरा भी शीघ्र होता है। खुजलाते खुजलाते त्वचा और मस्से कट तथा छिल जाते हैं जिससे दर्द तथा जलन होने लगती है। जब रोग और बढ़ जाता है तो प्रायः सर्वदा थोड़ा बहुत

कष्ट बना रहता है। चलने फिरने और उठने बैठने में भी कष्ट होता है। मल बद (कब्ज़) जो इस रोग की जड़ है सर्वदा बना रहता है। शौच के पश्चात् कष्ट और बढ़ जाता है। एक कठिनता यह पड़ती है कि उधर तो रोगी कष्ट के भय से शौच जाने से जी चुराता है और इधर कोलन मल से भरे होने के कारण वायु और अफरा इत्यादि का कष्ट बार बार शौच जाने को विवश करता है और मल सूख जाने तथा आँत में चिपट जाने के कारण पेट साफ़ नहीं होता। कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि गुदा में काँटा चुभ रहा है। कभी मीठा मीठा दर्द, तपकन और गुदा में कुछ अड़ा हुआ सा मालूम देता है। कभी ऐसा लगता है कि गर्म सलाख कोंच दी गई है। बिच्छू के डंक का सा तनाव और गुदा पर बोझ सा प्रतीत होता है। मस्से सूजकर गुदा को बंद कर देते हैं। इस कारण शौच आने में बड़ी कठिनता होती है। चिकित्सकों की भूल से कभी मस्से पककर शौच आने का मार्ग नितान्त बंद कर देते हैं, तब बड़ी कठिनता पड़ती है। ऐसी अवस्था में केवल आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा अथवा होम्योपैथिक चिकित्सा ही रोगी की सहायता कर सकती है।

चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा में वस्ती कर्म और भोजन सुधार का प्रमुख स्थान है तथा कटि-स्नान, मिट्टी की पट्टी, भाप और गर्म पानी में बैठना आदि साधनों का सहारा भी लेना होता है ! अधिक कष्ट में देशी जड़ी बूटी और होम्योपैथिक औषधि भी कष्ट को तुरन्त दूर करने में अपना अच्छा चमत्कार दिखाती हैं। सूर्य चिकित्सा के अन्तर्गत रंगीन बोतलों से तैयार किया पानी व तेल भी कष्ट कम करने में सहायता देते हैं। पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करने के लिये चिकित्सा क्रम इस प्रकार बनाना चाहिये।

1. कष्ट आरम्भ होते ही नित्य प्रति एक अथवा दो बार वस्ती कर्म करावे और इसे उस समय तक जारी रक्खें जब तक कष्ट दूर न हो जावे। आगे चलकर इसे नित्य के स्थान में सप्ताह में एक दो बार किया जा सकता है। यदि

मस्सों की अधिक सूजन इत्यादि के कारण पहले दिन वस्ती कर्म कराना असम्भव हो (कठिन नहीं) तब भी अन्य क्रियाओं से कुछ सूजन कम होते ही वस्ती कर्म अवश्य करावे क्योंकि मलाशय बिना शुद्ध हुये रोग की जड़ जाना असम्भव है।

2. पहले एक दो दिन उपवास करें। इच्छा होने पर गर्म पानी में नीबू निचोड़कर पीवें। उससे तुष्टि न हो तो संतरे का रस पी लें। उपवास के पश्चात् दो दिन केवल फलाहार करें और गाय का मठा सेंधा नमक और जीरा डालकर पीवें; फिर एक समय सब्जी, रोटी और दो बार मठा तथा फल खावें। जब कोई कष्ट न रहे तब भी कुछ दिनों तक रोटी के साथ सब्जी और फल ही खाते रहें। दाल न खावें और एक बार गाय का मठा पीते रहें।

3. साधारण रोग तो उपरोक्त साधनों से ही दूर हो जावेगा; कठिन साध्य रोग के लिये उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त दोनों समय कटि-स्नान करें। मस्सों पर मिट्टी की पट्टी बाँधे अथवा गेंदे के पत्तों को पीसकर उसकी पुलटस बाँधे। वायु तथा कफ की बवासीर में गर्म पुलटस और पित्त की बवासीर में ठंडी पुलटस बाँधना चाहिये। गर्म पुलटस ठंडी होने पर और ठंडी पुलटस गर्म होने पर बदल देना चाहिये। ठंडी पट्टी व पुलटस से कभी सूजन बढ़ जावे तो मस्सों को भाप देना चाहिये। इससे सूजन घट जावेगी।

4. वादी बवासीर में जिस समय बहुत कष्ट हो रहा हो तो टब में गर्म पानी भरकर बिठाने से रोगी को तुरन्त आराम मिलता है। बैठना उसी प्रकार चाहिये जैसे कटि-स्नान में बैठते हैं पर पेडू मलने की आवश्यकता नहीं है।

5. रक्तार्ष में बस्ती कर्म में खूब ठण्डा पानी प्रयोग करें और दर्द के समय टब में बिठाने को भी ठएडे पानी का प्रयोग करें। रात्रि में सोते समय दो छटाँक खूब ठएडा पानी (गर्मी में बर्फ भी मिला सकते हैं) बस्ती यंत्र अथवा ग्लैसरीन सिरंज की सहायता से गुदा में चढ़ाकर रोगी को सुला दें और जब तक शौच की अधिक इच्छा न हो, रोगी को रोके रहने को कहें।

6. दो तोले गेंदे के पत्तों का रस निहार मुँह पीना अथवा अनार का एक कप रस पीना या एक तोला ज़ीरा पानी में पीसकर पीना रक्त बन्द करता है। इसी प्रकार पीले फूल के कसौदी के पत्ते और कनी तीन माशे पीसकर पीना, खूनी और वादी दोनों प्रकार की ऐसी बवासीर में उपयोगी है जिसमें दर्द इत्यादि होता हो।

7. जिस बवासीर में मस्सा लाल हो अथवा नवीन निकल रहा हो, दर्द बहुत तीव्र हो और रोगी छटपटा रहा हो, उसमें एक मात्रा होम्योपैथिक दवा एकोनाइट 3 देने से और जिसमें काँटा सा चुभ रहा हो उसमें इग्नेशिया 6, जिसमें जलन पड़ रही हो ओर बेचैनी और प्यास हो उसमें आरसेनिक 30 और जलन हो पर बेचैनी न हो उसमें सल्फर 30, जिसमें बार बार शौच की प्रवृत्ति हो पर शौच खुलकर न हो उसमें भोजन के एक घण्टे पश्चात अथवा सोते समय नक्स 30, जिसमें जलन के साथ काला रक्त आता हो उसमें हेमामेलिस 6 और जिसमें लाल पतला रस हो उसमें फेरमफास 6 पाउडर देने से लाभ होता है। पर वास्तव में होम्योपैथिक दवा चुनने का कार्य एक योग्य डाक्टर ही कर सकता है। समय पर उसकी सहायता लेनी चाहिये। इसी प्रकार जड़ी बूटी से पूर्ण लाभ उठाने के लिये योग्य वैद्य की सहायता की आवश्यकता है। हाँ ऊपर जो प्राकृतिक साधन बताये गये हैं उनका उपयोग प्रत्येक रोगी स्वयं कर सकता है और उनसे कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है।

रोग को जड़ से दूर करना—इसके लिये रोगी आपरेशन, इन्जेक्शन और मस्से गिराने की चिकित्सा कराया करते हैं, उनकी हानियाँ हम ऊपर बता चुके हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में निम्नलिखित साधन से बिना किसी हानि के भय से रोग जड़ से दूर हो जाता है।

1. उपरोक्त सब प्राकृतिक साधनों को आवश्यकतानुसार काम में लाकर रोग के दौरे को शांत करके साधारण अवस्था प्राप्त कर लें।

2. नित्य प्रति प्रातः काल बस्ती कर्म करने के बाद ठण्डे पानी के टब में पैर बाहर करके बैठ जावें और इच्छा शक्ति से मस्सों और गुदा को सिकोड़ने का प्रयत्न करें। 30 मिनट तक बराबर यह प्रयत्न जारी रखें। यदि पानी कुछ गर्म हो जावे तो उसमें कुछ और ठण्डा पानी मिलवा लें। 60 फर्नेहाइट का पानी सर्वदा टब में रहना चाहिये। इससे अधिक ठंडा रहने से कोई हानि नहीं पर इससे कम ठंडा न रहना चाहिये। लगातार एक मास तक ऐसा करने से असाध्य रोग को छोड़ कर शेष सब प्रकार की बवासीर जड़ से चली जाती है और मस्से भी सिकुड़ जाते हैं। उपवास इत्यादि का जो क्रम पहले लिखा है उसका प्रयोग करने के पश्चात् ही दौरा समाप्त होने के पश्चात् यह प्रयोग जारी कर दें और जब से इसे आरम्भ करें नित्य प्रति भोजन में फलों की अधिकता रखें। नियत समय पर भोजन करें। प्रातःकाल के जलपान में गऊ का ताज़ा मठा ज़ीरा और सेंधा नमक डालकर पीवें और दोपहर के भोजन के उपरांत भी आधा पाव से लेकर दो पाव तक इच्छानुसार गऊ का ताज़ा मठा इसी प्रकार पीवें।

आसन द्वारा बवासीर की चिकित्सा

पहले बस्ती कर्म से पेट साफ़ करें और फिर भोजन ऐसा करें कि मल बन्द न होने पावे, यदि हो तो बीच बीच में वस्ती कर्म से सहायता लें।

2. एक कम्बन्त या शीतल पाटी बिछाकर उस पर भूमि के ऊपर बैठ जाओ और पैरों को सामने फैला कर सीधा रखो। एकवार खूब वेग से श्वास बाहर फेंक कर धीरे धीरे श्वांस द्वारा वायु खूब अच्छी तरह भर लो। अब दाहिने हाथ से दाहिने पैर का और बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा खूब ज़ोर से पकड़ो। जब श्वांस फूलने लगे और तुम रोक न सको तो श्वांस बाहर निकाल दो और अंगूठा भी छोड़ दो। इस प्रकार पहले दिन तीन बार करो और फिर अपनी शक्ति के अनुसार बढ़ाकर 21 बार पर ले जाओ। इस बात का ध्यान रखो कि पैर सीधा और तना हुआ रहे। अभ्यास करने में सम्भव है कि दो

एक दिन कठिनाई हो पर शीघ्र अभ्यास हो जाने पर कोई कठिनाई न रहेगी। इस आसन को नित्य प्रति करने से न केवल बवासीर दूर हो जावेगी किन्तु यकृत सम्बन्धी कोई रोग कभी न होगा।

आसन नं॰ 2

शीर्षासन से भी इस रोग को लाभ होता है तथा पेट और रक्त के और विकार भी नष्ट होते हैं। उसकी विधि इस प्रकार है।

प्रातःकाल अथवा सायंकाल जब पेट खाली हो दीवार के निकट भूमि पर हाथ रख कर दीवार के सहारे पैरों को ऊपर ले जाओ ले जाओ और हाथों के ऊपर उलटे खड़े हो जाओ। प्रारम्भ में दीवार से पैर हटाने पर आप गिर सकते हैं; अतः किसी दूसरे मनुष्य से पैर पकड़वा कर उलटे खड़े रहो। कुछ समय में अभ्यास हो जाने पर आप स्वयं खड़े रहेंगे और फिर दीवार के सहारे की भी आवश्यकता न रहेगी; आप पृथ्वी पर हाथ रख कर यों ही उलटे खड़े हो सकेंगे। पहले दिन 1 मिनट से अधिक यह आसन न करो; धीरे धीरे समय बढ़ाकर 15 मिनट तक यह आसन कर सकते हैं। कुछ लोग हाथों के स्थान में सिर को भूमि पर रख कर उलटा खड़ा होने का विधान करते हैं। सम्भव है कि किन्हीं लोगों के लिये यह अनुकूल पड़ता हो पर कुछ को इससे हानि भी पहुँचता है। हमने जो विधि लिखी है उससे किसी को भी हानि होने की सम्भावना नहीं है।

बवासीर में पथ्य

यह बात समझ लेना चाहिये कि जिस प्रकार सर्दी गर्मी का प्रभाव गले पर होता है, इसी प्रकार गुदा पर भी होता है। अतः सील के स्थान पर, भीगे कपड़ों पर अथवा गर्म स्थान पर, गर्म बालू पर, तथा कड़ी चीज तिपाई, तख्त इत्यादि पर बहुत समय तक बैठना बवासीर वाले को हानिकारक है। बेंत की बुनी कुर्सी पर बैठना अथवा बान की बुनी चारपाई पर कालीन बिछा कर लेटना अच्छा है। खुली वायु में हल्का व्यायाम, मुग्दर घुमाना, पैदल घूमना अथवा टेनिस खेलना

अच्छा है। रात को सोने से पूर्व शौच जाने का स्वभाव बनाना बवासीर के दौरे के दौरे होने को रोकता है। मल त्याग के पश्चात् गुदा में खूब ठण्डे पानी और अधिक पानी का प्रयोग हित कर है। नित्य प्रति ठण्डे पानी से स्नान और विशेष रूप से गंगा इत्यादि नदी का स्नान हित कर है। गंगा स्नान से कठिन रोगी भी अच्छे हो चुके हैं। भोजन में समूची मूंग, मोठ, पालक का साग, बथुआ, कुलफा, चौलाई, मूली, शलजम, पपीता, तुरई, लौकी, परवल, टिण्डा, ज़िमीकन्द, गाजर, चुकन्दर अच्छा है। गेहूँ की रोटी, दलिया, आटे की पूरी, चीले, धान की खील इत्यादि चीजें पथ्य हैं। मेवा में किशमिश, मुनक्का, अन्जीर व खजूर खा सकते हैं। फलों में पपीता, सेब, अनार, सन्तरा, अंगूर, खरबूजा, पतले रस का देशी आम दूध के साथ, गन्ना, सीताफल, ख्वानी, खीरा, शहतूत, नीबू, आलू बुखारा, लीची, फालसा, कसेरू, खिन्नी, आडू, लुकाट व आलूचा खा सकते हैं। बताशे में रख कर बरगद का दूध 10-5 बूंद प्रातः काल खाना पित्त और वात की बवासीर में हित कर है।

अपथ्य

प्रातःकाल देर से उठना, उकडू बैठना, वेगों का रोकना, साइकिल व घोड़े की सवारी, रात को देर तक जागना तथा दौरे की अवस्था में विषय भोग हानिकारक है। भोजन में उड़द, चना, बाजरा तथा इनके बने पदार्थ, बैंगन, घुइयाँ, गंगा फल, करेला, मटर, गोभी, करमकल्ला, वाकला, सेम, लुभिया, सिरका, तेल, अचार, मैथी, अदरक, लहसुन, माँस, मदिरा, बासी भोजन, गर्म मसाले, आइसक्रीम, बालूशाही इत्यादि पकवान और बिना खूब चबाये भोजन करना हानिकारक है।

ज. मन्दाग्नि (Dyspepsia) व अपच (Indigestion)

मन्दाग्नि का रोग भी इस समय हमारे देश में इतना बढ़ गया है कि किसी न किसी रूप में सौ में निन्यानबे व्यक्ति इस रोग से पीड़ित हैं। इसके कारण निम्नलिखित हैं।

1. खान पान में अनियमता जैसे:– खाये हुये पर फिर खा लेना।

2. माँस और मदिरा तथा बहुत चटपटे मसालों का अधिक प्रयोग करना।
3. नित्य प्रति बहुत भारी भोजन करना।
4. भोजन के साथ अधिक जल प्रयोग करना।
5. किसी विषैली औषधि के प्रयोग अथवा किसी अन्य कारण से आमाशय, यकृत, आँत इत्यादि के पाचक रसों का बिगड़ जाना अथवा न्यूनाधिक उत्पन्न होना।
6. आँतों की कार्य करने की शक्ति का घट जाना जिससे भोजन का आवश्यकता से अधिक समय तक बिना पचे पड़ा रहना।
7. चाय, तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी इत्यादि का प्रयोग करना।
8. बहुत अधिक पढ़ना अथवा अधिक व्यायाम करना या बिलकुल परिश्रम न करना किन्तु सुस्त पड़े रहना।
9. बहुत चिन्ता करना अथवा किसी गम्भीर विषय पर बहुत समय तक विचार करते रहना।
10. रक्त का दूषित होना और उसमें खार और खटाई का अनुपात ठीक न रहना।
12. गठिया इत्यादि रोगों का होना।

आयुर्वेद का मत है कि मनुष्यों में चार प्रकार की जठराग्नि होती है।

1. सम अग्नि–जिस पुरुष की प्रकृति में वात, पित्त और कफ–इन तीनों दोषों की सामान्य दशा होती है उसकी सम अग्नि होती है।
2. तीक्ष्ण अग्नि–पित्त की अधिकता से तीक्ष्ण अग्नि होती है। भूख बहुत लगती है।

3. विषम अग्नि–वात प्रकृति वाले को वात की अधिकता से विषम अग्नि होती है; अर्थात् कभी भोजन खूब अच्छी तरह पच जाता है और कभी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है।

4. मन्दाग्नि–कफ प्रकृति वाले पुरुष को कफ का अधिकता से मन्दाग्नि होती है।

इस समय उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त देश में फैले हुये मन्दाग्नि रोग के कारणों में ब्रह्मचर्य का अभाव, रोज रोज़ सिनेमा देखना, बनस्पति घी का प्रयोग, चाय, सिगरेट पीना, मूंगफली और चाट तथा बर्फ का अधिक प्रयोग और परीक्षाओं की होड़ में शक्ति से अधिक पढ़ना है। पढ़ाई और चाट तथा बर्फ के अधिक प्रयोग के कारण लेखक स्वयं भी अपनी प्रारम्भिक युवावस्था में बहुत ही कठिन Dyspepsia रोग में फंस चुका है। इस कारण केवल चिकित्सक के नाते ही नहीं वरन् रोगी होने के नाते भी इस रोग का अनुभव रखता है। जो रोगी इस रोग को केवल औषधियों और डाक्टरों के भरोसे छोड़ना चाहते हैं वह नितांत भ्रम में पड़े हैं। इस रोग को पूर्णतया दूर करने के लिये रोगी को स्वयं अपने जीवन तथा रहन सहन में आधारभूत परिवर्तन करना होता है। इस रोग के लक्षण तो भिन्न भिन्न रोगियों में भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न होते हैं पर प्रायः निम्नलिखित होते हैं।

रोग लक्षण

भोजन करने के तीन चार घण्टे पश्चात् पेट में दर्द, तनाव, भारीपन और बेचैनी इत्यादि होती है। कभी मचली आती है और कभी उलटी हो जाती है। कभी दस्त आते हैं तो कभी मल बंद हो जाता है। पेट में प्रायः दर्द हुआ करता है। श्वांस से दुर्गन्ध आती है। कभी ज्वर हो जाता है। डकार आकर खट्टा पानी मुँह में भर आता है। मूत्र गन्दा होता है और जिस स्थान पर किया जाता है वहाँ कुछ चीज नीचे जम जाती है। डाक्टरी जाँच से एल्ब्यूमन मालूम होता है। रोगी के विचार बदला करते हैं। कभी हिम्मत हार कर बैठ जाता है, किसी कार्य के करने

को जी नहीं होता और समझता है कि इस रोग से मरना ही है। कभी फिर उत्साह बढ़ जाता है। किसी किसी रोगी को मचली सी होकर बेहोशी सी हो जाती है जो अपान वायु छूटने पर दूर हो जाती है। मुँह की कान्ति जाती रहती है और रोगी निर्बल होता जाता है। वह हर समय रोग के ध्यान में रहता है और सबसे इसी विषय की बात चीत करना चाहता है और इच्छा रखता है कि अन्य लोग भी उससे सहानुभूति प्रकट करें। इत्यादि।

चिकित्सा

1. पहले शक्ति अनुसार एक, दो व तीन उपवास करें और फिर बीच बीच में भी उपवास करते रहें।

2. यदि मल बन्द रहता हो तो पहले तीन दिन दोनों समय कोसे (बहुत कम गर्म) पानी से और फिर ठण्डे पानी से वस्ती कर्म करें और फिर हर चौथे व आठवें दिन ताज़े ठण्डे पानी से वस्ती कर्म करते रहें।

3. प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व भ्रमण को जाना प्रारम्भ करें। पहले अपनी शक्ति अनुसार इतना घूमें कि अधिक थकान न हो, फिर धीरे धीरे बढ़ा कर 10 मील का भ्रमण कर सकें तो बहुत अच्छा है अन्यथा पुराने रोगी 5-6 मील का भ्रमण तो कर ही लें। जब कुछ शक्ति शरीर में आजावे तो अन्य हल्के व्यायाम ताड़ासनादि करें अथवा टेनिस खेलें।

4. उपवास के पश्चात् 1-2 दिन फल अथवा मठा या दूध पीवें फिर सब्जी रोटी इत्यादि व फल खाते रहें। दाल या तो बिल्कुल न खावें या बहुत कम खावें।

5. दोपहर के भोजन के उपरान्त गऊ का ताज़ा मठा सेंधा नमक, जीरा और सोंठ डालकर पीवें और भोजन से पूर्व तीन माशे अदरक सेंधा नमक के साथ खा लिया करें।

6. जिस रोगी को खारी, बुसी अर्थात् दुर्गन्धित डकारें आती हों, भोजन पचता न हो, पेट भारी रहता हो, उसी को अदरक व नमक खाना चाहिये और भोजन में अन्य मसालों का भी प्रयोग करना चाहिये।

7. जिस रोगी को खट्टी डकारें आती हों और कलेजा जलता हो उसे न तो अदरक का प्रयोग करना चाहिये और न भोजन में मसाले ही खाना चाहिये, किन्तु फलों का प्रयोग अधिक करना चाहिये। एक समय केवल फल और एक समय सब्जी रोटी खावें। जलपान में गाय या बकरी का धारोष्ण दूध पीवें। जब आमाशय में खटाई न रहे तब थोड़ा मसाला प्रयोग कर सकते हैं। ऐसे रोगी को भोजन के तीन घण्टा पश्चात् आधा गिलास गुनगुने पानी का पी लेना उपयोगी है।

8. बहुत से रोगियों को इन्हीं साधनों से पूरा लाभ हो जावेगा। हाँ हाज़मे की औषधियाँ व चून-चटनी सब त्याग देवें। जिन रोगियों को उपरोक्त साधनों से पूरा लाभ न हो उनको कटि-स्नान और धूप नहान से भी सहायता लेनी चाहिये।

9. सूर्योदय के समय की किरणों को प्रारम्भ से ही छाती पर लेवें।

10. चिकित्सा के समय पूर्ण ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना चाहिये।

त. **यकृत और प्लीहा के रोग–** पसलियों के नीचे दायें ओर यकृत तथा बायें ओर प्लीहा होती है। यकृत की गर्मी बढ़ने से Congestion of the Liver का रोग होता है जिसमें दायें ओर मीठा मीठा दर्द होता है, यकृत थोड़ा सा बढ़ जाता है, पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, सीधे कन्धे में दर्द होता है, मल बन्द रहता है, कभी कभी हल्का सा पीलापन आँखों में होकर पीलिया (Jaundice) रोग हो जाता है और कभी पेट में पानी भरकर जलन्धर रोग हो जाता है। यकृत पर अधिक सूजन हो जाती है। यह सूजन कभी तो केवल ऊपरी झिल्ली पर होती है, कभी भीतर होती है और कभी दोनों पर।

सूजन जब केवल झिल्ली पर होती है तो यकृत के स्थान पर दर्द होता है। श्वांस खिंचकर आता है किन्तु यकृत के कार्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता, परन्तु यदि यकृत में भी सूजन हो तो ज्वर होता है और दायीं ओर पसलियों के नीचे कुछ उठा सा मालूम होता है और दर्द भी मालूम होता है। इस स्थान पर दबाने, खाँसने और लम्बा श्वांस लेने से दर्द बढ़ता है। रोगी बायें करवट पर लेट नहीं सकता। दाहिने ओर की हँसली की हड्डी और दाहिने कन्धे में भी दर्द होता है, श्वांस कठिनता से आता है, खाँसी व डबकाई आती है, हिचकी भी आती है, भूख नहीं लगती, मल बंद रहता है, जिह्वा मैली और सूखी होती है, कभी दस्त भी आ जाते हैं, कभी पीलिया रोग भी हो जाता है, कभी यकृत सिकुड़ कर छोटा हो जाता है जिसे डाक्टरी में केरोसस आफ दि लिवर (Cirrhosis of the Liver) कहते हैं। इसमें भी पाचन शक्ति बिगड़ जाती है। मचली और डबकायी आती है, दायें ओर की पसलियों के नीचे दर्द होता है। आरम्भ में यकृत कुछ बढ़ जाता है और फिर सिकुड़कर कुछ छोटा हो जाता है। अपच, अफारा इत्यादि का कष्ट रहता है और रोगी निर्बल हो जाता है और कभी कभी इससे जलन्धर का रोग भी हो जाता है, कभी यकृत में फोड़े बन जाते हैं जिससे यकृत पर बोझ व दर्द होता है जिसकी टीसें दायें कन्धे तक जाती हैं। गहरी श्वाँस लेने व खाँसने से दर्द अधिक होता है। फोड़े का स्थान उभरा हुआ मालूम होता है और ज्वर रहता है। जब फोड़ा बनना प्रारम्भ होता है तो पहले जाड़ा देकर बुखार आ जाता है और बराबर बना रहता है। जब फोड़े में पीब पड़ जाता है तब जाड़े से बुखार बार बार आता है और खूब पसीना आता है। टी० बी० रोग के से लक्षण पाये जाते हैं और रोगी बहुत निर्बल हो जाता है। इत्यादि। यकृत के सब रोगों में लीची खाना तथा उसका रस पीना हितकर है।

प्लीहा:– इसी प्रकार प्लीहा, जो पसलियों के नीचे बाईं और होती है, कभी बढ़ जाती है जो पेट को टटोलने से बढ़ी हुई प्रतीत होती है। पेट बड़ा हो जाता है, पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, रोगी का रंग फीका पड़ जाता है तथा वह निर्बल हो जाता है।

कारण

प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध जीवन व्यतीत करने से मलाशय मल से भर जाता है और उसी मल के दबाव से यकृत और प्लीहा के रोग होते हैं। जो लोग अप्राकृतिक भोजन माँस, मदिरा, आइसक्रीम इत्यादि अथवा तेज़ मसाले तथा भारी पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं और व्यायाम, स्नान, प्रातः भ्रमण इत्यादि न करके गंदी वायु में श्वांस लेते रहते हैं, उन्हीं को यह रोग बहुधा हुआ करता है।

चिकित्सा

पहले उपवास और बस्ती कर्म से पेट ठीक करें, फिर केवल फलों का भोजन अथवा कुछ अन्न व फल अथवा फल और मठा का भोजन करें। फलों में पपीता और अनार इन रोगों में बहुत उपयोगी है। पपीता (एण्डखरबूजा) पका भी खावें और कच्चे का साग भी खावें। नीबू तथा अन्य फल भी प्रयोग करें। बढ़ी हुई प्लीहा में अनन्नास खाना औषधि का काम करता है। बढ़े हुये रोग में कटि-स्नान, भाप-स्नान, और मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना आवश्यक होगा। रोगी को शक्ति अनुसार भ्रमण करना उपयोगी है, पर यकृत के फोड़ा इत्यादि में पलंग पर पड़ा रहना ही हितकर है। बढ़ी हुई तिल्ली व यकृत तथा फोड़े पर मिट्टी की पुलटस बाँधनी चाहिये और भाप भी देना चाहिये। दर्द के समय भाप देने से तुरन्त आराम मिलता है। यह रोग देर से जाते हैं; अतः जमकर चिकित्सा करनी चाहिये। एलोपैथी से यकृत के रोग प्रायः अच्छे नहीं होते; पर आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा की सहायता यदि आरम्भ से ली जावे तो अवश्य अच्छे होते हैं। प्रातःकाल निहार मुँह एक बताशे में दो चार बूंद पपीते का दूध जो वृक्ष के किसी भाग से लिया जा सकता है खाना यकृत को शीघ्र ठीक करता है।

पाठ 6

मूत्र सम्बन्धी रोग

प्रमेह (जिरयान Spermatorihoea)

यह रोग भी आजकल विशेषतया युवकों में बहुत फैला हुआ है। इसके अनेकों भेद हैं। आयुर्वेद 20 प्रकार का प्रमेह बताता है। कुछ अन्य रोग भी इससे उत्पन्न हो सकते हैं। मलमूत्र करते समय वीर्यपात होना, स्वप्न में वीर्यपात होना अथवा स्त्री प्रसंग के समय शीघ्र वीर्य का निकल जाना इत्यादि सब ही उपसर्ग इस रोग के अन्तर्गत हैं। रोगी निर्बल होता जाता है और उसकी पिंडली दुखती है। चित्त उदास रहता है तथा स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। कमर में दर्द रहता है और काम करने को जी नहीं चाहता। भूख मारी जाती है और प्रायः कब्ज़ बना रहता है।

रोग के कारण

ब्रह्मचर्य का अभाव, बालकपन में वीर्य नाश, अप्राकृतिक साधनों से वीर्य नाश करना अथवा विषय की अधिकता और विषय की कथा, अन्य स्त्रियों के प्रति मातृ भाव न रख कर गन्दे विचार रखना, विषय सम्बन्धी सिनेमा देखना, बहुत चटपटे, खट्टे पदार्थ तथा माँस मदिरा इत्यादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन, नित्य चाय पीना, इत्यादि इस रोग के कारण हैं।nबहुत बैठे रहना, बहुत सोते रहना, व्यायाम न करना, गुड़ व दही इत्यादि बहुत अधिक प्रयोग करने से भी यह रोग हो सकता है। यह वह रोग है जो एक बार हो जाने पर बड़ी कठिनता से जाता है और आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़ कर सब ही चिकित्सा विधियाँ बढ़े हुये रोग को आरोग्य करने में प्रायः असमर्थ रहती हैं। सब साधन काम में न लाकर केवल औषधि खाकर इस रोग से मुक्त होना लगभग असम्भव है। अतः नीचे जो चिकित्सा बताई जाती है, उसे लग कर देर तक करना चाहिये।

1. पहले तीन दिन दोनों समय वस्ती कर्म तथा उपवास करें। निर्बल रोगी उपवास के दिनों में सन्तरा का रस पी सकते हैं।

2. फिर 15 दिन तक केवल फलाहार करें और पहले चार दिन नित्य और फिर एक दिन का नागा देकर वस्ती कर्म करें।

3. अब 15 दिन तक फल और गऊ का कच्चा दूध और मठा का सेवन करें, पर दूध और मठा पृथक पृथक समय में खावें। फल भी पृथक समय में खावें तो अच्छा है। दिन में तीन चार बार भोजन कर सकते हैं; पर एक समय केवल दूध, दूसरे समय केवल फल, तीसरे समय केवल मठा; इस प्रकार अच्छा है।

4. इसके पश्चात एक समय रोटी व सब्ज़ी और फल तथा अन्य समय केवल फल और किसी अन्य समय दूध का प्रयोग करें तथा एक समय कटि-स्नान और एक समय लिंग-स्नान करें। कभी कभी रीढ़ की पट्टी भी लेवें और सप्ताह में एक बार धूप-स्नान ऐसा करें कि पसीना आ जावे।

5. पूरे स्नान से पूर्व 5 मिनट से आरम्भ करके 10 मिनट तक पानी की धार लिंग पर डालें। यह काम वाटर वर्क्स के नल, फुहारे अथवा वस्ती यन्त्र से हो सकता है। गड़ुआ व लोटे से भी काम लिया जा सकता है।

6. प्रातः सूर्योदय के पूर्व उठ कर नंगे पैर भ्रमण करें। यदि हरी घास अथवा रेत, विशेषतया गंगा किनारे का रेत, हो तो बहुत अच्छा है।

7. पूर्ण आरोग्य होने तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें।

8. जैसे जैसे शरीर में बल आता जावे, भ्रमण और व्यायाम की मात्रा बढ़ाई जावे क्योंकि भ्रमण और व्यायाम इस रोग में परमावश्यक हैं।

9. जब शरीर कुछ शुद्ध हो जावे तब फलों में केला विशेष रूप से खावें। इससे वीर्य पुष्ट होता है।

10. जब केला भली प्रकार पचने लगे, तब दो चार बादाम भी लाल छिलका उतार कर खावें। फलों में खिन्नी, कसेरू, खरबूजा, सन्तरा, सेब, शहतूत, शरीफा और अमरूद विशेष रूप से उपयोगी हैं। इनको उपवास के पश्चात् प्रारम्भ से ही खाना चाहिये।

11. 5 से 15 बूंद तक बरगद का दूध प्रातःकाल निहार मुँह बताशे में रख कर खाना इस रोग में उपयोगी है।

12. बिना खटाई के सेमल के फल, गूलर व लहसोढ़ा की सब्जी भी खाना उपयोगी है।

13. वीर्य दोष के रोगियों को रात का भोजन सोने से तीन घण्टा पूर्व अवश्य कर लेना चाहिये और सोते समय दूध पीने का स्वभाव छोड़ देना चाहिये। सोते समय हाथ, पैर, लिंग तथा अण्डकोष धोकर सूखे कपड़े से पोंछ कर अन्त में ईश्वर का ध्यान करते हुये सोना चाहिये।

एक बड़ी सरल चिकित्सा–भोजन इत्यादि के नियमों का पालन करते हुये 40 दिन तक लिंग और अण्डकोष पर पृथक पृथक एक अंगुल मोटी मिट्टी की पट्टी एक कपड़े पर लगा कर बाँधे और उसके पश्चात् एक लंगोट बाँध कर लेट जायें। एक घण्टा के पश्चात् पट्टी खोल दें और भीगे कपड़े से पोंछ दें। इस प्रकार दिन में दो बार खाली पेट पट्टी बाँधें। ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें, अवश्य लाभ होगा। यदि बहुत पुराना रोग हो तो भोजन में केवल फल और धारोष्ण दूध पीवें।

आयुर्वेद के अनुसार

क. **मधुमेह (Diabetes) –** यह भी एक प्रकार का प्रमेह ही है जिसमें प्रायः

1. मूत्र अधिक आता है, 2. मूत्र में शकर आती है, 3. अधिक प्यास लगती है, 4. भूख भी अधिक लगती है, 5. रोगी दिन प्रतिदिन निर्बल होता जाता है। कभी कभी इस रोग के अन्य लक्षण तो होते हैं पर मूत्र में शकर नहीं आती; पर यह अवस्था भी इस रोग का एक प्रकार से पूर्व रूप है, जिसके पश्चात् रोग पूर्ण

रूप से विकसित हो सकता है। अतः इस रोग का मुख्य लक्षण मूत्र में शकर आना है। शकर क्यों आती है और इसके आने से रोगी क्यों ऐसा निर्बल हो जाता है ? इन बातों को पूर्ण रूप से समझने के लिये शकर का शरीर से सम्बन्ध समझ लेना चाहिये।

शकर क्या है ? भगवान ने कार्बन और पानी को मिलाकर शकर का रूप दे दिया है। यदि हम शकर को किसी बर्तन में रख कर आग पर रखें तो उसका पानी उड़ जाता है और कार्बन रह जाता है। शकर प्रायः दो प्रकार की होती हैं। 1. अंगूर की (ग्लूकोज़), 2. गन्ने की।

1. अपने भोजन में जो चीजें हम खाते हैं, उनमें प्रायः शकर होती है। श्वेत सार पदार्थों में इसकी मात्रा अधिक होती है। किये हुये भोजन की सब शकर ग्लूकोज बन कर आँतों में से रस शोषक ग्रन्थियों द्वारा चूसी जाकर यकृत में पहुँचाई जाती हैं और वहाँ गिलाइकोजन (Glycogen) के रूप में एकत्रित रहती है और वहाँ से आवश्यकता के अनुसार शरीर की मांस पेशियों में गर्मी और शक्ति उत्पन्न करने के लिये फिर शकर अंगूरी में बदल कर साफ होती रहती है।जब हम कोई कार्य करते हैं और मांस पेशियों को हिलना पड़ता है तो उनमें से कार्बोनिक एसिड गैस और पानी बनता है, जो शकर के भाग हैं। अतः जब हम कोई मेहनत का कार्य अथवा व्यायाम करते हैं तो हमारी श्वांस चढ़ जाती है और पसीना आ जाता है जिसका अर्थ यह है कि मांस पेशियों को अधिक चलाने से जो अधिक कार्बन एसिड गैस बनती है वह तो श्वांस से शीघ्र शीघ्र निकलती है और जो पानी बनता है वह पसीने से निकलता है। यह दोनों चीजें शरीर को शकर ही से मिलीं जो शरीर में एकत्रित थीं। इस काम के लिये स्वस्थावस्था में प्रकृति जहाँ हमारे रक्त के एक सहस्र भाग में एक या डेढ़ भाग शकर जमा रखती है, वहाँ मांस पेशियों में एक सहस्र भाग में 5 से 6 भाग तक शकर जमा रखती है जिससे यदि मांस पेशियों को कोई असाधारण परिश्रम का कार्य

करना पड़े तो उनका काम न रुक जावे। यदि किसी मनुष्य को शक्ति का कार्य करते करते उसकी मांस पेशियों की शकर समाप्त हो जावे और वह शक्ति का कार्य किये ही जावे तो वह मांस पेशियाँ स्वयं पचने लगेंगीं। पहले चर्बी और फिर मांस समाप्त होकर मनुष्य निर्बल होकर मर जावेगा। इसीलिये हर मेहनत के कार्य के बाद प्रकृति खूब भूख लगाती है ताकि मनुष्य भोजन करे और भोजन की शकर बन कर शरीर को शक्ति प्रदान करे। इतनी आवश्यक यह शकर हमारे लिये है; पर मधुमेह रोग में यह शकर ठीक तौर पर न पच कर शरीर का अंग नहीं बनती किन्तु शक्ति प्रदान करने से पूर्व ही मूत्र मार्ग से निकल जाती है। अब प्रश्न होता है कि यह शकर क्यों पच कर रक्त, यकृत और मांस पेशियों में न पहुँच कर मूत्र मार्ग से निकल जाती है। अन्वेषण से ज्ञात हुआ है कि हमारे स्वादु पिंड अथवा क्लोम (Pancreas) में, जो अपना रस आँतों में भेज कर श्वेत सार को शकर में बदल देता है व घी इत्यादि को भी पचाता है, एक और रस बनता है जिसे डाक्टरों में हारमोन (Harmone) कहते हैं, जो रक्त के भीतर भ्रमण करता हुआ मांस पेशियों में पहुँचता है और वहाँ शकर को इस प्रकार कार्बोनिक एसिड गैस तथा पानी बना कर मांस पेशियों से कार्य करवाता है। जर्मन के एक डाक्टर कोनहम साहब ने इसके परीक्षण करके देखे और मालूम किया कि मांस पेशियों और क्लोम के भीतरी रस के मिलने से ही शकर गर्मी और शक्ति देने लगती है। यदि क्लोम का वह भीतरी रस दोष युक्त बने अथवा मांस पेशियों में न पहुँचे तो फिर वह कार्बोनिक एसिड और पानी में परिवर्तित नहीं होता किन्तु वृक्कक की राह से मूत्र में निकल जाता है। पशुओं पर इस प्रकार के भी परीक्षण किये गये हैं कि उसका क्लोम निकाल दिया जावे तो मूत्र में शकर आने लगती है।

2. ऊपर बताया गया है कि यकृत में शकर पहुँच कर गिलोइकोजन के रूप में जमा रहती है और आवश्यकता पड़ने पर खर्च होती है। इस कारण यदि

यकृत की खराबी से भी जहाँ पाचन विकार होता है वहाँ शकर भी गिलाइकोजन के रूप में परिवर्तित न होकर रक्त में अधिक बढ़ जाती है और मूत्र द्वारा निकलने लगती है। इसके परीक्षण भी पशुओं पर किये गये। उनका यकृत पेट में से निकाल दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि रक्त में जो शकर प्राकृतिक ढंग से होती है, वह भी नहीं रही। इससे सिद्ध है कि रक्त में शकर यकृत से आती है और यकृत के दोष से मधुमेह होता है।

3. मस्तिष्क का भी इस रोग से विशेष सम्बन्ध है। मस्तिष्क में एक स्थान को डाक्टरी में शुगर पंक्चर (Sugar Puncture) कहते हैं। इस स्थान पर यदि सुई चुभा दी जावे तो मूत्र में शकर आने लगती है क्योंकि इससे नाड़ी फैल जाती है और यकृत के भीतर रक्त अधिक मात्रा में आ जाता है जिसके साथ ही शकर भी इतनी अधिक आ जाती है कि यकृत उसे सम्भाल नहीं सकता क्योंकि ऐसा मालूम होता है कि यकृत में जो शकर गिलाईकोजन में परिवर्तित होती है उसमें मस्तिष्क के द्वारा नाड़ी संस्थान की सहायता की भी आवश्यकता होती है। यह इस बात से भी सिद्ध होता है कि मस्तिष्क के इस स्थान पर फोड़ा या रसौली होने से भी मधुमेह हो जाता है।

4. रक्त के सहस्र भागों में केवल एक या डेढ़ भाग शकर होती है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकता से अधिक शकर खावे और इस कारण उसके रक्त में शकर की मात्रा इससे अधिक हो जावे तो वह भी मूत्र द्वारा बाहर निकल जाती है और अधिक अंश निकल जाने के पश्चात् निकलना स्वयं बन्द हो जाती है। इस अवस्था में मूत्र में शकर तो जाती है पर इसे वास्तविक मधुमेह नहीं कह सकते और न इसके लिये किसी चिकित्सा की आवश्यकता है। हाँ जब वास्तविक मधुमेह होता है और रोग पुराना हो जाता है तो रोगी शकर खाना पूर्ण रूप से बन्द कर दे तब भी शकर मूत्र में बराबर आती

रहती है और ऐसी अवस्था में शरीर का मेद और मांस के परमाणु गलकर खराब शकर के रूप में निकलते रहते हैं और रक्त में 20 व 30 भाग प्रति सहस्र तक हो जाती है। संक्षेप में इस रोग के होने के निम्नलिखित कारण होते हैं:–

1. आँतों की खराबी अर्थात् पाचन विकार अथवा कोलन में मल के बहुत समय तक सड़ने और अधिक शकर खाने से।
2. मस्तिष्क अथवा नाड़ी संस्थान पर कोई असाधारण दबाव पड़ने, चोट लगने, बहुत पढ़ने लिखने, सोच विचार करने व चिन्ता करने से तथा बहुत विषय भोग करने से।
3. यकृत की खराबी से जो कोलन की खराबी, अधिक खाने और व्यायाम न करने व शराब इत्यादि मादक द्रव्य के प्रयोग से हो सकती है।
4. क्लोम ग्रन्थि में कोई दोष होने से भी प्रायः कोलन के भरे होने अथवा वीर्य के क्षीण होने से प्रायः होता है।
5. यकृत और नाड़ी संस्थान, दोनों के दूषित होने से यह रोग बहुत होता है और इसका कारण कोलन की खराबी तथा अधिक वीर्य नाश हुआ करता है।
6. व्यायाम अथवा और कोई मेहनत का कार्य करके अथवा धूप में चलकर आकर तुरन्त ठण्डा पानी पी लेना। गठिया, मलेरिया इत्यादि रोग और उनकी चिकित्सा में विषैली औषधियों का प्रयोग भी कभी कभी इस रोग को उत्पन्न करने के कारण हो सकते हैं।

रोग लक्षण

कभी २ यह रोग गुप्त रूप से आरम्भ होता है। रोगी को केवल प्यास अधिक लगती है और मूत्र बार बार और अधिक मात्रा में आता है, विशेषतया रात्रि को, और वह निर्बल होता जाता है। कुछ रोगियों को अचानक सर्दी लगने के

पश्चात अथवा प्यास बुझाने के लिये अधिक पानी पीने के पश्चात् अथवा किसी मानसिक वेदना व चोट लगने के पश्चात् रोग लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं; फिर जब यह रोग बढ़ता है तो मुँह सूखा रहता है, प्यास बहुत लगती है, दांत खराब और ढीले होकर गिर जाते हैं, मसूड़े फूल जाते और दर्द करते हैं, मुँह का स्वाद मीठा होता है और दुर्गन्धित श्वांस आती है, पाचन विकार होता है, खट्टी डकारें आती हैं, कभी भूख बहुत बढ़ जाती है, इधर खाया उधर फिर भूख लगी, बहुधा कब्ज़ रहता है, रोगी बहुत सुस्त रहता है, सिर दर्द की शिकायत रहती है, स्वभाव चिड़-चिड़ा हो जाता है, त्वचा सूख जाती है और खुजली होती है, उस पर से भूसी झड़ती है और त्वचा पर दाग या झाइयाँ हो जाती हैं, कभी कभी फोड़े फुंसियाँ या कारबंकल निकल आते हैं। कभी छाजन (Eczema) हो जाता है, शरीर की गर्मी कुछ कम हो जाती है, हाथ पांव ठण्डे किन्तु हथेली और तलवे गरम होते हैं। मूत्र में शकर कभी 10 व 12 प्रतिशत तक आती है। कभी दिन रात में 5 व 7 सेर से भी अधिक मूत्र आता है, जिसमें 10 से 25 औंस तक शकर निकल जाती है। मूत्र का रंग भी बदल जाता है। शकर की अधिकता के कारण उसका भार 1030 से 1060 डिग्री तक और कभी इससे भी अधिक हो जाता है जो नामी यन्त्र से जाँचा जा सकता है। रात के मूत्र की अपेक्षा दिन के मूत्र में शकर अधिक आती है। शकर के अतिरिक्त मूत्र में यूरिया और फासफेट निकलते हैं। पुरुषों में काम शक्ति जाती रहती है और स्त्रियों में मासिक धर्म बन्द हो जाता है। कभी मोतियाविन्द होकर आँख की ज्योति जाती रहती है। यदि इस रोग की ठीक चिकित्सा नहीं होती तो अन्त को क्षय, निमोनिया, बहुत निर्बलता, दस्त अथवा बेहोशी का दौरा होकर रोगी मर जाता है। कभी कारबंकल अथवा अन्य फोड़े होकर रोगी को समाप्त कर देते हैं।

चिकित्सा

आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा से यह रोग पुराना और बुरी अवस्था का भी अच्छा हो सकता है; पर धैर्य पूर्वक अधिक समय तक चिकित्सा करनी पड़ती है। चिकित्सा विधि इस प्रकार है।

1. प्रमेह की चिकित्सा में नं० 1 से 4 तक जो साधन लिखे हैं, वह सब धूप स्नान को छोड़कर, इसमें भी प्रयोग करें। इसी प्रकार नं० 6 व 8 तक के साधन भी काम में लावें।

2. इस रोग में ताज़े फलों में जामुन, आड़ू, पपीता और नीबू तथा सूखे फलों में बादाम बहुत लाभदायक हैं। जब रोटी खाना आरम्भ करें तब गेहूँ के साथ चना और जौ भी पिसाना चाहिये। गाय का ताज़ा मठा और धारोष्ण दूध भोजन का विशेष भाग बनाना चाहिये।

3. गुड़मार एक बूटी होती है जिसकी पहिचान यह होती है कि उस बूटी को मुँह में चबा कर थूक दें और फिर उसी समय गुड़ खावें तो गुड़ मीठा नहीं लगेगा। यह बूटी हरिद्वार, देहरादून इत्यादि स्थानों के बड़े आयुर्वेदिक औषधि भण्डारों में बिकती है। यह इस रोग की महौषधि है। जामुन की गुठली का चूर्ण भी तीन माशे की मात्रा में खाना हितकर है।

4. वायकेमिक औषधि नेट्रम सल्फ ३ X (Natrum sulph ३ X) और नेट्रम फोस ६ X (Natrum phos ६ X) अदल बदल कर दिन में चार छह बार पाँच पांच ग्रेन की मात्रा में खाना रोग लक्षण शान्त करती है।

5. इस रोग में हवन की गैस तथा गंगा स्नान और भ्रमण से विशेष लाभ होता है। दो चार मील का भ्रमण करके गंगा अथवा किसी अन्य नदी का स्नान करें (नदी स्नान की विधि चिकित्सा खण्ड पाठ 1 में गंगा स्नान और धार स्नान में देखिये और नाभि तक पानी में बैठ कर करें)। वहाँ से पैदल ही लौट कर निम्नलिखित सामग्री से हवन करें।

हर्र बड़ी, बहेड़ा, आंवला, तिल, गिलोय, गूगल, चन्दन सफेद और बादाम सम भाग कूट कर शहद और घी में सान कर, आम, पलाश अथवा पीपल की समिधा लेकर कपूर से प्रज्ज्वलित कर कम से कम 1 छटांक सामग्री की वेद-मन्त्रों द्वारा आहुति देवें। रोग निवृत्ति का यह एक प्राकृतिक साधन है जिसको चिकित्सा का आवश्यक अंग समझ कर किसी भी सम्प्रदाय के सज्जन को निस्संकोच भाव से काम में लाना चाहिये। यदि आलसी पुरुष नियमपूर्वक यज्ञ न कर सकें अथवा समयाभाव हो तो उपरोक्त औषधियाँ देवदार और अगर की लकड़ी के बारीक बुरादे में गूगल की मात्रा बढ़ा कर और घी डाल कर कूट कर अगरबत्ती बना लें और बत्ती को कमरे में जला कर रखें।

चेतावनी

खूब याद रखना चाहिये कि मधुमेह की जड़ वीर्य नाश और अपच है। अतः वीर्य रक्षा और पेट के सुधार से ही यह रोग दूर हो सकेगा। अतः ब्रह्मचर्य, वस्ती कर्म और लम्बा भ्रमण इत्यादि चिकित्सा के मुख्य साधनों को कभी भूलना न चाहिये।

उपसर्गों की चिकित्सा

1. बढ़ी हुई प्यास बुझाने को बार बार पानी के कुल्ले करना अथवा हथेली पर जल लेकर आचमन करना और नीबू का रस पानी में डाल कर पीना हितकर है।
2. फोड़े फुन्सी पर मिट्टी की पुलटस बाँधना और भाप देना उपयोगी है।
3. शरीर पर खुजली के लिये एक नीबू पानी में निचोड़ कर उस पानी से स्नान करना चाहिये।
4. शरीर की खुश्की दूर करने को बादाम अथवा तिलों के तेल की मालिश करें।

एक विशेष उपसर्ग

मधुमेह के रोगी को कभी मूर्छा होकर उसकी मृत्यु हो जाती है। इसका पूर्व रूप ऐसे आरम्भ होता है:– रोगी को मूत्र जो पहले अधिक आता था एक दम कम हो जाता है और उसमें शकर की मात्रा भी घट जाती है, नाड़ी शीघ्र शीघ्र और निर्बल चलती है, शरीर ठण्डा हो जाता है, पेट में तेज़ दर्द होता है, कभी सिर दर्द भी होता है, तबियत बहुत घबराती है, श्वांस कठिनता से आती है और अन्त को मूर्छा आ जाती है और रोगी मर जाता है। जो लोग आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा करते हैं और वस्ती कर्म प्रारम्भ कर देते हैं तथा फिर मल बन्द नहीं होने देते, उनको इस उपसर्ग का कोई भय नहीं क्योंकि इस उपसर्ग के होने का कारण यद्यपि डाक्टर लोग भिन्न भिन्न बताते हैं पर आँत के मल से भरे होने के कारण उसका विषैला भाग रक्त में पहुँचने की सत्यता को सभी डाक्टर स्वीकार करते हैं। हमारी सम्मति में भी इस उपसर्ग का मुख्य कारण यही है। अतः जैसे ही इस उपसर्ग का पूर्व रूप आरम्भ हो, गुनगुने व ठंडे पानी से तुरन्त वस्ती कर्म करावें। इससे यह उपसर्ग रुक जावेगा। यदि एक बार में कोलन साफ़ न हो तो तुरन्त दो बार भी कराया जा सकता है। यदि रोगी ऐसी अवस्था में मिले जब उसका शरीर ठंडा हो चुका हो तो सहने योग्य अधिक से अधिक गर्म पानी से वस्ती कर्म कराना चाहिये। इससे गर्मी आ जावेगी। इसके बाद कटि-स्नान और मिट्टी की पट्टी से रोगी की अवस्था ठीक करनी चाहिये।

नोट– एक फ़कीरी साधन–५ बेल के पत्तों को मुँह में चबाकर १५ मिनट तक दिन में दो बार चूसें। गूलर की तरकारी और जामुन तथा आड़ू खावें।

ख. **सुज़ाक़ (Gonorrhoea)–** यह एक संक्रामक रोग है जिसमें मूत्र नली में सूजन होकर मूत्र मार्ग से पीब आने लगता है और मूत्र करते समय जलन तथा दर्द होता है। कभी यह दर्द बहुत तीव्र होता है। मूत्र नली में क्षत हो जाता है और रोग जब पुराना हो जाता है तो अच्छा होने पर भी बार बार दौरा होता है। पुरुषों में सुज़ाक़ का क्षत प्रायः अगले भाग में होता है पर

कभी बढ़ कर पिछले भाग तक पहुँच जाता है; तब उसकी चिकित्सा में और भी कठिनाई होती है। कुछ रोगियों के तो रक्त में इस रोग का विष मिश्रित होकर उनको गठिया इत्यादि दूसरे रोग उत्पन्न कर देता है। कभी इसके प्रभाव से शरीर पर फोड़े निकल आते हैं और कभी हृदय की भीतरी झिल्ली में सूजन होकर क्षत पड़ जाते हैं। स्त्रियों में मूत्र नली के अतिरिक्त इसका क्षत गर्भाशय तक पहुँच जाता है, जिसके कारण गर्भाशय और पेडू के बहुत से रोग हो जाते हैं। यदि इस रोग की ठीक चिकित्सा नहीं होती तो इससेः–

1.मद 2. गठिया 3. रक्त का मूत्र में आना 4. मूत्र अवरोध 5. अण्डकोष की सूजन व अण्डकोष बढ़ जाना 6. मूत्राशय की सूजन 7.नपुसंकता 8.आँख के रोग 9.रक्त का दुर्गन्धित हो जाना 10. स्त्रियों में गर्भाशय की सूजन 11. बाँझपन इत्यादि रोग हो सकते हैं।

कारण

यह रोग प्रायः दुराचारी लोगों को हुआ करता है, पर कभी कभी मलाशय दूषित होने पर संक्रमण हो जाने से अच्छे लोगों को भी हो जाता है। इसी प्रकार ऋतुमती और संक्रमण वाले प्रदर रोग की स्त्रियों द्वारा तथा स्वप्नदोष हो जाने पर बिना स्नान कुछ खा लेने से अथवा बहुत तीव्र मसाले, बहुत गर्म पदार्थ तथा मदिरा इत्यादि के प्रयोग से मूत्र में जलन होकर पीव आ सकती है; पर यह असली सुज़ाक नहीं है और थोड़े से ही उपचार से ठीक हो जाता है। असली सुज़ाक ठीक ठीक चिकित्सा करने पर भी कई सप्ताह में ठीक होता है और यदि तीव्र औषधियों द्वारा इस रोग को दबाने का यत्न किया जाता है तो रोग दबकर पुराना सुज़ाक़ हो जाता है, जिसके दौरे कभी कभी जीवन पर्यन्त होते और दुख देते रहते हैं।

चिकित्सा

1. पहले दो दिन का उपवास और दोनों समय वस्ती कर्म करें। उपवास में ठण्डे पानी में कभी नीबू और कभी सन्तरा निचोड़कर पीते रहें। कष्ट के

स्थान पर कभी पानी की और कभी मिट्टी की पट्टी बाँधे। उपवास के पश्चात् दो सप्ताह तक फलों का रस, गाय या बकरी का कच्चा दूध, सब्ज़ी का रसा, दलिया, मूंग या बार्ली का पानी और कभी कभी दूध चावल खावें।

2. एक समय कटि-स्नान और एक समय उपस्थित स्नान करें। कष्ट अधिक हो तो कई कई बार भी कर सकते हैं।

3. जिस समय कष्ट अधिक हो उस समय शीतोष्ण-स्नान करावें।

4. किसी किसी रोगी को गर्म पानी के तरारे से बहुत आराम मिलता है। शीतोष्ण स्नान और तरारा दोनों को एक एक बार करके देखें, जिससे अधिक आराम मिले वही साधन अधिक दर्द के समय काम में लावें। शेष चिकित्सा रोग समाप्ति तक बराबर जारी रक्खें।

5. कभी मूत्र बन्द हो जाने से बड़ा कष्ट होता है। इसके लिये भी कटि-स्नान और शीतोष्ण स्नान बड़े लाभप्रद हैं।

6. पेडू पर मिट्टी का पट्टी भी लाभ करती है। ऐसे अवसर पर कष्ट को तुरन्त दूर करने के लिये निम्नलिखित औषधि का प्रयोग करें।

कलमी शोरा पानी में घोलकर उसमें कपड़े की गद्दी भिगोकर पेडू पर रक्खें अथवा बेरी के सात पत्तों को पानी में खूब पीसकर एक रत्ती सेंधा नमक मिलाकर पिला दें अथवा होम्योपैथिक औषधि केन्थेरिस 6 (Cantharis 6) दो बूंद 1 ड्राम पानी में डालकर पन्द्रह पन्द्रह मिनट बाद देवें। चन्दन का तेल तथा अन्य जड़ी बूटी से मूत्र कराया जा सकता है, पर सलाई से काम न लेना चाहिये और पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करने को उपरोक्त प्राकृतिक साधनों को कई मास तक जारी रखना चाहिये।

ग. **उपदंश (आतशक Syphilis)–** इस रोग के विषय में इतिहास वेत्ता बताते हैं कि पहले यह रोग हमारे देश में नहीं होता था (कदाचित् इसका कारण यह होगा कि भारत की प्राचीन वैदिक सभ्यता तथा संस्कृति के कारण यहाँ के

स्त्री-पुरुष सभी सदाचारी थे)। सन् 1493 ई० में कोलम्बस ने जब अमेरिका की खोज की तो यह रोग अमेरिका से योरप में आया और वहाँ से एशिया में आया। इसका कारण अधिकतर दुराचार है। पैतृक तथा छूत से भी हो सकता है। रोगी के कपड़े प्रयोग करने, रोगी के साथ लेटने तथा रोगी के साथ एक थाली में खाने से भी हो जाता है। डाक्टरों को उपदंश के रोगी का आपरेशन करने तथा दाई को उपदंश की रोगिणी को प्रसव कराने से भी यह रोग हो सकता है। आयुर्वेद इस रोग को पाँच प्रकार का–वात, पित्त, कफ, रक्त, तथा सन्निपातज मानता है और इसके निम्नलिखित कारण बताता है।

1. मूत्रेन्द्रिय पर किसी प्रकार की चोट लगना तथा उसे स्वच्छतापूर्वक न धोना।
2. हस्तमैथुन, मिथ्या आहार विहार, अतिमैथुन और रोग युक्त स्त्री से मैथुन, इत्यादि।

रोग लक्षण

इन्द्री पर पहले एक कड़ा उभार होकर लाल रंग की फुंसी हो जाती है जिसकी जड़ कड़ी हो जाती है और धीरे धीरे बढ़कर फट जाती है और एक क्षत बन जाता है जिसके आस पास की त्वचा कुछ ऊँची होती है। इसमें दर्द नहीं होता और मवाद भी बहुत कम निकलता है। क्षत होने के पाँच सात दिन बाद जघौंघा की गिल्टियाँ सूख जाती हैं जो दबाने से कड़ी मालूम होती हैं पर दर्द इनमें भी नहीं होता। डाक्टरी में उपदंश की यह प्रथम श्रेणी कहलाती है। इससे रोगी बेचैन रहता है, शक्ति और उत्साह घट जाता है, शरीर पर गुलाबी रंग के दाने निकल आते हैं और शरीर की गिल्टियाँ बढ़ जाती हैं। माँस पेशी तथा हड्डियों में दर्द होने लगता है जो रात के समय अधिक होता है। ज्वर भी होने लगता है। गुलाबी रङ्ग के दाने प्रथम छाती और हाथों पर निकलते हैं। इनकी रङ्गत आगे चलकर तांबे के रङ्ग की हो जाती है। यह एक मास तक निकलते रहते हैं और दूसरे मास में

मुरझा जाते हैं और वहाँ काले दाग पड़ जाते हैं। कभी इनमें पीव भी पड़ जाती है, पर दर्द, जलन या खाज नहीं होती। कभी यह दो तीन सप्ताह में ही अच्छे हो जाते हैं। इन दानों के निकलने के साथ ही होठ, जिह्वा और गालों के भीतर सफेद सफेद दाग से पड़कर क्षत बन जाते हैं। मुँह पर, गुदा के चारों ओर और स्त्रियों में योनि के किनारों पर भी क्षत पड़ जाते हैं। गले में बार बार सूजन होकर आवाज़ भर्रा जाती है जो इस रोग का एक विशेष लक्षण है। तिल्ली बढ़ जाती है और शरीर की गिल्टियाँ, विशेषतया जंघासा और गर्दन के पीछे का गिल्टियाँ, कड़ी हो जाती हैं। भौं, पलकों और सिर के बाल भी गिरने लगते हैं। कलाई और टांगों की लम्बी हड्डियों में पीड़ा होने लगती है जो प्रायः रात्रि के समय अधिक होती है। जोड़ों में भी सूजन हो जाती है, आँख का पर्दा भी सूज जाता है, कभी रोगी बहरा हो जाता है, रोगी का रक्त दूषित हो जाता है और रक्त की कमी (एनीमिया Anaemia) होकर रोगी दुर्बल हो जाता है ! यह दूसरी श्रेणी के लक्षण हैं जो प्रायः 6 या 8 मास में समाप्त हो जाते हैं। इस बीच में यदि रोग की ठीक चिकित्सा हो गई तो रोगी अच्छा हो जाता है और यदि विकार दबाने वाली चिकित्सा की गई तो उस समय तो विकार दब जाते हैं किन्तु कुछ समय पश्चात् फिर उभार होता है। कभी कई वर्षों के पश्चात् उभार होता है जिसे तीसरी श्रेणी कह सकते हैं। पूरा उभार होने के पूर्व बीच बीच में भी अनेकों ऐसे उपसर्ग होते रहते हैं जिनसे यह प्रमाणित होता रहता है कि रोग का विकार शरीर में दबा दिया गया है। उदाहरणार्थ किसी पर फालिज गिरता है, किसी के छाजन (Eczema) हो जाता है, किसी के सुहाँ होता है तो किसी के फोड़े निकलते हैं जो महीनों अच्छे नहीं होते हैं।

जब तीसरी श्रेणी के लक्षण उभरते हैं, तब दूसरी श्रेणी की भांति गिल्टियाँ सूजती, क्षत पड़ते, हड्डियों में उभार होते और तीव्र पीड़ा होती है। एक राजा को हमने देखा जिसके पैर की हड्डी फूल जाया करती थी और इतनी तीव्र पीड़ा होती थी कि ज़ोरों से चीखा करते थे। पूंछने पर ज्ञात हुआ कि उनके पिता को उपदंश

का रोग था; फिर उन्होंने भी अपने चरित्र की रक्षा ऐसी न की थी जिससे उन पर इस रोग का प्रभाव न होता। इस श्रेणी के भिन्न भिन्न रोगियों में इतने रूप होते हैं कि एक पृथक पुस्तक बन सकती है। कभी तालू में छिद्र हो जाता है, कभी नाक की हड्डी गल कर निकल जाती है, कभी नाक बैठ जाती है, कभी चाल लड़खड़ानी हो जाती है, कभी रोगी की बुद्धि भ्रष्ट होकर वह मतवाला हो जाता है, कभी कोई हाथ या पैर सूख जाता है और कभी इससे टी० बी० का कठिन रोग हो जाता है।

चिकित्सा

1. पहले कम से कम तीन दिन का उपवास करें और इन दिनों में नीबू या सन्तरे का रस पीते रहें और यदि इस क्रम को एक सप्ताह तक चला सकें तो और भी उत्तम है; पर तीन दिन तो अवश्य ही उपवास करें।
2. चौथे दिन से प्रारम्भ करके चार दिन तक फलाहार करें।
3. एक सप्ताह के पश्चात् चने पानी में भिगो कर उसका पानी मधु के साथ अथवा सब्ज़ी का जूस, फल तथा सब्ज़ी रोटी देवें।
4. दो सप्ताह के पश्चात् गेहूँ के साथ बराबर भाग चने को भी मिलाकर पिसावें और उसकी रोटी गाय के घी अथवा मक्खन के साथ देवें और चने का पानी मधु के साथ बराबर जारी रक्खें।
5. उपवास के दिनों में दोनों समय, फिर 10 दिन तक एक समय नित्य प्रति वस्ती कर्म करावें।
6. उसके पश्चात् 10 दिन तक 1 दिन बीच में देकर दूसरे दिन वस्ती कर्म करावें।
7. उसके पश्चात् हर चौथे दिन उस समय तक वस्ती कर्म कराते रहें जब तक रोग दूर न हो जावे।

8. दोनों समय कटि-स्नान और एक बार नदी स्नान कराते रहें। यदि नदी स्नान सम्भव न हो तो नहाने के पानी में एक नीबू निचोड़ कर उस पानी से नित्य प्रति स्नान करें।

9. सम्भव हो तो दो समय अथवा कम से कम एक समय मिट्टी की पट्टी बाँधे और क्षत पर भी मिट्टी की पट्टी बाँधे।

10. सप्ताह अथवा 10 दिन पश्चात् भाप नहान दिया करें।

11 प्रातः सूर्योदय से पूर्व शुद्ध वायु में भ्रमण करने को जावें और यदि नदी किनारे की भूमि मिल सके तो उसके रेत में नंगे पाँव भ्रमण करें।

12. दिन में किसी समय दो घण्टे तक शरीर नंगा रख कर वायु और प्रकाश का आनन्द लेवें तथा गर्मी में पांच मिनट और सर्दी में कम से कम 1 घण्टा शरीर को धूप लगने दें तथा रात को यथा सम्भव खुली वायु में सोने का प्रबंध करें और मुँह ढक कर कभी न सोवें।

13. मुंडी बूटी ताज़ा मिले तो उसकी पांच सात घुंडी पानी के साथ खा लिया करें। यह उसी समय तक खावें जब वह खेतों में चैत वैसाख के मास में फलती है; सुखाकर रखने की आवश्यकता नहीं है।

14. नीचे लिखी हवन सामग्री से नित्य प्रति हवन करें।

गूगल, मुंडी, चिरायता, गुलाब के फूल, खस, कमलगट्टा, सिंघाड़ा, लाल चन्दन, ब्रह्मी, इन्द्र जौ, गोखरु, त्रिफला (हर बहेड़ा और आँवला), गिलोय, देवदार, मुनक्का, श्वेत चन्दन सब समान भाग तथा त्रिफला तीन भाग लेकर कूटकर रक्खें। कपूर से अग्नि प्रज्ज्वलित करके सामग्री में 1/3 भाग खंडसाली शकर और सामग्री तर करने लायक घी मिलाकर, इस सामग्री से नित्य प्रति हवन किया करें। सामग्री कम से कम 1 छटाँक होनी चाहिये। लकड़ी आधा नीम की तथा आधी आम, पलाश, पीपल या देवदार की हो।

इस चिकित्सा से रोग समूल नष्ट होता है।

पाठ 7

स्त्रियों के विशेष रोग

इस समय हमारे देश में स्त्रियों का रहन-सहन, विशेषतया नगरों में, बहुत बदल गया है। एक ओर तो बड़े घरों में स्त्रियाँ कोई भी व्यायाम या मेहनत का काम न करके, पड़े पड़े अधिक पौष्टिक भोजन खाकर अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लेती हैं और दूसरी ओर साधारण घरों में स्त्रियों को रात दिन जुटा रहना पड़ता है और खाने को रूखा-सूखा, समय-कुसमय मिलता है। उस पर भी विलायती घी, चाय, तम्बाकू और बाज़ार की अनेकों हानिकारक वस्तुयें चाट, आइस क्रीम इत्यादि खाने से स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है। इस अवस्था में रोग तो नित्य प्रति लगे ही रहना है। चिकित्सा के लिये विषैली औषधियाँ और नवशिक्षित अनुभवहीन लेडी डाक्टरों की सम्मति से इंजेक्शन और आपरेशन और भी गज़ब ढाते हैं। इसी रोगी अवस्था में सन्तान भी होती है और प्रसव कार्य के लिये नवशिक्षित मिडवाइफ अथवा लेडी डाक्टर की विद्यमानता भी समय की मांग है जिसके फलस्वरूप अधिकतर प्रसव समय अथवा उसके पश्चात् कोई न कोई कठिन रोग लग जाना साधारण सी बात है। सोचने की बात यह है कि किसी भी जंगली पशु को प्रसव समय किसी लेडी डाक्टर की आवश्यकता नहीं होती और वह बिना भारी कष्ट के स्वस्थ्य बालक उत्पन्न कर देता है क्योंकि वह प्राकृतिक जीवन बिताता है। पालतू पशु जो मनुष्य के साथ रहकर कुछ प्राकृतिक और कुछ अप्राकृतिक जीवन बिताते हैं, प्रसव समय कभी कभी किसी कठिनाई का अनुभव करते हैं जो प्रायः सुगमतापूर्वक दूर हो जाती है; पर अधिकतर उनको भी किसी लेडी डाक्टर की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर मनुष्य को ही क्यों यह कठिनाइयाँ आ उपस्थित होती हैं। यदि हम विवेक बुद्धि से विचार करें तो इसका कारण हमारी देवियों का अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करना ही है। हमारी बात की इससे और भी पुष्टि होती है कि ग्रामों की स्त्रियाँ, जो खुली वायु में रहतीं, खेत पर काम करतीं, चक्की और

मूसल से काम लेतीं, चाय बिस्कुट न खाकर मोटी रोटी सब्ज़ी और दूध मठा खाती हैं, बिना लेडी डाक्टर की सहायता के बालक जनती हैं और उसके पश्चात् उन्हें कोई रोग भी नहीं होता। अब जो हमारे देश के नादान दोस्त भारत को ऊपर उठाने के विचार से एलोपैथिक लेडी डाक्टरों को ग्राम ग्राम में पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं, यदि इसमें वह सफल हो गये, तो यहाँ की स्त्रियाँ भी रोगी होकर निर्बल सन्तान जनने लगेंगीं, क्योंकि हमने जो पिछले पचास वर्षों में अनुभव किये हैं, उनके आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जिस ढंग से हम विदेशी सभ्यता को अपना रहे हैं और अपनी प्राचीन संस्कृति की उपेक्षा कर रहे हैं, इसका बुरा प्रभाव पुरुषों पर तो पर्याप्त मात्रा में पड़ चुका है, स्त्रियों पर भी पड़ने लगा है। और बातों को छोड़कर इस समय स्वास्थ्य और शरीर रचना के सम्बन्ध में विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि स्त्रियों के गुप्त अंगों के विषय में आपरेशन और इंजेक्शन की इतनी अधिकता और शीघ्रता महा हानिकारक है। इस विषय में विशेष रूप से चार बातें समझ लेनी चाहिये।

1. स्त्रियों की जननेन्द्रिय के सब अंग बहुत कोमल हैं। उनके साथ अनुचित छेड़छाड़ अथवा नश्तर इत्यादि का व्यवहार उचित नहीं है।

2. यह सारे अंग कोमल होने के कारण अपने आस पास के अंगों के अच्छे बुरे होने पर बड़ी सरलता से प्रभावित हो जाते हैं। जैसे गर्भाशय बड़ी आँत के नीचे तथा छोटी आँतों के सामने आगे को पड़ता है। यदि आँतों में मल या वायु भरी है तो उसका दबाव गर्भाशय पर भी पड़ेगा। इस दबाव से गर्भाशय कभी नीचे की ओर और कभी आगे की ओर झुकता है और इस प्रकार कुछ समय के पश्चात् अपने स्थान से हट जाता है। और भी अनेकों रोग हो सकते हैं, पर ऐसे रोगों की चिकित्सा के लिये वर्तमान विज्ञान कारण की ओर ध्यान न देकर, केवल विषैली औषधियों अथवा आपरेशन का प्रयोग करता है जिससे और भी हानि होती है और भिन्न भिन्न प्रकार के रोगों की जड़ जमती है।

3. मासिक धर्म के द्वारा स्त्रियों के बहुत से विकार हर मास निकल जाते हैं। जब उसमें कोई खराबी होती है तो स्त्रियों को अनेकों रोग सताते हैं। अतःकिसी भी प्रकार का रोग स्त्री को होने पर चिकित्सक को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

4. इस समय हमारे देश के पढ़े लिखे लोगों में जिस विज्ञान का इस सम्बन्ध में प्रचार है, वह बहुत अंशों में अधूरा और भ्रम युक्त है। अतः इस समय की लहर के साथ न बह कर हमें बुद्धि से काम लेना चाहिये और केवल आयुर्वेदिक प्राकृतिक साधनों, जड़ी बूटी अथवा होम्योपैथिक औषधियों से सहायता लेनी चाहिये। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि जिन रोगों की अन्य विधियों से चिकित्सा को सुनकर आप घबरा जावेंगे और रोगी भयभीत हो जावेगा, वह रोग इन साधनों से बड़ी सुगमता से दूर हो जावेंगे।

क. मासिक धर्म का रुक जाना

गर्भावस्था के पश्चात् एक वर्ष तक और किन्हीं स्त्रियों को 2 व 3 वर्ष तक मासिक धर्म बन्द रहता है और 40-50 वर्ष की आयु में सबको मासिक धर्म बन्द हो जाता है। यदि इसके अतिरिक्त किसी युवा स्त्री को मासिक धर्म बन्द हो जावे तो वह रोग है और उसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

1. गर्भाशय की बनावट की खराबी और उसका अपनी जगह से हट जाना।
2. बहुत कसी पोशाक, आभूषणों अथवा पेटी का प्रयोग।
3. अप्राकृतिक जीवन बिताना जिससे शरीर में शुद्ध रक्त का अशुद्ध हो जाना।
4. शरीर की निर्बलता और रक्त की अत्यन्त कमी अथवा स्त्री का बहुत मोटा ताज़ा होना।
5. बहुत चिन्ता, शोक अथवा आवश्यकता से अधिक परिश्रम करना।

6. विषय भोग की अधिकता।

7. मासिक धर्म के दिनों में ठण्ड लग जाना, ठण्डे पानी से स्नान करना अथवा वर्षा में भीग जाना।

8. कई जीर्ण रोग जैसे क्षय, प्रदर, यकृत और वृक्क के रोग इत्यादि।

जब युवा लड़कियों को (13 से लेकर 16 वर्ष की आयु तक) मासिक धर्म न हो और पेड़ू में दर्द हो तो यह समझना चाहिये कि किसी अंग में कोई खराबी है।

जब बहुत मोटी लड़की व स्त्री को मासिक धर्म के समय अंग टूटने, बेचैनी, पेड़ू पर बोझ, कमर, कुल्हों और रांगों में दर्द हो और ज्वर हो जावे पर मासिक धर्म न हो तो ऐसी स्त्री की तुरन्त आगे बताई चिकित्सा करनी चाहिये अन्यथा उसे हिस्टीरिया इत्यादि रोग हो सकता है। कभी ऐसा भी होता है कि मासिक धर्म बन्द होने से अन्य अंग नाक, मुँह इत्यादि से रक्त आ जाता है। यह भी रोग है पर कुछ अनुभवहीन चिकित्सक मुँह से रक्त आने के कारण झट टी० बी० घोषित करके स्टेपोमाइसीन के इंजेक्शन इत्यादि आरम्भ कर देते हैं। यह बड़ी भूल है जिसके कारण अनेकों स्त्रियों की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

उपरोक्त कारणों में से जो भी कारण हो पहले उसे हटावें और प्राकृतिक जीवन बितावें। प्रातःकाल वायु सेवन, व्यायाम, समय पर ठण्डे पानी से स्नान, भोजन हल्का पर पौष्टिक, फल, दूध इत्यादि का सेवन (बहुत मोटी लड़कियों को चिकनाई न देकर हरे साग, और मधु की अधिकता और परिश्रम वाले काम तथा दौड़ना इत्यादि) करने से बहुत सी रोगी स्त्रियाँ बिना किसी चिकित्सा के अच्छी हो सकती हैं। इससे काम न चले तो इस प्रकार करें:–

1. पहले तीन दिन दोनों समय वस्ती कर्म और रसाहार करें।

2. फिर एक सप्ताह फलाहार और एक समय वस्ती कर्म करें।

3. इसके पश्चात् एक सप्ताह तक फलाहार और दूध तथा मठा और मुनक्का और हर तीसरे दिन वस्ती कर्म करें।

4. इसके पश्चात् अपने अनुकूल भोजन अर्थात् यदि रोगिणी निर्बल है तो मक्खन, दूध इत्यादि तथा रोटी, साग, सब्जी और फल देवें। यदि रोगिणी अधिक मोटी है तो फल, सब्जी और केवल रोटी दें।

5. प्रातः सायं दोनों समय वायु सेवन को जावें और वहाँ गहरी श्वांस लें अथवा प्राणायाम करें।

6. प्रातः उपस्थित स्नान और सायंकाल गर्म पानी के टब में 5-7 मिनट बिना पेडू मले बैठना।

7. हर चौथे दिन धूप नहान और दो सप्ताह में एक बार भाप नहान लेना चाहिये।

8. इन क्रियाओं के करते हुए जब भी मासिक धर्म प्रारम्भ हो जावे तब सब नहान बन्द कर दें। भ्रमण और सेब को छोड़ कर अन्य फलाहार भी रोक दें, किन्तु दाल, रोटी, सब्जी, मुनक्का, खजूर खाने को दें। वायकेमिक औषधि मेगनेशिया फास ३ X (Magnesia phos ३ X) 5-5 ग्रेन दिन में तीन बार गर्म पानी के साथ खिलावें तथा पीने को भी गर्म पानी देवें।

9. पेडू पर दर्द हो तो सेंक (Fomentation) कर सकते हैं।

ख. कष्ट के साथ मासिक (Dysmenorrhoea)

इस रोग में रक्त कमी के साथ कष्ट से निकलता है। गर्भाशय की सूजन, उसकी स्थानच्युति, प्रसव के पश्चात् गर्भाशय का अपने नियत स्थान पर न आना इत्यादि कारणों से ऐसा हुआ करता है। प्रायः मोटी स्त्रियों को यह रोग होता है।

इस रोग में मासिक धर्म के पहले या उन्हीं दिनों या बाद में या कुछ पहले से कुछ बाद तक, कमर और जांघ में हल्का अथवा तीव्र दर्द रहता है। यदि मासिक

धर्म के 2-3 दिन पहले दर्द प्रारम्भ हो तो समझना चाहिये कि नाड़ी संस्थान की कुछ गड़बड़ी है या डिम्ब सम्बन्धी खराबी है। यदि मासिक धर्म प्रारम्भ होने के ठीक पहले दर्द प्रारम्भ होता है तो उसका कारण योनि द्वार का तंग होना या उसके भीतर की कुछ रुकावट है। पहली अवस्था में प्रायः वैवाहिक जीवन बिताने के कुछ दिन पश्चात् कष्ट जाता रहता है किन्तु रुकावट है तो अनुभवी डाक्टर की सम्मति से होम्योपैथिक अथवा आयुर्वेदिक औषधि लेनी होगी।

यदि रक्त निकलने की अवस्था में ही या बाद में भी दर्द हो तो उसका कारण योनि द्वार की सूजन और ज्वरावस्था है।

यदि मासिक धर्म प्रारम्भ होने के पहले से बाद तक दर्द रहे तो समझना चाहिये कि नाड़ियों की गड़बड़ी के साथ योनि द्वार की सूजन भी या जितने भी कारण ऊपर बताये गये हैं, सभी थोड़ी बहुत मात्रा में मौजूद हैं !

चिकित्सा

जो चिकित्सा मासिक धर्म रुकने में बताई है, पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करने के लिये उसी की सहायता लेनी होगी। कष्ट के समय सेंक तथा मिट्टी की गर्म पुलटस पेडू पर बाँधें।

रक्त आने से पूर्व दर्द होता हो तो गर्म ठण्डा स्नान करना चाहिये पर रक्त निकलने के दिनों में स्नान बन्द रखना चाहिये। यदि मासिक धर्म प्रारम्भ होने के पांच सात दिन पहले तीन दिन रसाहार और दो दिन फलाहार पर बिताये जावें और रसाहार के दिनों में नित्य एक वार बस्ती कर्म किया जावे तो कष्ट कम हो जावेगा। दर्द के समय गुड़ और सोंठ खाना अथवा वायकेमिक दवा मेगनेशिया फास ३ X (Magnesia phos ३ X) 5-5 ग्रेन गर्म पानी से खाना और जब तक दर्द न रुके हर पन्द्रह मिनट पर दोहराना तथा होम्योपैथिक दवा Viburmum Opulus Q पीना चाहिये। पर पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करने के लिये पूर्व बताये

साधन कई मास तक लगातार जारी रख कर रोग को समूल नष्ट कर लेना चाहिये।

ग. अधिक रक्त आना (Menorrhagia)

आवश्यकता से अधिक रक्त मासिक धर्म में आना भी रोग है पर इसके लिये ऊपरी उपायों से बंद करने के स्थान में शरीर की शुद्धि करना चाहिये क्योंकि अधिक रक्त आने का अभिप्राय यह है कि शरीर में विकार अधिक है। अतः शरीर शुद्धि के लिये ऊपर के बताये साधन रसाहार, वस्ती कर्म और कटि-स्नान को काम में लाना चाहिये। भेद इतना है कि अधिक रक्त आने में हर काम में ठंडा जल प्रयोग करना चाहिये। जिस समय रक्त आ रहा हो, सब स्नान बंद रखना ही हितकर है। भोजन में गर्म चीज़ प्रयोग न करें, किन्तु अनार, सन्तरा, कच्चा दूध इत्यादि हितकर है। इस रोग के निम्न लिखित कारण होते हैं:–

1. गर्भाशय की स्थानच्युति अथवा झुक जाना।
2. बार २ गर्भपात होना।
3. अधिक सन्तान होने से गर्भाशय का ढीला हो जाना।
4. गर्भाशय में रक्त का जमा होना।
5. गर्भाशय की जलन।
6. गर्भाशय में आँवल का टुकड़ा रह जाना।
7. गर्भाशय की फुंसियाँ अथवा इसमें रसौली या फोड़ा होना।
8. क्षय रोग का होना।
9. रक्त पित्त का स्वभाव।
10. अधिक विषय।

चिकित्सा से पूर्व उपरोक्त कारणों का दूर होना आवश्यक है, तभी चिकित्सा का प्रभाव हो सकेगा।

घ. अनियमित मासिक (Metrorrhagia)

कभी एक मास में कई बार और कभी कई मास के पश्चात् मासिक धर्म होने को अनियमित मासिक कहते हैं।

इसकी चिकित्सा भी प्रथम अपने शरीर की शुद्धि करके उपरोक्त साधनों द्वारा करनी चाहिये।

ङ. गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना (Displacement of the uterus)

इसके निम्न कारण हो सकते हैं:–

1. उछलना, कूदना तथा दौड़ना इत्यादि।
2. आँतों में वायु विकार और मल का भरा होना।
3. सारे शरीर की निर्बलता।
4. कसी पोशाक बराबर पहनना।
5. अधिक समय तक झुककर काम करना।
6. आलसी पड़े रहने से पेडू की माँस पेशियों की निर्बलता।
7. निर्बलता में बहुत व्यायाम और अधिक कार्य करना।
8. प्रसव समय दाई की भूल और उसके पश्चात् अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करना।
9. स्त्री रोगों में गलत चिकित्सा।

लक्षण

पेडू, पीठ और कमर में बोझ तथा दर्द का कष्ट होता है, जिसमें चलने फिरने से अधिकता होती है। मूत्र रुक रुक कर कष्ट से आता है। मासिक धर्म भी

कमी के साथ कष्ट से आता है और कमी बिल्कुल बन्द हो जाता है। गर्भाशय सूज जाता है। कभी गर्भाशय पीछे झुका रहता है तो कठिन कब्ज, पेट और शौच के मार्ग में भारीपन, पीठ में दर्द इत्यादि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा

फलाहार, वस्ती कर्म और ठंडे पानी का कटि-स्नान तथा स्त्रियों के व्यायाम से यह रोग ठीक हो सकता है। प्रायः गर्भाशय नीचे की ओर झुका होता है और कभी कभी अन्दर का भाग बाहर निकलकर लटक भी जाता है। ऐसी अवस्था में लेटकर या बैठकर किये जाने वाले व्यायामों को, ऐसे तख्त पर करना चाहिये, जिसका पैताना कुछ ऊँचा हो ताकि सिर कुछ नीचाई पर हो जावे। इस प्रकार करने से पेडू की मांस पेशियाँ तो मजबूत होंगी ही और साथ ही गर्भाशय भी धीरे धीरे अपने ठीक स्थान पर आकर अटल हो जावेगा। साथ ही जब तक गर्भाशय ठीक न हो जावे अधिक चलना फिरना न चाहिये और दौड़कर तो चलना ही न चाहिये क्योंकि चलने में गर्भाशय का झुकाव नीचे की ओर होता है। टांगें फैलाकर बैठने अथवा लेटने में सिर नीचा रखने से भी लाभ होता है। डाक्टरों के यहाँ एक पेटी बिकती है जिसे ट्रस (Truss) कहते हैं। किसी नर्स व लेडी डाक्टर से उसे लगवा लेना भी हितकर है। यदि कब्ज दूर करके और फलादि सुपाच्य भोजन करके होम्योपैथिक औषधियों का सेवन किया जावे तब बिना लेडी डाक्टर की सहायता के ही गर्भाशय ठीक हो जाता है। होम्योपैथिक औषधि लक्षण के अनुसार लाभ करती है। अतः किसी अनुभवी डाक्टर की सहायता लेनी चाहिये। जहाँ डाक्टर न मिल सकें वहाँ सीपिया 12 (Sepia 12) अथवा लिलियम टिगरीनम 3 (Lilium Tigrinum 3) का प्रयोग करें। इनका अन्तर यह है कि रोग की प्रबल और नई अवस्था में लिलियम 3 (Lilium 3) और बीमारी पुरानी हो जाने पर सीपिया 12 (Sepia 12) दी जाती है। लिलियम में मूत्र द्वार और मल द्वार में जलन रहा करती है। इसके रोग लक्षण तीसरे पहर बढ़ते हैं। सीपिया में तीसरे

पहर लक्षणों में कुछ कमी मालूम होती है। पेट के भीतर वाले सभी यंत्र मानों बाहर निकल पड़ेंगे ऐसा लगता है। कमर में बहुत दर्द रहता है।

च. प्रदर (Leucorrhoea)

जरायु की आवरक झिल्ली से, जरायु के भीतर से और जरायु के मुख से कई रंगों का जैसे श्वेत, पीला, नीला, दूध की भाँति, मांस के धोवन के सदृश्य या काला स्राव होता है, इसी को प्रदर कहते हैं। स्राव साधारणतया श्वेत ही हुआ करता है। इस कारण इसका साधारण नाम श्वेत प्रदर पड़ गया है।

रोग लक्षण

1. जरायु में खुजली होता है और उससे श्वेत स्राव होता है।
2. कब्ज़, सिर में दर्द, पेट फूलना, पचने की क्रिया में गड़बड़ी, चेहरे पर रक्त की कमी, कमर में दर्द, पेडू में बोझ व दर्द, शीघ्र शीघ्र मूत्र आना, चित्त खिन्न, काम काज करने में अनिच्छा, निर्बलता, कष्टकर मासिक धर्म इत्यादि लक्षण रहते हैं।
3. जरायु के मुख से, जरायु के भीतर से, गर्भाशय के बाहरी भाग और भीतर से भिन्न भिन्न स्थानों से स्राव के कारण इसके कई भेद होते हैं और बहुत समय तक यह रोग रहने पर भी उचित साधनों से प्रायः ठीक हो जाता है; पर कभी कभी गंडमाला धातु ग्रस्त थोड़ी आयु की बालिकाओं को यह रोग होता है और ठीक चिकित्सा न होने के कारण कभी योनि पर क्षत हो जाते हैं। इसी प्रकार बड़ी आयु की स्त्रियों को कभी बहुत अधिक स्राव होने से कैन्सर (Cancar) हो जाता है और इससे कभी कभी क्षय रोग भी हो जाता है। अतः इस रोग की चिकित्सा में देरी न करें और घबड़ावें भी नहीं क्योंकि कभी यह रोग बीसों वर्ष चलता है। विषैली औषधियों से यह रोग और भी जड़ पकड़ जाता है।

रोग के कारण

रक्त की कमी, निर्बलता, मल बंद, कोलन का मल से भरा रहना, सर्दी लगना, कृमि, गदे रहना, उत्तेजक पदार्थ, गर्म मसाले, चाट इत्यादि खाना, अधिक विषय भोग, रक्त स्राव, जरायु में कोई उत्तेजक पदार्थ रहना, योनि का प्रदाह, बार २ गर्भपात, नल का टलना, गर्भाशय अथवा जरायु की सूजन, मासिक धर्म का बंद हो जाना, उपदंश, सुज़ाक, गंडमाला, गठिया या टी० बी० का रोग होना इत्यादि इसके कारण हैं।

चिकित्सा

1. कुछ गर्म पानी से दूश तथा वस्ती कर्म करावें।
2. प्रथम तीन दिन रसाहार करावें।
3. तत्पश्चात् दो सप्ताह तक फलाहार, उसके पश्चात् एक सप्ताह फल और दूध का आहार करावें; तब रोटी सब्ज़ी और दूध फल अन्दाज़ से खिलावें।
4. इन दिनों में हर तीसरे दिन गर्म और ठण्डे पानी के टब में बिठावें। यदि सम्भव हो तो नियम से गंगा-स्नान करावें।
5. प्रातः काल शुद्ध वायु में भ्रमण करावें।आशा है कि उपरोक्त साधनों से अनेकों प्रकार का प्रदर दूर हो जावेगा।

यदि रोग हठीला हो तो फिर एक समय कटि-स्नान और एक समय उपस्थित-स्नान करावें और उपरोक्त नियमों का पालन करें। इस रोग में खाने की औषधियों से अस्थायी लाभ होता है। हाँ भोजन के उपरान्त एक केला नित्य खिलाना अथवा प्रातःकाल मधु के साथ एक केला देना भी हितकर है, पर मलाशय साफ हो जाने पर ही केले का प्रयोग ठीक होगा। पक्का केला गाय के दूध में पकाकर खिलाने से बहुत सी स्त्रियों का प्रदर अच्छा हो जाता है।

पाठ 8

बालकों के रोग

यदि प्राकृतिक ढंग पर बालकों का पालन पोषण हो और माता पिता स्वयं संयम से रहें तो कोई कारण नहीं कि बालकों को कोई रोग हो क्योंकि प्रकृति उनकी अधिक रक्षा करती है। गर्भ से पूर्व, गर्भकाल में, प्रसव समय और बालकों के पालन पोषण के समय माता पिता का क्या कर्त्तव्य है, इनको साधारण लोग तो क्या, बहुत से उच्च डिग्री प्राप्त डाक्टर भी नहीं जानते। इसी कारण बहुत से बालक बाल्यकाल में ही समाप्त हो जाते हैं। थोड़ी समझ के चिकित्सक इसका सारा दोष अनपढ़ लोगों के ऊपर मढ़ कर अपने को पूर्ण वैज्ञानिक समझते हैं तथा इसी विज्ञान का विस्तार कर, इसी के भरोसे इस बढ़ती हुई मृत्यु संख्या को रोकने का स्वप्न देख रहे हैं। पर यह स्वप्न ही है क्योंकि हम देखते हैं कि नगरों में, जहाँ इस विज्ञान के साधन अधिक उपलब्ध हैं, ग्रामों की अपेक्षा जहाँ कि स्त्रियाँ नितान्त विज्ञानहीन हैं और साधन भी उपलब्ध नहीं हैं, बालकों को सूखादि रोग अधिक होते हैं और स्वयं स्त्रियाँ भी अधिक रोगी रहती हैं। इस विषय पर पहले अधिक लिखा जा चुका है। चिकित्सा खंड में अधिक नहीं लिखा जा सकता। कुछ संकेत इस कारण दिया है कि सम्भव है कि कुछ अर्द्ध शिक्षित डाक्टर उन साधनों का विरोध करें जो हम नीचे लिखेंगे। पर पाठकों को यह समझ लेना चाहिये कि यह उनके अनुभव की कमी है और उस शिक्षा का प्रभाव है जो स्वयं पुस्तकों और मनमाने सिद्धान्तों के आधार पर दी गई है, न कि परीक्षण और वास्तविकता के आधार पर। अस्तु।

1. बालकों को दूध पिलाना–यह तो बहुत से डाक्टर स्वीकार करने लगे हैं कि बालक के लिये माता का दूध सर्वश्रेष्ठ है; पर माँ का दूध प्राकृतिक ढंग पर दो दिन में उतरता है। अतः बालक को उस समय तक बकरी, गाय अथवा डिब्बे का दूध देना आवश्यक समझा जाता है। बस भूल यहीं से प्रारम्भ हो

जाती है और इससे बालक का पेट बिगड़ जाता है। प्रकृति ने माता के स्तनों में दूध दो दिन तक इस कारण उत्पन्न नहीं किया, कि बालक के पेट में जो विकार गर्भावस्था में हुये हैं, वह साफ हो लें। अतः इस समय प्रकृति की सहायता के लिये दो एक बार शुद्ध मधु चटाया जा सकता है और बालक को आराम से सोने देना चाहिये। थोड़ा गर्म पानी देने में भी हानि नहीं है। कुछ स्त्रियाँ यह सुन कर घबड़ावेंगी पर जब वह इस पर आचरण करेंगी तो उनको ज्ञात हो जावेगा कि चार छे दिन के बालक को अण्डी का तेल (castor oil) या घुट्टी देने की आवश्यकता इसी कारण पड़ती है कि उनको जन्म से ही ऊपर का दूध पिलाकर उनका पेट खराब किया जाता है। जब माता के दूध उतरे तब वही प्रथम बार दिया जावे। उससे बालक का पेट और भी साफ हो जावेगा और वह बिना किसी औषधि के अपना प्राकृतिक भोजन माता का दूध पचाता रहेगा। स्वस्थ माता के लिये कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता; हाँ जो माता रोगिणी हैं और समय पर दूध नहीं उतार सकतीं, उनको विवश होकर दूसरा प्रबन्ध करना ही होगा। ऐसी अवस्था में सर्व श्रेष्ठ दूध तो किसी अन्य स्त्री का ही है; उसके बाद बकरी या गाय का ताज़ा दूध। डिब्बे का दूध विलायती औषधियों की भाँति ही मृदु विष (slow poison) है जो बालक को धीरे धीरे नष्ट करेगा अथवा उसको सर्वदा के लिये आमाशय का रोगी बना देगा।

2. नवजात शिशु को दूध कितने समय पश्चात् दिया जावे–यह जानने की भी आवश्यकता है, क्योंकि बालक जब रोता है तभी दूध देना आवश्यक समझा जाता है। कुछ लेडी डाक्टर भी दो दो घण्टे के पश्चात् देने का परामर्श दे सकती हैं। गला सूखने के भय से सोते हुये बालक को भी जगा कर दूध देना आवश्यक समझा जाता है पर यह सभी बातें उसे रोगी बनाने वाली हैं। हमारी सम्मति में जिस बालक की पाचन-शक्ति बहुत अच्छी है, उसे तीन तीन घण्टे पश्चात् और साधारण शक्ति वाले को चार चार घण्टे

पश्चात् प्रातः 5-6 बजे से रात को 10-11 बजे तक दूध पिलाना चाहिये। इसके अतिरिक्त समय में बालक को बिना दूध पिलाये ही सोते रहने का अभ्यास प्रारम्भ से ही डालना चाहिये। इससे उसकी पाचन-शक्ति वृद्धावस्था तक ठीक काम देती रहेगी।

3. जब कभी उसे कोई रोग हो तो केवल उपवास से पेट ठीक करने का प्रयत्न करना चाहिये, औषधि का सहारा न लेना अथवा कम से कम लेना चाहिये और विषैली औषधि तो भूलकर भी न देना चाहिये।

4. बालक नौ मास तक केवल माता के दूध पर रहे तो बहुत अच्छा है पर जिनको पाचन विकार हो अथवा जिनको विवश होकर ऊपर का दूध देना पड़े या बालक सुस्त रहता हो या कम बढ़ रहा हो तो तीन मास के बालक को संतरा व अनार का रस दूध के ऊपर पिलाया जा सकता है। पहले आधा छोटा चम्मच एक दो बार दूध के ऊपर से दें, फिर धीरे २ बढ़ा सकते हैं। रस मोठे फलों का होना चाहिये। संतरे का रस पाचन शक्ति को सुधारता है तथा अनार का रस शक्ति देता है।

5. यदि विवशता से ऊपर का दूध देना पड़े तो फिर सर्व श्रेष्ठ गाय का दूध है जो सफाई के साथ दुहा गया हो। इसे कच्चा ही पिलाना चाहिये। इस समय बहुत से डाक्टर यह भ्रम दिलाते हैं कि दूध में कीड़े (Germs) हो जाते हैं और बहुत सी गायों को टी० बी० का रोग होता है। अतः बिना गर्म किये दूध देना हानिकारक है। पर हमारी राय में यह भ्रम है। दूध में जो जर्म्स होते हैं, उनमें से कुछ तो बालक के स्वास्थ्य के लिये हितकर ही हैं और यह बात परीक्षण से सिद्ध हो चुकी है कि गायों को टी० बी० का रोग विदेशों में ही अधिक होता है। हमारे देश में यह नहीं के बराबर है। लाखों में यदि किसी एक को यह हुआ भी तो वह छोड़ा जा सकता है। दूध को गर्म करने से तो उसकी जीवन-शक्ति (Vitamins) नष्ट हो जाती है और वह भारी हो जाता है। इससे पचने में कठिनाई होती है। उसका कैल्शियम

(Calcium) भी जलकर ऐसी अवस्था में हो जाता है कि शरीर का अंग नहीं बन सकता। अतः दूध सर्वदा कच्चा देना चाहिये। ताज़े दूध में तो कुछ हानि ही नहीं पर देर का रक्खा हुआ खराब हो सकता है। उस खराबी से बचाने की विधि यह है कि दूध शुद्ध बोतल में भर करके कार्क लगाकर बोतल को ठण्डे पानी में रख दिया जावे; फिर प्रातःकाल का दूध सायंकाल तक और सायंकाल का रात्रि को 10-11 बजे तक देने में कोई हानि नहीं है। पर गाय के दूध में माँ के दूध की अपेक्षा प्रोटीन (Protein मांस वर्धक पदार्थ) तीन गुनी होती है जिसे बालक न पचा सकता है और न उसे ऐसे पदार्थ की आवश्यकता है। अतः नव जात शिशु को दूध में एक भाग शुद्ध जल मिलाकर देना चाहिये और बालक की शक्ति के अनुसार धीरे धीरे जल की मात्रा कम करते जावें। एक वर्ष के बालक को फिर पानी मिलाने की आवश्यकता नहीं है। पानी उबाल कर ठण्डा कर लिया जावे ताकि उसकी शुद्धिताई में कोई भ्रम न रहे। गाय का दूध बड़ों के लिये चाहे कितना ही उपयोगी और गुणदायक हो पर शिशु के लिये माता के दूध की समानता नहीं कर सकता। अतः पेट में कुछ गड़बड़ी होना स्वाभाविक है। दस पाँच दिन में थोड़ा २ अभ्यास हो जाता है। यदि बहुत समय तक अनुकूल न पड़े तो पानी कम व अधिक करके देखें या बकरी का दूध जो उससे हल्का होता है, (पर अन्य गुणों में गाय के दूध की बराबरी नहीं करता) देना चाहिये। तीन मास का बालक हो जाने पर मीठे संतरे का रस मिलाकर देने से पेट ठीक होने लगता है। भैंस का दूध, बाज़ारू अपवित्र दूध और डिब्बे का दूध भूलकर भी बालक को न देना चाहिये। जब बालक के दाँत निकलने लगें तो अन्न देने में शीघ्रता न करनी चाहिये। एक वर्ष के पूर्व कुछ भी अन्न न देना ही हितकर है और नौ मास से पूर्व तो देना ही न चाहिये। अनार, अँगूर, सन्तरे का रस दूध के अतिरिक्त देते रहें, फिर काटने वाले फल जैसे सेब, नाशपाती का टुकड़ा चचोड़ने को दें। तब इसके बाद लगभग एक वर्ष

के बालक को थोड़ा २ अन्न देवें। अन्न में प्रथम चावल पकाकर गाय के दही व मधु के साथ देवें। पकते समय चावल में थोड़ा गाय का घी व मक्खन डालें। पाँच वर्ष की आयु तक बालक का विशेष भोजन गौ दुग्ध और फल होना चाहिये। माता का दूध नौ मास अथवा एक वर्ष के पश्चात् छुड़ा दें। सरसों व तिली के तेल की मालिश करके धूप में बिठाने तथा नित्य प्रति स्नान कराके शुद्ध वस्त्र पहनाने और नियत समय पर भोजन देने इत्यादि साधनों से बालक को कोई रोग न होगा। यदि कभी किसी असावधानी से कोई रोग हो ही जावे तो प्राकृतिक साधन उपवास इत्यादि से ही उसे दूर करना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर किसी आयुर्वेदिक जड़ी बूटी अथवा होम्योपैथिक दवा से सहायता ली जा सकती है। तेज़, विषैली तथा विदेशी औषधि बालक के कोमल शरीर में घुसेड़ना उसको मृत्यु की ओर धकेलना अथवा उसको सर्वदा के लिये रोगी बनाने का उपाय है। इसी प्रकार बालकों का बिस्कुट, केक, अण्डा, चाय, अफीम इत्यादि खिलाना उनको विष देने के समान है। हाँ डेढ़ वर्ष से ऊपर आयु वाले बालकों को घर के बने मोटे आटे के बिस्कुट, मठरी, लड्डू इत्यादि थोड़ी मात्रा में ऋतु अनुसार दिये जा सकते हैं। खोमचे वालों से बाज़ार की बनी मिठाई लेने का स्वभाव बच्चों का कदापि न डालना चाहिये। बर्फ, आइसक्रीम इत्यादि की बहुत सी हानियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं, फिर भी इनका चलन न जाने क्यों बन्द नहीं किया जाता है।

बालकों के मुख्य रोग

यूँ तो युवा मनुष्यों की भाँति बालकों के रोगों की सूची भी इस समय बहुत बढ़ गई है, पर समझदार व्यक्ति, जिसने इस पुस्तक का भली प्रकार अध्ययन किया है, उन सभी रोगों की चिकित्सा इन साधनों द्वारा स्वयं कर सकेगा। फिर भी नित्य प्रति होने वाले थोड़े से रोगों की चिकित्सा गृह देवियों की जानकारी के लिये यहाँ लिखी जाती हैं।

1. **पेट का बिगाड़–**इससे बालक को कभी कब्ज़, कभी दस्त, कभी पेट में दर्द और कभी उल्टी होती है। बालक रोता है और उसे सर्दी, जुकाम, खांसी और कई प्रकार के ज्वर होते हैं। इन सबका मूल कारण पेट का बिगाड़ ही होता है।

चिकित्सा

पेट की खराबी में बालक का भोजन रोकना आवश्यक है। यह उचित नहीं है कि बच्चे को पानी के सदृश पतले दस्त भी आ रहे हैं और हम दूध भी पिलाये जा रहे हैं। कुछ समय तक दूध रोककर पानी की पट्टी पेट पर बाँध दें अथवा कटि-स्नान कराने से दस्त बन्द हो जावेंगे। एक बालक को एक सप्ताह से दस्त आ रहे थे और एक एलोपैथिक डाक्टर अपनी सब चिकित्सा कर चुके थे पर दस्त बन्द न होते थे। अब उसे मुझे दिखाया गया और पहली बार टब में बिठाया गया तो सबसे पहले और आश्चर्य की यह बात हुई कि दो ढाई वर्ष का बालक टब में बैठने से ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे वह इसकी प्रतीक्षा कर रहा हो। उसके पश्चात् तीन घण्टे तक उसे कोई दस्त नहीं हुआ और फिर बँधा हुआ पाखाना हुआ।

2. **कब्ज़–**हो तो मिट्टी की पट्टी बाँधे। छः मास से ऊपर के बालक को वस्ती कर्म करावें। छोटे बालकों को मुनक्का, मधु और सनाय की पत्ती का शर्बत भी आवश्यकता पड़ने पर दिया जा सकता है। माता को मल बन्द हो तो उसे वस्ती कर्म करावें।

3. **पेट का दर्द–**इसमें गर्म सेंक (Fomentation) व मिट्टी की पट्टी से काम लेवें। आवश्यकता होने पर वायकेमिक औषधि मैग्नेशिया फास ३X गर्म पानी में घोलकर दी जा सकती है। गर्म पानी में नींबू का रस पिलाना भी लाभकारी है।

4. **सूखा–**बहुत दिनों तक दस्त अथवा बुखार आने पर, दाँत निकलने के समय अथवा अन्य अवसर पर जब सूखा रोग हो जाता है, तब अधिक चिन्ता करनी पड़ती है। ऐसी अवस्था में पानी और मिट्टी की पट्टी के अतिरिक्त नित्य प्रति मालिश करके बालक को धूप में लिटावें। यदि दस्तों की शिकायत अधिक हो तो एक दो दिन भोजन बिल्कुल रोक दें और फिर अन्न का भोजन न देकर केवल दूध देवें और उसके ऊपर से केवल अंगूर का रस पिलावें। अन्य समय में सन्तरा भी देवें और एक दो तोला गधी का धारोष्ण दूध देवें जो सूखा की परीक्षित औषधि है। यदि यकृत दोष हो तो प्रातःकाल निहार मुँह पपीते का दूध दो चार बूंद बताशे में रखकर देवें।

5. **ज्वर–**भोजन रोककर अथवा सन्तरे का रस देते हुये मिट्टी अथवा पानी की पट्टी बाँधे और वस्ती कर्म करावें। इससे मियादी बुखार भी शीघ्र ठीक हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर जब कई दिन तक लाभ न हो तब अतीस इख्विनी एक दो ग्रेन मधु के साथ दिन में दो तीन बार दिया जा सकता है।

6. **पसली चलना–**मिट्टी की गर्म पट्टी बाँधे। वस्ती कर्म करावें तथा भोजन रोक दें। वायकेमिक औषधि फेरम फास (Ferrum Phos 6x) व काली मर (Kali Mur 6x) दो दो घण्टे के पश्चात् अदल बदल कर देवें। मात्रा एक से लेकर तीन ग्रेन तक बालक की आयु के अनुसार होगी। गर्म सेंक (Fomentation) से भी लाभ होता है।

7. **खांसी–**वस्ती कर्म तथा मिट्टी की पट्टी से दूर हो जाती है। धूप-स्नान भी उपयोगी है। मौरेठी की मुठिया बनाकर बालक को चुसाना भी हितकर है।

पाठ 9

आँख के रोग

आँख दुखना

कारण

आँख में कुछ पड़ जाना, धुआँ लगना, बहुत ठण्डी वायु अथवा बहुत तेज धूप में अधिक समय तक रहना, जुकाम और नजला तथा पेट की खराबी इत्यादि इसके कारण होते हैं। बालकों के दाँत निकलने के समय भी आँख दुःख आया करती है। कुछ अन्य रोग जैसे:–चेचक, खसरा और कण्ठमाला इत्यादि भी आँख दुखने के कारण बन जाते हैं।

लक्षण

आँख लाल हो जाती है, पपोटे सूज जाते हैं, पानी निकलता है, कड़क होती है, दर्द होता है और कीचड़ आता है इत्यादि।

चिकित्सा

वस्ती कर्म, उपवास और फलाहार तथा आँख पर मिट्टी की गीली पट्टी बाँधने से प्राय: रोग अच्छा हो जाता है। खट्टे फल न खावें। यदि रोग पुराना हो तो कटि-स्नान भी करना चाहिये और भोजन में फलों के अतिरिक्त रोटी और सब्जी भी खा सकते हैं, पर नमक न खाना चाहिये। (जब तक आँख दुखे)।

आँख के अन्य रोग

आँख के अन्य रोगों के विषय में आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा हम अभी अधिक परीक्षण नहीं कर पाये हैं, पर अन्य प्राकृतिक चिकित्सकों का कहना है कि इसी चिकित्सा से आँख के सभी रोग आरोग्य हो सकते हैं। हाँ पुराने रोगों में छः मास तक का समय लग सकता है। हम इस विषय में अपनी सम्मति,

सम्भव है, इस पुस्तक के दूसरे संस्करण में प्रकट कर सकें। यहाँ आँख के कुछ व्यायाम तथा क्रियायें लिखी जाती हैं जिनसे आँखों को बहुत लाभ पहुँचता है।

1. प्रातःकाल हरी घास पर टहलने से आँख की ज्योति बढ़ती है।
2. प्रातःकाल उदय होते ही सूर्य की ओर कुछ देर एक टक देखने से आँख का व्यायाम होता है पर वह निर्बल ज्योति वाले को न करना चाहिये।
3. प्रथम किसी बहुत दूर की वस्तु को एक टक थोड़ी देर तक देखें और फिर बिना पलक मारे ही बहुत निकट की बारीक वस्तु को; जैसे हाथ में लिये हुये कलम की नोंक को देखने लग जावें। इस प्रकार कई बार दूर और निकट की चीज़ को देखें। इससे भी आँख का व्यायाम होता है और आँख की रोगों से रक्षा होती है।
4. इन व्यायामों के पश्चात् किसी ऐसे बर्तन में, जिसमें आपका चेहरा समा सके, ठण्डा पानी भर कर चेहरे को डुबावें और पानी के भीतर आँख खोल कर देखने का प्रयत्न करें। श्वांस फूलने पर चेहरा निकाल लें। इस प्रकार तीन चार बार डुबावें। इसके पश्चात् 40-50 बार पानी के छींटे आँखों पर दें।
5. प्रातःकाल मुँह हाथ धोने के समय जलनेती करने से न केवल आँखों की ज्योति बढ़ती है वरन् सब रोगों से रक्षा भी होती है। जुकाम, नजला इत्यादि सभी रोग दूर रहते हैं और बुद्धि तीव्र होती है। जलनेती की विधि चिकित्सा खण्ड पाठ 1 में देखें।
6. मुँह में पानी इतना भरें कि दोनों गाल फूल जावें। अब इसी अवस्था में आँख खोल कर दूसरे पानी से 10 छींटे एक आँख पर और 10 छींटे दूसरी आँख पर मारें। तत्पश्चात् कुल्ला कर दें।
7. गर्मी से आँख दुःखने आई हो तो बकरी के दूध का फाया, गुलाब जल का फाया अथवा जल जमनी बूटी का रस पानी में डाल कर उसका फाया रखना

हितकर है। सर्दी से आई आँख में पोस्त के बोडों का अथवा खाली गर्म पानी का सेंक (Fomentation) लाभ करता है। कब्ज अथवा वादी चीज़ खाने से आई आँख में वस्ती कर्म से ही दर्द तुरन्त कम हो जाता है।

8. जब आँख में बहुत कष्ट हो तो लक्षण के अनुसार होम्योपैथिक दवा खाने से तुरन्त लाभ होता है और नींद आ जाती है। एकोनाइट (Aconite), आर्स (Arc), पल्स (Pulse), एपिस (Apis), अन्जेन्टम (Angentum), विलाडोना (Belladona), रसटाक्स (Rustox), सल्फर (Sulpher), केमोमिला (Camomila), यूफरेसिया Euphrasia), मर्क (Merc), कल्केरिया कार्ब (Calcarea carb) तथा लाइको इत्यादि औषधियों में लक्षण मिलाना चाहिये।

9. त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) रात को किसी मिट्टी के बर्तन में पानी में भिगो दें। प्रातःकाल उस पानी से आँख धोने से आँख की रोगों से रक्षा होती है।

10. गऊ का मक्खन प्रातःकाल खाना, गऊ का धारोष्ण दूध पीना और गऊ घृत गर्म करके सूर्योदय से पूर्व नाक के नथुनों में दो २ बूंद डालना नेत्र ज्योति और सिर दर्द को लाभ करता है।

11. कान में सरसों का तेल डालने तथा दाँतों को ताजी दाँतून से साफ करने का भी नेत्र ज्योति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

12. बहुत बारीक पढ़ने, लेट कर पढ़ने, मिट्टी के तेल की रोशनी में पढ़ने तथा तेज सवारी ट्रेन, मोटर इत्यादि में बैठ कर पढ़ने से नेत्र ज्योति निर्बल होती है। बहुत तेज सवारी में यात्रा करने से भी नेत्र ज्योति निर्बल होती है।

13. आँख को स्वास्थ्य रखने के विचार से रात्रि में न पढ़ना, अथवा सरसों के तेल की रोशनी में पढ़ना हितकर है।

14. धुआँ, गई, अधिक तेज धूप और विषय भोग तथा बहुत मसाले खाने से आँख को हानि पहुँचती है। आँख के रोग में पत्ती वाले साग भी खाना मना है। बथुआ हानि नहीं करता है। इसी प्रकार आँख दुखने पर दही और मठा भी न खाना चाहिये।

15. बालकों की आँख दुखने में माता का दूध आँख में डालना चाहिये और सरसों के तेल के दीपक से तेल का फाया गर्म करके सेंकना हितकर है। गर्मी से आई आँख में दूध डालें और सर्दी से आई आँख में सेंकें।

16. यदि आँख अधिक सूजी हो जिसके कारण खुलती न हो तो पहले गर्म पानी, अथवा त्रिफला के गर्म पानी, से आँख को स्वच्छ रुई के फाहे से भीतर तक पानी डालकर साफ करें। आँख बंद रहने की अवस्था में यदि कीचड़ भीतर ही रह जावेगा तो आँख के खराब होने की आशंका है। अतः कीचड़ साफ करना परमावश्यक है। फिर कुछ देर पानी से सेंक करने के पश्चात् मिट्टी की ठंडी पट्टी बाँध दें। यदि रोगी बालक हो और पट्टी न बांधने दे तो शुद्ध रसौत पानी में घोलकर गर्मी से आई आँख में ठण्डा और सर्दी से आई आँख में गर्म लेप करें। इससे सूजन पटक जावेगी। दिन में तीन चार बार लेप करें।

17. कभी आँख में कुछ तिनका, धूल, रेल का कोयला इत्यादि गिर जावे तो ऐसे समय सर्व प्रथम यह उपाय करें कि जिस आँख में तिनका गिरा है उसके विपरीत दूसरी आँख को बन्द करके मलें। इससे वह वस्तु निकल जावेगी। यदि इसमें सफलता न हो तो किसी दूसरे व्यक्ति से जो आँख के पलक को लौट सकता हो सहायता लें। वह साफ रूमाल को उंगली में लगाकर उससे धीरे से उस वस्तु को निकाल दे। यदि इससे भी कड़क दूर न हो तो दो बूंद एण्डी का साफ तेल (castor oil) आँख में डालकर सो जावें। स्वयं प्रकृति उस तिनके को निकाल देगी। परीक्षा करके देखें।

पाठ 10

कान के रोग

कान में कुछ पड़ जाना

प्रायः छोटे बालकों के और कभी बड़ों के भी कान में गेहूँ, चना, कंकड़ी, मिट्टी, रुई इत्यादि गिर जाती है। इसकी चिकित्सा यह है:–

कान को सूर्य की ओर करके दूसरा व्यक्ति उस वस्तु को देखे। रात्रि हो तो टार्च से काम ले सकते हैं। यदि वह चीज़ निकट है तो किसी बारीक सलाई, रुई की फुरैरी अथवा बारीक चिमटी से उसे धीरे से निकाल दें। यदि इसमें सफलता न हो तो वस्ती यन्त्र से कान में गुनगुने पानी की धार मारें ताकि वह वस्तु पानी के साथ निकल जावे। इसके पश्चात् कान में से पानी को खाली पिचकारी से खींच लें और फुरैरी अथवा ब्लाटिंग पेपर द्वारा पानी सुखा दें। पानी कान में रहने से दर्द उत्पन्न कर सकता है। यदि इससे भी उस चीज़ के निकालने में सफलता न मिले तो दो चार बूंद एण्डी का तेल अथवा ग्लैसरीन कान में डाल दें। या तो इससे वह चीज़ निकल जावेगी अथवा कान में राद (पीव) उत्पन्न करके राद के साथ निकाल देगी। ऐसी अवस्था में राद साफ करने में प्रकृति को सहायता देनी चाहिये।

यदि कान में अन्न का दाना पड़ गया हो तो वस्ती यन्त्र में पानी के स्थान में सरसों का तेल भर कर उसकी धार कान में डालें और कान नीचे को झुका दें जिससे दाने को निकलने में सुगमता हो। यदि कोई कीड़ा इत्यादि घुस गया हो तो गर्म तेल डालें। जब उससे वह मर जावे तो छींक लेने के लिये नाक में कपड़े की बत्ती डालें और जब छींक आने लगे, तो नाक और मुँह को बन्द करके कान को नीचे झुका दें। इससे भी चीज़ बाहर निकल जाती है।

कान में मैल

यदि कभी कभी सरसों का तेल कान में डालते रहें तो मैल कोई कष्ट नहीं देता और स्वयं निकाला जा सकता है, पर जो लोग ऐसा नहीं करते, उनको मैल जमने से कष्ट हो सकता है। सुनाई कम देता है और कान भारी हो जाता है। ऐसी अवस्था में कभी केवल गर्म तेल (सरसों का) डालने से ठीक हो जाता है। यदि इससे ठीक न हो तो वस्ती यन्त्र से गर्म पानी या गर्म तेल की धार मारें।

कान में दर्द

कान में पानी पड़ने अथवा सर्दी लगने से, तेज ठण्डी हवा बहुत समय तक लगने से, दाँत के खराब होने से अथवा रक्त में गठिया इत्यादि का विष होने से कान में कभी दर्द हो जाता है।

चिकित्सा

सरसों अथवा तिली के तेल में नींबू का रस डाल कर गर्म गर्म तेल कान में डालना चाहिये। यदि आवश्यकता पड़े तो कान को भाप दें और मिट्टी की पट्टी कान के चारों ओर बाँधें। सुदर्शन के पत्तों का अर्क डालना भी लाभ करता है। यदि अन्य किसी रोग के कारण दर्द हो तो उस रोग की चिकित्सा करें।

कान बहना

सर्दी लगने, अजीर्ण होने, किसी चीज़ के कान में पड़ जाने, बच्चों को माता का लेटे लेते दूध पिलाने से अथवा दाँत निकलने इत्यादि कारणों तथा कण्ठमाला, लाल बुखार, चेचक इत्यादि रोगों के कारण भी कभी कान से पीव बहने लगता है।

चिकित्सा

यदि किसी अन्य रोग के कारण कान बहता हो तो उस रोग की चिकित्सा करने पर कान बहना भी बंद हो जावेगा। ऐसी अवस्था में केवल पीव को नित्य

प्रति धो देना परमावश्यक है। उसके लिये नीम के पत्तों को पानी के साथ औटाकर उसमें थोड़ा मधु डाल कर उससे वस्ती यंत्र अथवा रुई की सहायता से पीव साफ कर दें। यदि राद भीतर तक हो तो इस प्रकार करें:–

समुद्र फेन बारीक पीस कर एक चुटकी भर कान में डालें और ऊपर से नींबू का अर्क दो चार बूंद डालें। इससे अंग्रेजी दवा हाइड्रोजन परअक्साइड की भाँति झाग उठ कर मवाद ऊपर आ जावेगा। तब सूखी रुई की फुरैरी से उसे पोंछ दें और अंत को फिर उपरोक्त विधि से धो दें। फिर फुरैरी या ब्लाटिंग पेपर से सुखा कर एक कपड़े की बत्ती बना कर उसे मधु से तर करें और उस पर बारीक पिसी हुई फिटकरी या सुहागा छिड़क कर उस बत्ती को कान में रख दें।

बहरापन

यह किसी अन्य रोग के कारण होता है। उस रोग की चिकित्सा करने से दूर हो जाता है। कभी बहरापन जन्म से होता है और कभी कान का पर्दा फट जाने से होता है। ऐसा बहरापन कदाचित् अच्छा नहीं होता। जन्म का बहरापन कभी कभी अच्छा होते देखा गया है। उसका कारण किसी अंग की बनावट की खराबी होती है जिसको दूर करने पर वह अच्छा हो जाता है।

पाठ 11

दाँत के रोग

दाँतों में खराबी होने का कारण शरीर के अन्य रोग भी हो सकते हैं, और स्थानिक दाँतों व मसूड़ों की खराबी भी हो सकती है। कभी दाँत में दर्द होता है, कभी दाँत हिलने लगते हैं और कभी मसूड़ों में पीव पड़ कर आज कल का प्रसिद्ध रोग पायरिया हो जाता है। डाक्टरी में सब रोगों की सुगम चिकित्सा दाँत को उखड़वाना है। आज हजारों अशिक्षित तथा नियम पूर्वक शिक्षा प्राप्त दाँत के डाक्टर बाजार में बैठ कर भोली भाली जनता को दाँत उखड़वाने का परामर्श दिया करते हैं। वह कभी २ तो इतना भय दिलाया करते हैं कि यदि दाँत न उखड़वाये तो जीवन खतरे में है। लेखक डेण्टल कालिज का विद्यार्थी रहने और दशों वर्ष उसी के आधार पर हजारों रोगियों के दाँत उखाड़ने का अनुभव रखता है। पर अब उसे अपने उस कृत्य पर पश्चाताप हो रहा है क्योंकि बाद के अनुभवों ने यह सिद्ध किया कि उनमें से अधिक रोगी ऐसे थे कि जिनके दाँत न उखाड़े जाते तो वह इससे अच्छी अवस्था में होते। स्वयं लेखक के दाँत बर्फ इत्यादि के प्रयोग से बालकपन से ही खराब हो चले थे। अन्त को वह खराबी बढ़ते बढ़ते ४० वर्ष की अवस्था में, कुछ दाँतों में कठिन पीड़ा प्रारम्भ हो गई। अनेकों उपचार किये पर कुछ लाभ न हुआ। कम से कम 50 डाक्टरों की सम्मति दाँत उखड़वाने की थी। पर लेखक उस समय दाँत उखाड़ने का कार्य बन्द करके लोगों को दाँत न उखड़वाने का परामर्श देने लगा था। अतः सिद्धान्त रूप में उन पचासों डाक्टरों की सम्मति पर आचरण करना उचित प्रतीत न हुआ। तब होम्योपैथिक औषधियों और कुछ अन्य प्राकृतिक साधनों तथा भोजन सुधार का क्रम जारी रक्खा गया। क्रमशः धीरे धीरे दाँतों की पीड़ा कम होने लगी और कुछ समय में बिल्कुल जाती रही। जिन दाँतों के उखड़वाने का परामर्श 40 वर्ष की अवस्था में दिया गया था, वह एक एक करके 15 वर्ष पश्चात् प्राकृतिक ढंग पर ऐसे उखड़े कि न कुछ पीड़ा हुई और न एक बूंद रक्त बहा। दाँतों के उखड़वाने की सम्मति देने वाले बड़े डाक्टरों

के परामर्श का मूल्य पाठक स्वयं समझ लें। इसी कारण आप बीती कहानी यहाँ लिखी गयी है।

हमारी सम्मति में दर्द के समय धैर्य से काम लेते हुये देशी अथवा होम्योपैथिक औषधियों के प्रयोग से तात्कालिक लाभ उठाना चाहिये।

रसाहार, फलाहार, वस्ती कर्म तथा भाप-स्नान से स्थायी चिकित्सा करनी चाहिये।

पायरिया

एक मास तक केवल फलाहार और वस्ती कर्म करने से खराब से खराब पायरिया के केस अच्छे होते देखे गये हैं। कुछ केस ऐसे भी होते हैं कि जिनमें 6-6 मास तक चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्था में फलों के साथ, सब्जी रोटी तथा गाय का दूध भी खाया जा सकता है।

दाँतों को अच्छी अवस्था में रखने के लिये यह सिद्धान्त समझ लेना चाहिये कि दाँतों के पोषण के लिये रक्त में कैल्शियम (Calcium) और सिलिकोन (Silicon) नामक दो पदार्थों का होना अति आवश्यक है। कैल्शियम पालक, बथुआ, मूली, गाजर, हरी मटर, नींबू, चुकन्दर, सन्तरा इत्यादि में और सिलिकोन बिना छने आटे की रोटी, खीरा, ककड़ी, बिना छटे चावल, खजूर, किशमिश, अंजीर इत्यादि में खूब पाया जाता है। दाँत साफ करने को नीम, बबूल, सहोड़ा इत्यादि की दाँतून उपयोगी है। दाँतून ताजी और मुलायम हो और धीरे धीरे रगड़ना चाहिये; बहुत ज़ोर से नहीं। मार्ग चलते हुये और बातचीत करते हुये दाँतून करना हानिकारक है। भिन्न भिन्न वृक्षों की दाँतून के पृथक पृथक प्रभाव निम्नलिखित हैं:–

1. बबूल और मौलसिरी की दाँतून दाँतों को दृढ़ करती है।
2. नारंगी की दाँतून के साथ पिसा नमक दाँतों पर मलने से दाँत चमकने लगते हैं।

3. नीम की दाँतून दुर्गन्ध दूर करती है, दाँत साफ करती है, मुँह की विरसता, लवलवापन, दाँत और जिह्वा के रोगों को दूर करती है तथा अन्न खाने में रुचि और मन में प्रसन्नता उत्पन्न करती है।

4. कन्जे की दाँतून पीड़ा और मसूड़ों के हर प्रकार के दर्द और खून को रोकती है।

जब दाँतून न मिले तब कोयला और नमक पीस कर अथवा मिट्टी से दाँत साफ कर लेना चाहिये। रोगी अवस्था के साधारण मंजन इस प्रकार हैं:–

1. रीठा की गुठली जला कर, पीस कर और सेंधा नमक मिलकर मलने से दाँत दृढ़ होते हैं और यदि वस्ती कर्म और प्राकृतिक भोजन से पेट ठीक रखा जावे तो साधारण हिलते दाँत भी जम जाते हैं।

2. बादाम का छिल्का जलाकर नमक के साथ पीसकर मलने से भी दाँत दृढ़ होते हैं।

3. जिस समय दाँत में बहुत पीड़ा हो तो लौंग के तेल (clove oil) की फुरैरी लगाकर राल टपकाने से दर्द में तुरन्त कमी होती है। बाद में कारण को दूर करने वाली चिकित्सा और भोजन सुधार से स्थायी लाभ प्राप्त करना चाहिये।

4. बरगद की जटा का वफारा भी दर्द को बन्द करता है।

चेतावनी

1. युवावस्था में पतली चीज़ अधिक न खाकर कड़ा भोजन जैसे बिना रसा की सब्जी, मोटी रोटी और गदर अमरूद इत्यादि खूब चबा चबा कर खाने से दाँतों का व्यायाम होता है। इससे दाँत पुष्ट होते हैं। बर्फ, आइसक्रीम, गर्म रोटी खाकर बहुत ठण्डा पानी पीना, तथा अधिक मिठाई व चाट खाने से दाँत खराब होते हैं।

2. हर बार शौच व मूत्र करते समय नीचे ऊपर के दाँतों को परस्पर खूब दबा रखना भी दाँतों को पुष्ट करता है।

3. प्रातःकाल मुँह में सरसों का तेल भर कर कुछ मिनट तक मुँह में रखकर, इधर उधर फिराना और फिर कुल्ला कर देना दाँतों को पुष्ट करता है।

पाठ 12

बुढ़ापे के रोग

प्राचीन काल में जब हम लोग वैदिक मर्यादा का पालन करते हुये संयम से रहते थे और दूध घी की प्राप्ति के लिये गऊ की सेवा करना अपना धर्म समझते थे, तब 70-75 वर्ष की आयु में कुछ कुछ बुढ़ापे के लक्षण दिखाई देते थे। चरक ऋषि ने 70 वर्ष के पश्चात् ही बुढ़ापा माना है पर आजकल हमने मर्यादा भ्रष्ट होकर जहाँ ब्रह्मचर्य इत्यादि के नियमों को छोड़ दिया है वहाँ गऊ की ओर से उपेक्षा कर दूध का उत्पादन इतना घटा लिया है कि प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में तोला और माशों में पड़ता है। उसे भी हम चाय जैसी विषैली चीज़ में डालकर पीते हैं। ठण्डे देशों के अनुकरण में कपड़े भी ऐसे बन्द पहनते हैं कि शरीर को सूर्य की किरणों और प्रकाश छू न जावे। अधिक लोगों को तो विवशता से तंग मकानों में रहना ही पड़ता है पर जिन लोगों के पास कोठी और बंगले हैं, वह भी विदेशी सभ्यता के अनुकरण में कमरे से बाहर धूप में न बैठ जाड़ों में भी चिक डाले भीतर बैठे रहते हैं और बाल्यकाल से ही पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त करके अपने विचारों से 40 वर्ष की आयु में ही बूढ़ा होने का गौरव प्राप्त कर लेते हैं। पर जिन देशों की बुरी बातें हम अपनाते हैं, वहाँ इस समय 80 और 90 वर्ष का वृद्ध भी अपने को युवा समझता है और वह किसी उत्तम बात की सत्यता को समझने पर उसके अपनाने में कटिबद्ध हो जाता है। जैसे कुछ समय पूर्व वह लौंग मक्खन तो खाते थे पर दूध के गुणों से अनभिज्ञ थे। अब दूध के गुण जान लेने पर उन्होंने अपने यहाँ दूध की उपज इतनी बढ़ा ली है और इतना सस्ता कर दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति भर पेट पी सके। इसी प्रकार स्वास्थ्य के विषय में वह इतने सचेत हैं कि वियेना और अमेरिका के कई नगरों में फिर से जवान बनने के "स्वास्थ्य गृह" सन् 1923 ई० में खोले गये हैं, जहाँ फिर से युवा होने के लिये बहुत से धनवान प्रौढ़ नर नारी एकत्रित होते हैं। रश्मि और साफ सूर्य

किरण में रोगी को रखकर और विशेष भोजन द्वारा उनकी चिकित्सा की जाती है। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि बनारस के बड़े बड़े संस्कृत के विद्वान एक धोती और अंगौछा का प्रयोग कर आयु पर्यन्त सूर्य किरणों का उपयोग करके सौ वर्ष तक युवा सदृश्य रहने वाले हम लोगों से अधिक बुद्धिमान थे। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हम वैदिक मर्यादा के अनुकूल प्राकृतिक जीवन बाल्यकाल से ही व्यतीत करें और युवावस्था में शरीर का दुरुपयोग न करें तो हमें बुढ़ापे के रोगों का सामना करके दुःख न उठाना पड़े। जिन्होंने इसके विपरीत किया है उनको 40 से लेकर 50 वर्ष तक की आयु में शारीरिक क्षय के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जैसे दृष्टि और सुनने की शक्ति का कम होना, हड्डियों में गड़बड़ी, पेशियों का झुकना, शिथिलता और निर्बलता के कारण शारीरिक ताप कम हो जाना, हाथ पैर इत्यादि ठंडे मालूम होना, नाड़ियों में चूने का भाग अधिक परिमाण में जमा होना, इत्यादि कारणों से रक्त संचालन में और पाचन क्रिया में गड़बड़ी, रीढ़ की हड्डियों का टेढ़ा होना, मानसिक विचारों का निस्तेज होना, शरीर में वायु का भाग बढ़ जाना, पेट में अफारा रहना और मन व्याकुल रहना इत्यादि।

चिकित्सा

1. दाँत हिलने पर कभी भी उखड़वाने का विचार न करें किन्तु दाँतों की चिकित्सा पाठ 11 के अनुसार करें।
2. आँख की ज्योति कम होने लगे तो पाठ 10 के अनुसार चिकित्सा करें।
3. पेट का कोई भी विकार हो तो पाठ 5 में बताये गये अनुसार पेट के रोगों की चिकित्सा करें।

यह सब करते हुये इस बात का सर्वदा ध्यान रखें कि युवावस्था के काम और भोजन और हैं और बुढ़ापे के काम तथा भोजन पृथक है। जहाँ युवावस्था में खूब पुरुषार्थ और व्यायाम करना लाभदायक है और अधिक आराम करना हानिकारक है, वहाँ बुढ़ापे में थोड़ा काम, मानसिक शांति और हल्का व्यायाम

भ्रमण इत्यादि ही हितकर है। युवावस्था में जहाँ खूब पौष्टिक भोजन लाभदायक है, वहाँ बुढ़ापे में सुपाच्य भोजन दूध और फल अधिक उपयोगी हैं। जिनके दाँत गिर गये हैं, उनको तो ऐसा भोजन करना ही नहीं चाहिये जो भली प्रकार चबाया न जा सके। भोजन की मात्रा भी घटा देनी चाहिये। पेट खराब होने पर उपवास और वस्ती कर्म से सहायता लेनी चाहिये। रसाहार विशेष उपयोगी है। नींबू, नारंगी, संतरा तथा अनार के रस से बहुत से बूढ़े मनुष्य डरते हैं और कहते हैं कि हमें ठंड लग जावेगी पर यह भ्रम है। मीठे संतरे और मीठे अनार से तो डरने की कोई बात ही नहीं है। हाँ नींबू, खट्टा अनार और नारंगी विकार निकालने वाले तेज पदार्थ हैं। इस कारण ऐसे लोगों को जिन्होंने बहुत समय से अपने शरीर में विकार एकत्रित कर रखे हैं, पहली बार सर्दी जुकाम इत्यादि हो सकता है, जो उनके लिये हितकर है। जैसा कि पूर्व बताया जा चुका है, इस बात को खूब समझ लें कि यह असम्भव है कि आप विकार भी शरीर में दबाये रहें और रोगों से मुक्त भी रह सकें। इस लिये विकारों का निकाल देना ही उत्तम है।

बुढ़ापे में धन की चिन्ताओं से मुक्त रहना, ईश्वर से प्रेम होना और सब पर दया भाव रखना, जीवन को शांत और दीर्घ बनाते हैं। नींद तो बुढ़ापे में प्रायः कम हो ही जाती है। ऐसी अवस्था में अधिक समय पलंग पर पड़े पड़े व्यर्थ की बातों को सोचने की अपेक्षा, यदि उठकर कोई परोपकार का कार्य अथवा ईश्वर भजन करें और ब्रह्म मुहूर्त में भ्रमण के लिये बाहर निकल जावें और भोजन इत्यादि में उपरोक्त नियमों का पालन करें तो जीवन भी शान्ति से बीतेगा और मृत्य भी शान्तिपूर्वक होगी।

पाठ 13

रक्त चाप का बढ़ना

(High Blood Pressure)

विदेशी सभ्यता की देन यह अमीरों की बीमारी है, पर कभी कभी अन्य लोग भी, जो चाय, कहवा, मदिरा, मांस, अंडा, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट इत्यादि का अधिक प्रयोग करते हैं और आलसीपन का जीवन बिताते हैं, इसमें फंस जाते हैं। रक्त ले जाने वाली नली में उपरोक्त चीज़ों के कारण विकार एकत्रित हो जाते हैं जिससे नली सकरी पड़ जाती है और रक्त संचार में रुकावट होती है। इस कारण हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे रक्त का दबाव बढ़ जाता है। सिर में चक्कर, दिल में घबड़ाहट और परेशानी सी रहती है। इस अवस्था के पश्चात् कभी फालिज भी हो जाता है। सिर भरा भरा सा लगता है।

चिकित्सा

1. सबसे पहले शक्ति अनुसार कई दिन का उपवास करें और दोनों समय वस्ती कर्म करें। फिर जब तक रह सकें केवल रसाहार पर रहें और वस्ती कर्म एक समय जारी रखें। इसके बाद फलाहार पर रहें। फिर कुछ दिनों के बाद दो समय फल और एक बार रोटी और सब्जी खावें।
2. उपवास के पश्चात् से ही एक समय कमर-नहान और दूसरे समय उपस्थित-स्नान प्रारम्भ कर दें।
3. डेढ़ मास के पश्चात् फिर एक-दो दिन का उपवास करके कई दिन रसाहार और फलाहार करें। कई मास तक चिकित्सा जारी रखना चाहिये। मस्तिष्क पर अधिक प्रभाव हो तो रीढ़ की पट्टी भी लेवें।
4. इस रोग में धूप-नहान व भाप-नहान भी मना है।

5. हो सके तो सच्चे मोतियों की माला इस प्रकार पहिने रहें कि मोती हृदय को स्पर्श करते रहें।

6. मृगी इत्यादि अन्य मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों की वही चिकित्सा है।

घटा रक्त चाप

रक्त चाप घटने अथवा निर्बलता भी एक रोग होता है। इस रोग में सिर खाली सा मालूम होता है। सिर के हल्केपन और खाली रहने के कारण निर्बलता रहती है। चलते समय पैर लड़खड़ाते से मालूम होते हैं। रोगी गिर भी सकता है।

चिकित्सा

इस रोग में भी विकार निकालने का सिद्धान्त वही है; पर निर्बलता के कारण न तो अधिक उपवास एक साथ करना चाहिये और न अधिक वस्ती कर्म ही एक साथ करें; किन्तु एक दिन का उपवास और वस्ती कर्म करके दूसरे दिन से ही रसाहार और फिर फल व दूध का आहार कई दिन तक रक्खें और बीच बीच में वस्ती कर्म से सहायता लेवें। थोड़े समय के पश्चात् दो समय फल, जिसमें शक्तिदायक अनार, अंगूर व सेब भी हों दूध के साथ लेवें और एक समय रोटी भाजी खावें। नित्यप्रति दोनों समय कटि-स्नान करें और उसके पश्चात् शुद्ध वायु में भ्रमण करें। आवश्यकता पड़ने पर फिर उपवास के क्रम को दोहरावें।

जब विकार निकल जावें तब फलों के साथ 2-4 बादाम लेना उपयोगी है। वायकेमिक दवा काली फास ६X (Kali Phos 6x) लाभदायक है। मधु प्रारम्भ से ही खाया जा सकता है। मुनक्का, किशमिश, छुहारे भी भोजन के अंग बनाये जा सकते हैं, पर अति न करें और पाचन विकार न होने दें।

पाठ 14

नाड़ी संस्थान के रोग

स्नायविक दुर्बलता (Neurasthenia)

लक्षण

किसी काम में जी न लगना, शारीरिक तथा मानसिक सुस्ती, नींद न आना, सिर घूमना, सिर में दर्द, हिस्टीरिया, माथे के सामने या पिछले भाग में दर्द, कलेजा धड़कना, देखने या सुनने की शक्ति का कम होना, पेट फूलना, अरुचि, अजीर्ण, बदन व हाथ पैरों में झुनझुनी, स्मरण शक्ति का कम पड़ जाना।

कारण

बहुत शारीरिक या मानसिक परिश्रम करना, हस्तमैथुन या लगातार इन्द्रिय परिचालन, व्यवसाय, कामकाज आदि की चिन्ता, माता पिता का स्नायविक दुर्बलता रोग, बहुत रक्त स्राव, बार बार गर्भ धारण इत्यादि।

चिकित्सा

1. प्रथम कारण को हटावें और तीन दिन दोनों समय वस्ती कर्म करें तथा रसाहार करें।

2. चौथे दिन से एक समय उपस्थित-स्नान और एक समय रीढ़ की पट्टी करें। भोजन में फल तथा गाय का ताज़ा दूध अधिक खावें। फलों में लीची बहुत उपयोगी है। सब्जी रोटी भी खावें। किसी समय केवल रसाहार करें। प्रारम्भ से ही प्रातःकाल तथा सायंकाल शक्ति के अनुसार भ्रमण करें और ज्यों ज्यों शक्ति बढ़ती जावे भ्रमण भी बढ़ाते जावें। जब कभी पेट खराब हो तो उपवास करें और दोनों समय वस्ती कर्म करें। धूप-नहान, भाप-नहान तथा फल, व्यायाम आदि से कब्ज़ तथा नाड़ी संस्थान के अन्य रोग; दिल

की धड़कन इत्यादि भी, इसी उपचार से चले जाते हैं। इस बात का ध्यान रखें कि दिल की धड़कन, यदि कब्ज़ के कारण हो तो धूप-नहान और भाप-नहान लाभ करते हैं और यदि हृदय की निर्बलता के कारण हो तो ऐसी अवस्था में धूप-नहान, भाप-नहान उचित नहीं है, बल्कि कटि-स्नान और गीली पट्टी से काम लेना चाहिये।

पाठ 15

विविध रोग

क. उपाङ्ग प्रदाह (Appendicitis)

पाक स्थली की उपाङ्ग नाली का एक भाग दूसरी ओर बन्द रहता है। वह भाग एक ओर को लटका रहता है। खाने के नियम का उल्लंघन करने पर जब दुर्भाग्य से कोई पदार्थ उसके भीतर चला जाता है, तब वहाँ दूसरी ओर निकलने का कोई मार्ग न होने के कारण, वह चीज़ वहाँ ही सड़कर प्रदाह उत्पन्न कर देती है। इसी प्रदाह को उपाङ्ग प्रदाह या (Appendicitis) कहते हैं। यह प्रदाह कभी तो साधारण और कभी बड़ा तीव्र होता है। रोगी छटपटाता है और इस प्रदाह से कभी मृत्यु भी हो जाती है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही इस रोग का यह नामकरण संस्कार हुआ है। इसके पूर्व इसके अन्य नाम थे। खाई हुई वस्तु सहज में न पचने पर (विशेषतया गठिया या सन्धि -वात वाले रोगियों को) यह रोग हुआ करता है।

दुर्भाग्य की बात है की वर्तमान वैज्ञानिकों को अभी तक शरीर के इस अंग का कोई कार्य ही ज्ञात नहीं हुआ है। उनकी सम्मति में भगवान ने इस व्यर्थ अंग को बनाने की भूल की है। अतः वे इस रोग के होने पर इस अङ्ग की चीड़ फाड़ करने में कुछ हिचक नहीं करते। हमारी सम्मति में इस भाग का एक उपयोग तो यह ज्ञात होता है कि मनुष्य जब पेटूपन से अपनी आँतों को ठसाठस भर लेते हैं, तो इस भाग में वायु भरी रहने से वायु का कुछ भाग आँतों को चलायमान करने को वहाँ पहुँचता रहता है। इसके और भी उपयोग हो सकते हैं। भगवान भूल नहीं करते। मनुष्य अल्पज्ञ होने के कारण उसके सब कार्यों को नहीं समझ पाता। इस रोग से बचने के लिये हमें निम्न उपाय करने चाहिये।

1. पेट को खूब ठसाठस नहीं भरना चाहिये।

2. कोलन को सर्वदा साफ रखना चाहिये।

लक्षण

पेट की दाहिनी ओर दर्द (कभी कभी रोगी को कई हफ्ते तक यह दर्द मालूम नहीं होता), इसके बाद इस दर्द का धीरे धीरे बढ़ना और साथ ही साथ ज्वर तथा आमाशय यंत्र की क्रिया की गड़बड़ी से उत्पन्न कष्ट, उल्टी, इत्यादि इस रोग का प्रथम कारण है।

इस अवस्था में यदि प्रदाह अच्छा न हुआ तो शरीर के दूसरे यंत्र भी आक्रान्त होकर कष्ट और बढ़ा देते हैं।

चिकित्सा

कष्ट प्रारम्भ होते ही पूर्ण उपवास करें। कभी कभी गर्म पानी पी सकते हैं। दर्द के स्थान पर मिट्टी की गर्म पुलटस बाँधें। तीव्र दर्द में गर्म पानी के टब में कटि-स्नान की भाँति बैठ जावें पर पेडू मलें नहीं। गर्म पानी से वस्ती कर्म करें। प्रथम दिन थोड़े पानी से वस्ती कर्म करें जिससे कष्ट अधिक न बढ़े; फिर धीरे धीरे पानी की मात्रा कई दिन में बढ़ा कर 2 - 2.5 सेर तक रोगी की आयु अनुसार ले जावें। जब दर्द शान्त हो जावे, तब प्रथम तीन चार दिन केवल रसाहार अथवा मठे पर रहें, फिर रसदार फल खावें, अन्न यथा सम्भव देर से खावें। अन्न खाने के साथ ही कटि-स्नान भी प्रारम्भ कर देना चाहिये। यदि मवाद पड़ गया हो तो होम्योपैथिक औषधि से काम लेवें। तीव्र दर्द के समय भी इनकी सहायता ली जा सकती है।

ख. त्वचा और रक्त के रोग

त्वचा के रोगों में अधिकतर फोड़ा, फुंसी व चोट इत्यादि का पक जाना नित्य लगा रहता है। इनमें मिट्टी की ठंडी पट्टी बांधने से सब फोड़े प्रायः बिना कष्ट अथवा कम कष्ट के साथ पक जाते हैं और फूट जाते हैं। फूटने पर नीम के

पत्तों के पानी से, गंगा जल से, अथवा हवन पर रखे जल (जिसमें घी की बूंद आहुति के बाद डाली जाती है) से धोने और उसी प्रकार मिट्टी की पट्टी बाँधने से सब फोड़े अच्छे हो जाते हैं। कष्ट अधिक होने या पकने में देर होने पर वफारा (भाप-स्नान) भी देना चाहिये। पट्टी से सूजन बढ़ जावे तब भी पहले वफारा दें और फिर ठंडी पट्टी बाँध दे। यदि फोड़ा पकने में देर लगे तब वस्ती कर्म, उपवास अथवा फलाहार और कटि-स्नान से भी काम लेना चाहिये। जिन फोड़ों के साथ ज्वर इत्यादि उपसर्ग हों, उनमें तो इन साधनों को भी प्रारम्भ से ही काम में लाना चाहिये। पकने में देर होने और कष्ट अधिक होने पर होम्योपैथिक औषधि हीपर सल्फर 6 (Hepar Sulph 6) अथवा साइलेशिया 3X (Silecia 3X) दो दो घण्टे बाद खाने से प्रकृति को फोड़ा पकाने में तथा कष्ट कम करने में सहायता मिलती है। चमड़े की बीमारी में नमक छोड़ देने और फल व बिना नमक की सब्जी खाने से शीघ्र लाभ होता है। पुराने रोगों में बीच बीच में उपवास भी करना चाहिये।

रक्त तथा त्वचा के कठिन रोग

आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा से साधारण ही नहीं वरन् रक्त और त्वचा के कठिन से कठिन रोग अच्छे हो सकते हैं। पाठकों की जानकारी के लिये हम यहाँ कुछ उदाहरण देते हैं जिनमें से दो तो प्राकृतिक चिकित्सा की सहायता से तथा एक भगवान की प्रेरणा से स्वयं अपनी चिकित्सा करके अच्छा हो गया।

1. एक पच्चीस वर्ष के पुराने एक्जिमा के रोगी को 4 मास में पूर्ण लाभ हो गया। रोग बड़ा भयानक था। सारे शरीर पर चकत्ते और ज़ख्म थे। रोगी इन पच्चीस वर्षों में देश के अनेकों भागों में घूम घूम कर इन्जेक्शन इत्यादि की सब ही चिकित्सायें कराके निराश हो चुका था। इस रोगी को फलाहार के साथ साथ सारे शरीर पर ठंडे जल की गीली पट्टी एक सप्ताह तक नित्य दी गई। नित्य वस्ती कर्म भी कराया जाता था। खाने को केवल फल दिये जाते थे। तथा बीच बीच में उपवास कराया जाता था। फिर एक

सप्ताह के पश्चात् उसे प्रातः सायं कटि-स्नान भी कराया जाता था। कुछ दिनों में ज्वर उभड़ आया जो एक सप्ताह तक चला। ज्वर में उपवास कराया गया और कटि-स्नान जारी रहा। ज्वर उतरते ही चमड़े के ऊपर का कष्ट पूर्व की अपेक्षा और भी अधिक हो गया। ऐसे अवसर पर प्रायः लोग घबड़ा कर चिकित्सा बदल देते हैं पर वह तो सब चिकित्साओं से निराश हो चुका था। उसे बताया गया कि इस कष्ट के बढ़ने का अर्थ यह है कि भीतर के विकार उभर आये हैं। अब कटि-स्नान के साथ मध्याह्न में सारे शरीर की गीली पट्टी भी दी जाने लगी। भाप-स्नान का प्रबन्ध न हो सका जो ऐसे अवसर पर आवश्यक था। 15 दिन के पश्चात् वह कष्ट कम होने लगा। कुछ दिनों तक साधारण अवस्था चलती रही और चिकित्सा जारी रही। तीसरे मास के अन्त में उसे जुकाम हो गया। जुकाम में रोगी को फिर उपवास कराया गया। जुकाम अच्छा होने के पश्चात् ही उसकी अवस्था अच्छी होने लगी और चौथा मास समाप्त होते होते वह पूर्ण आरोग्य हो गया। यह रोगी मांस बहुत खाता था पर अब उसके कुप्रभाव को समझ कर बिल्कुल नहीं खाता।

2. दूसरा रोगी पुरानी खुजली का था। रोगी बहुत निर्धन था। फल भी नहीं खा सकता था। अतः उसे उपवास और वस्ती कर्म के बाद सूखी रोटी बिना नमक के खाने को दी गई और चिकित्सा के रूप में उसे केवल गंगा की मिट्टी मल कर नित्य स्नान करने को कहा गया। इससे उसकी पुरानी खुजली समाप्त हो गई जबकि अन्य अनेकों उपचार विफल हो चुके थे।

3. एक कोढ़ी सब चिकित्साओं से निराश होकर और कष्ट से घबरा कर अपना घर बार छोड़कर थोड़े से चने लेकर एक पहाड़ी पर चला गया। उसका विचार यह था कि चने समाप्त होने पर उपवास रख कर प्राण त्याग दूँगा। चने कुछ दिन में समाप्त हो गये। उसने उपवास प्रारम्भ कर दिया। एक सप्ताह बीत गया पर वह मरा नहीं, किन्तु भूख चमक उठी। पास में नीम के पेड़

थे; उनके पत्ते खाकर जीवन बिताने लगा। इससे उसके रोग में कमी हुई; तब जीवन की इच्छा लौट आई और उसने घर से चने और मंगाये। अब उसका भोजन चने और नीम था और शुद्ध वायु में पहाड़ी पर रहता था। इस प्रकार पाँच मास में उसका कोढ़ पूर्ण रूप से जाता रहा और वह अच्छा हो गया। इस प्रकार त्वचा और रक्त के कठिन से कठिन रोग प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे हो सकते हैं।

ब्रह्मी, सत्यानाशी (कटाई भड़ कटैया), नीम, गिलोय, चिरायता, इत्यादि आयुर्वेदिक बूटियों और सल्फर, सारसापरैला, मेज़ रियम, हीपर सल्फ, साइलेशिया, कल्केरिया सल्फ़ इत्यादि होम्योपैथीक/ वायकेमिक औषधियों से कभी कभी बड़ी सहायता मिलती है। खाज अधिक कष्ट दे रही हो तो गाय का गोबर मल कर दो घण्टे पश्चात् स्नान करे; तुरन्त लाभ प्रतीत होता है।

ग. खांसी व दमा

खांसी कई प्रकार की होती है। शरीर में विकार रहने पर, कभी सर्दी लगने, खट्टी चीज़ खाने इत्यादि से हो जाती है। ऐसी खांसी एक दो दिन के उपवास, वस्ती कर्म तथा भोजन सुधार से चली जाती है। किसी बड़े साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। गर्म पानी में नीबू डाल कर पीवें। सम्भव है कि इससे पहले खांसी कुछ बढ़े पर जड़ से चली जाती है। महीनों का झगड़ा नहीं रहता। नीबू प्राप्त न हो तो उपवास के दिनों में संतरे का रस पी सकते हैं। पुरानी खांसी में पहले दस दिन तक केवल फल खावें, फिर तीन दिन तक रसाहार करें व उपवास करें। तत्पश्चात् एक सप्ताह तक केवल फल और एक सप्ताह तक एक समय रोटी सब्जी और दूसरे समय फल खावें। तत्पश्चात् दोनों समय सब्जी रोटी। यदि अधिक पुरानी खांसी व दमा है तो यह क्रम दोहराना चाहिये।

फलाहार के समय वस्ती कर्म नित्य करें; फिर आवश्यकता पड़ने पर करें। एक समय कटि-स्नान और दूसरे समय उपस्थित-स्नान करें। वस्ती कर्म से पूर्व

मिट्टी की पट्टी बाधें। निमोनिया इत्यादि की कष्टकर खांसी में सीने पर गर्म मिट्टी की पुलटस तथा ठण्डा गर्म सेंक भी अच्छा है। दमा के रोगियों को रात का भोजन अँधेरा होने से पूर्व ही कर लेना चाहिये और यदि हो सके तो सायं के भोजन में केवल मुनक्का लेवें। दमा और पुरानी खांसी के रोगियों को प्रातः सायं उस सामग्री से यज्ञ करना चाहिये जो 'यज्ञ चिकित्सा' पुस्तक में चिकित्सा खण्ड पाठ 1 में नं० 1 पर लिखी है। एक छोटा नुस्खा यहाँ भी लिखते हैं।

गूगल, गिलोय, विसौटा प्रत्येक 1 सेर, त्रिफला, अगर, तगर, जटामासी, मुनक्का प्रत्येक ½ सेर, कपूर देशी 1 पाव, शकर देशी सवा सेर।

घी गाय का इतना कि सामग्री तर हो जावे। हवन की विधि "यज्ञ चिकित्सा" पुस्तक में देखें अथवा अपने पुरोहित से पूछें।

घ. टान्सिल बढ़ना

गले की कौड़ियों की सूजन को डाक्टरी में टान्सिल बढ़ना अथवा टान्सालाइटिस कहते हैं। इस रोग में खांसी भी रहती है। प्रायः खांसी का कष्ट होने पर ही कौड़ियों की सूजन को देखा जाता है। एलोपैथी में कौड़ियों को निकलवाना ही इसकी उत्तम चिकित्सा है क्योंकि "न रहे बाँस न बजे बाँसुरी", पर कौड़ियों के सूजने का कारण शरीर के विकार हैं। यदि कौड़ियाँ न रहेंगी तो किसी दूसरे अंग द्वारा रोग प्रकट होगा। प्राकृतिक चिकित्सा रोग के कारण को दूर करती है।

चिकित्सा

जब तक पीव नहीं पड़ता केवल वस्ती कर्म और गले तथा गर्दन पर भाप देने से और सुपाच्य भोजन करने से कष्ट दूर हो जाता है। जब पीव पड़ गया हो तब उपरोक्त साधनों के साथ साथ कटि-स्नान और होम्योपैथिक दवा का सहारा लेना आवश्यक है, अन्यथा कौड़ियाँ निकलवाना ही पड़ेगी। निकलवाने के पश्चात्

भी यदि प्राकृतिक साधनों का तथा भोजन-सुधार का सहारा न लिया गया तो अन्य कठिन रोग होने का डर रहेगा।

ङ. लू लगना

लू लगने पर सारे शरीर पर गीली पट्टी 20 मिनट के लिये देवें। एक घण्टा पश्चात् कटि-स्नान करावें, फिर एक घण्टे बाद गीली पट्टी और फिर कटि-स्नान। इस प्रकार दिन भर में तीन बार गीली पट्टी और तीन बार कटि-स्नान पर्याप्त है। यदि ऐसे स्थान पर हों जहाँ इन चीज़ों का प्रबन्ध नहीं हो सकता तो रोगी को खूब ठंडे पानी से देर तक स्नान करावें और वायकेमिक औषधि फेरम फास 6 X (Ferrum Phos 6x) 2-2 घण्टे बाद खाने को देवें। भोजन में केवल रसाहार देवें।

च. प्लेग (ताऊन Plague)

प्लेग बहुत भयानक रोग समझा जाता है, पर इसकी चिकित्सा बड़ी सरल है। ज्वर आते ही, यदि ज्वर की भाँति चिकित्सा प्रारम्भ की जावे और फेरम फास 6 X (Ferrum Phos 6x) दो दो घण्टे बाद खाने को दें तो दूसरे ही दिन रोगी भोजन माँगने लगेगा पर, भोजन सोच समझ कर दें। पहले रसाहार फिर फलाहार और कई दिन के पश्चात् दूध, सब्जी, रोटी इत्यादि देवें। यदि गिल्ट भी हो तो उस पर दिन में तीन चार बार मिट्टी की पट्टी बाँधे और बीच बीच में भाप-नहान देवें। ठण्डा तथा गर्म सेंक भी दे सकते हैं। पपीता (अंड खरबूजा नहीं किन्तु एक औषधि है जिसे अंग्रेजी में Ignatia Beam कहते हैं) पत्थर पर पानी के साथ घिसकर पीने अथवा बाँह पर बांधने से, कहते हैं कि इस रोग से रक्षा होती है। हमें इसके परीक्षण का अवसर नहीं मिला है।

छ. बहुत मोटापा तथा बहुत दुबलापन

कुछ लोग आवश्यकता से अधिक मोटे हो जाते हैं जिससे उनमें काम करने की पूरी शक्ति भी नहीं रहती। ऐसे लोगों को कई दिन उपवास और वस्ती कर्म करके अपने शरीर की सफाई करनी चाहिये। भोजन में दूध, घी तथा मक्खन कुछ समय के लिये त्याग दें। व्यायाम अधिक करें और शीघ्र शीघ्र करें, हवाखोरी में भी तेज़ चलें, गर्म पानी में नीबू निचोड़ कर पीवें, मधु का शर्बत पीवें। ऐसा व्यायाम व कार्य करें जिससे पसीना आ जावे। कभी कभी उपस्थित-स्नान व कटि-स्नान की भी आवश्यकता पड़ सकती है। दूध के स्थान में पतला मठा पी सकते हैं। मोटापा धीरे धीरे घटाना चाहिये। शीघ्रता करने में दिल की कमजोरी की सम्भावना है।

पतले से मोटा होने के लिये प्रथम शरीर की सफाई करें अर्थात् दो तीन उपवास और वस्ती कर्म करने के पश्चात् भोजन में दूध की मात्रा बढ़ावें। रोटी के साथ थोड़ा थोडा मक्खन खावें। देशी शकर के साथ चावल और पिंड खजूर या अंजीर के साथ मक्खन खाना भी हितकर है, पर व्यायाम इस अवस्था में भी जारी रखना चाहिये। मोटापा घटाने को व्यायाम जल्दी जल्दी करना चाहिये और मोटा होने के लिये व्यायाम धीरे धीरे करना चाहिये। मोटा होने के लिये व्यायाम भ्रमण से प्रारम्भ करना चाहिये और इसके लिये चिंता रहित होना आवश्यक है। भोजन नियत समय पर अदल बदल कर करना चाहिये। किसी रोग के कारण हुआ दुबलापन नियमित जीवन रखने से स्वयं ही दूर हो जाता है। हाँ भोजन के विषय में ऊपर के नियमों का पालन करना चाहिये।

ज. गठिया या गांठों की पीड़ा–Acute Gout

यह रोग भी शरीर में विकार एकत्रित होने से होता है। अतः इसमें रोग प्रकट होने से पूर्व पाचन विकार होता है, रात्रि को निद्रा नहीं आती, चिड़चिड़ापन आ जाता है, कभी हृदय धड़कता है, कभी सिर दुखता अथवा चक्कर आता है।

हाथ पांव की उंगलियाँ खिंचती या फड़कती हैं या उनमें सरसराहट होती है। कभी कभी गले में दर्द होता है, मूत्र कम मात्रा में गंदला अथवा अधिक और पतला आता है। इसके पश्चात् प्रायः रात्रि के पिछले भाग में दायें पैर के अंगूठे के जोड़ में या दोनों पैरों के अंगूठों के जोड़ों में और कभी एड़ी या घुटने के जोड़ में इतनी तीव्र पीड़ा होती है कि रोगी तिलमिलाकर जाग जाता है। दर्द वाला स्थान सूजकर लाल हो जाता है और दर्द के कारण हिलाना डुलाना कठिन हो जाता है। ज्वर भी हो जाता है। दिन में ज्वर तथा दर्द में कुछ कमी रहती है और रात्रि को बढ़ जाता है। आठ या दस दिन में प्रायः दौरा समाप्त हो जाता है, पर अप्राकृतिक औषधि देने से कभी देर तक चलता है और बार बार दौरा होता है। जब तक शरीर के विकार निकाल नहीं दिये जाते, रोग की जड़ नहीं जाती। यही नहीं विकार दबाने वाली चिकित्सा से कभी यह रोग पुराना पड़ जाता है और जोड़ों में योरेट आफ़ सोडा (खरिया मिट्टी जैसा) जमा होकर उभार उत्पन्न कर देता है। कभी यही विकार नाक और कान में भी पहुँच जाता है और कभी इन्हीं विकार दबाने वाली औषधियों के कुप्रभाव से जोड़ों का दर्द तो कम हो जाता है जिससे प्रसन्न हो रोगी और डाक्टर दोनों इन्जेक्शन पर इन्जेक्शन की भरमार से काम लेते हैं पर विकार शरीर के भीतर पहुँच जाते हैं, जिससे पेट में दर्द होता है, दस्त और कै आते हैं, स्वांस खिंचती है, छाती में हृदय स्थान पर पीड़ा होती है और कभी कभी इस अवस्था में बेहोश होकर रोगी मर भी जाता है। डाक्टरी में ऐसी गठिया को भीतरी गठिया (Suppressed Gout) कहते हैं, पर इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता कि यदि आरम्भ में ही रोग के विकार न दबाकर बाहर निकाल दिये जाते तो इस कठिन अवस्था का सामना न करना पड़ता। कभी यह रोग गलत इलाज से पुराना हो जाता है, जिसे (Chronic Rheumatism) कहते हैं।

रोग के कारण

माँस मदिरा का प्रयोग, अधिक सर्दी लग जाना या भीगना, किसी जोड़ पर अधिक बल पड़ना, जैसे टेनिस खेलने में कोहनी के जोड़ पर अधिक बल पड़ता है, भोजन की खराबी और स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना।

चिकित्सा

1. पहले तीन दिन उपवास व दोनों समय वस्ती कर्म करें। उपवास के दिनों में गरम पानी में नीबू का रस देते रहें और जिन रोगियों का हृदय अधिक धड़कता हो, उनको नीबू ठण्डे पानी में ही दें तथा संतरे का अर्क भी देवें। तीन दिन के पश्चात् तीन दिन केवल फल देवें और सब्जी भी उबालकर दे सकते हैं। शलजम, पपीता तथा मूली विशेष उपयोगी हैं।

2. भाप-नहान व कटि-स्नान दिन में कम से कम एक बार करें, दर्द तेज़ होने पर कई बार स्थानिक भाप दी जा सकती है। उसके बाद कटि-स्नान दें अथवा पसीना पोंछने के पश्चात् भाप दिये स्थान को ठण्डे पानी के भीगे कपड़े से पोंछ दें। कपड़ा भिगोकर निचोड़ दिया जावे।

एक बहुत सरल चिकित्सा

यदि और कुछ न बन पड़े तो प्रथम एक दिन का उपवास करें और दोनों समय वस्ती कर्म करें। उसके पश्चात् एक तोला बथुआ का साग निहार मुँह 40 दिन तक कच्चा खा लिया करें और यदि जाड़ों के दिन हों तो कई घण्टे धूप में नित्य बैठा करें।

झ. बिवाई फटना

पांव की बिवाई फटना एक बहुत साधारण रोग है पर कभी बहुत कष्टकर होता है। मिट्टी की ठण्डी पुलटस बाँधने से यह कष्ट दूर हो जाता है। बरगद अथवा पीपल का दूध लगाने से भी लाभ होता है।

ञ. मोच

मोच आये भाग को 2-3 मिनट तक पहले गरम पानी में फिर ठण्डे पानी में रखने से लाभ होता है। कई बार ऐसा ही करें।

त. कांटा रह जाना

कांटा भीतर रह जावे तो यथा सम्भव सुई से निकाल दें। गहराई में हो तो आक़ का दूध एक बूंद डालने से कांटा ऊपर आ जायगा, फिर निकाल दें। दूध डालकर ऊपर से कपड़ा बाँध दें।

थ. लकवा-फालिज़

यह कई प्रकार का होता है। उनमें से एक रक्त चाप के बढ़ने से होता है। दूसरा वह जो रक्त चाप घटने से होता है। बढ़े रक्त चाप में जब इस रोग का दौरा होता है तो मनुष्य एकाएक गिर जाता है और उसका कोई अङ्ग अथवा शरीर का कुछ भाग निर्जीव सा हो जाता है। घटे रक्त चाप वाले रोग में एकाएक दौरा नहीं होता, किन्तु धीरे धीरे कमजोरी बढ़ती है, और एक एक करके अंग सुन्न होने लगते हैं। बढ़े रक्त चाप वाले में प्रारम्भ से ही उपवास और रसाहार ज़रूरी है और फिर फलाहार और दूध तथा रोटी पर आवें। इस रोग में पत्तीदार साग तथा टमाटर न देवें।

घटे रक्त चाप वाले में पहले फलाहार (एक सप्ताह), फिर फल और दूध (2 सप्ताह), फिर रोटी, भाजी, फल व दूध (2 सप्ताह), फिर रसाहार (3 दिन) करना चाहिये। रसाहार के बाद फिर फलाहार और नियमित भोजन पर आना चाहिये। रक्त की ऐसिडिटी घटाने वाले फल विशेष रूप से प्रयोग करें और ऐसी जड़ी बूटी वाली औषधि, जो खटाई घटाती तथा विकार निकालती हैं, प्रयोग हो सकती हैं। साथ ही कटि-स्नान, भाप-नहान व नीबू मिले तिली के तेल की मालिश भी हितकर है पर विशेष ध्यान भोजन पर देने से यह रोग दूर हो सकता है। समय अधिक लगता है पर लाभ अवश्य होता है।

पाठ 16

उपसंहार

जैसा कि इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस समय प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से जो चिकित्सा विधि विदेश में जन्म पाकर हमारे देश में कुछ कुछ फैल रही है, उसका प्रारम्भ केवल जल-चिकित्सा से हुआ है; फिर धीरे २ मिट्टी, अग्नि, सूर्य इत्यादि को सम्मिलित करके होम्योपैथिक अथवा जड़ी बूटी औषधि प्रयोग पर अन्त हुआ है। प्राकृतिक चिकित्सा तो अपने क्षेत्र में इस प्रकार आगे बढ़ रही है। दूसरी ओर एलोपैथी ने भी प्राकृतिक चिकित्सा से प्रभावित होकर एनीमा, बाथ, स्पंज, गीली चादर में लपेटना इत्यादि विधानो को अपने क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया है और अब तो बड़े बड़े सेनीटोरियम और अस्पतालों में इस विचार के डाक्टरों की भी बड़ी संख्या विद्यमान है जो औषधि प्रयोग से उकता कर रोगी को प्रकृति के भरोसे पड़ा रहने का आदेश देते हैं। टी० बी० की चिकित्सा में तो इस साधन का प्रचार बहुत बढ़ रहा है। पर इस साधन की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी डाक्टर लोग इसका प्रयोग केवल उस समय करते हैं जब औषधियों के विकार दबाने वाले प्रभाव से तंग आकर वह लाचार हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में उनको अधिक सफलता न मिलने का मुख्य कारण यह होता है कि विषैली औषधियाँ रोगी के शरीर पर अपना प्रभाव जमा कर विकारों को शरीर से निकलने नहीं देतीं और बिना विकार निकले पूर्ण स्वस्थयता प्राप्त करना कठिन ही नहीं असम्भव है। ऐसे रोगियों को यदि एलोपैथिक चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व प्रकृति पर छोड़ दिया जाता तो निश्चय ही सौ में से 75 रोगी अवश्य आरोग्य हो जाते।

इसी प्रकार यदि प्रेसनीज़, जोहन श्रोथ, लुई कूने तथा डाक्टर टरनर इत्यादि, वेद शास्त्र तथा आयुर्वेद का नियमपूर्वक अध्ययन किये हुए होते और अथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और मनुष्यजा हर प्रकार की चिकित्सा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर

आयुर्वेद के आधार पर प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करते तो इस समय के उपयुक्त होने के कारण आज आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा का ही घर घर में प्रचार होता जिससे जहाँ देश में रोगों की इतनी भरमार न होती वहाँ देश का करोड़ों रुपया विदेश को न जाता। अस्तु, अब तक जो होना था, हो गया। यदि अब भी हम चेत जावें तो देश का कल्याण कर सकते हैं जिसके लिये हमें निम्नलिखित साधनों को तुरन्त अपनाना होगा।

1. हमें अपना दृष्टिकोण बदल कर अपना मुँह पश्चिम से हटा कर भारत के बहुत प्राचीन समय की ओर करना होगा। इसके लिये जनता को अपने ऐसे प्रतिनिधि शासन में भेजने होंगे जो केवल पाश्चात्य आधुनिक विद्याओं के पण्डित न हों किन्तु प्रथम वेद शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर आधुनिक विद्याओं को सीखें जिससे इन विद्याओं के वास्तविक रूप को समझ सकें। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम आधुनिक विज्ञान से लाभ न उठावें किन्तु हमारा दृष्टिकोण बदल जाना चाहिये कि आधुनिक विज्ञान ही सब कुछ है और हमारा प्राचीन साहित्य कोई नवीन खोज नहीं कर सकता। वास्तव में आधुनिक विज्ञान तो अभी बहुत ही अपूर्ण अवस्था में है और हम अपने प्राचीन विज्ञान से ही बहुत कुछ आगे बढ़ सकते हैं। उदाहरणार्थ सुश्रुत में चंद्रकांत का उल्लेख मिलता है। जब शरीर के भीतर अत्यन्त गर्मी हो तो उसे शांत करने के लिये चंद्रकांत से उत्पन्न जल की कुछ बूंदें दी जाती थीं। उससे वह गर्मी शांत हो जाती थी। (चंद्रकांत एक प्रकार का शीशा होता है जो आतशी शीशे के विपरीत गुण रखता है अर्थात् जिस प्रकार आतशी शीशे को सूर्य के सम्मुख करने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार चंद्रकांत को चन्द्रमा के सम्मुख करने से जल उत्पन्न हो जाता है।)

   'नैषद्' हर्ष के रचे हुये काव्य में एक वाटिका का उल्लेख है जिसमें इसी चंद्रकांत के गमले बने हुये थे। उसमें लगे पौधों को सींचना नहीं पड़ता था। इसी प्रकार "आइने अकबरी" में लिखा है कि इस देश के लोगों को एक ऐसे

शीशे का ज्ञान था कि जिसे चन्द्रमा के सम्मुख रखने से जल उत्पन्न हो जाया करता था। पर आज इस चंद्रकांत को कोई नहीं जानता। यदि हम केवल पश्चिम के पीछे दौड़ने के स्थान में कुछ अपने गौरव का भी मान रक्खें तो इसकी खोज के लिये जिसके अस्तित्व में कोई शङ्का नहीं की जा सकती कुछ वैद्यों को लगा सकते हैं और यदि हम इसमें सफल हो जावें तो शरीर में आग फूँकने वाली सैकड़ों विदेशी औषधियों का दोष और लू से पीड़ित लोगों का कष्ट क्षण मात्र में निवारण किया जा सकता है और वर्षा न होने के समय हम इसकी सहायता से बहुत से वृक्षों को हरा-भरा रख सकते हैं। यह हमने केवल एक उदाहरण इस कारण उपस्थित किया है कि पाठक यह न समझें कि हम नवीन खोज के विरुद्ध हैं; किन्तु हम तो यह मानने वाले हैं कि विज्ञान का कहीं पर अंत नहीं है। नवीन से नवीन खोज की जा सकती है पर हमें सबसे पहले अपनी उस पूँजी को सुरक्षित रखने का उद्योग करना चाहिये जो हमारे पूर्वज हमें छोड़ गये हैं। जहाँ पर उसमें कोई कमी पावें और दूसरे स्थान पर उससे अधिक उपयोगी विद्या प्राप्त होती हो तो उसे अवश्य अपनाना चाहिये; पर अपनी पूँजी को न संभाल केवल दूसरे के कोष पर दृष्टि रखना बुद्धिमानी के विरुद्ध है।

2. चिकित्सकों की पाठ विधि ऐसी बनानी होगी कि प्रत्येक चिकित्सक प्रथम चरक, सुश्रुत इत्यादि प्राचीन ऋषि मुनि प्रणीत ग्रन्थ पढ़ने के पश्चात् आधुनिक एलोपैथी, होम्योपैथी और नेचरोपैथी इत्यादि के सिद्धांत एक ही कालिज़ में पढ़कर चिकित्सा शास्त्र का पंडित बन जावे। फिर ऐसे विद्वानों की सम्मति से ही देश के लिये इस समय के उपयुक्त चिकित्सा विधि का निर्माण किया जावे। केवल एलोपैथिक डाक्टरों से आयुर्वेद, होम्योपैथी और नेचरोपैथी इत्यादि के सम्बन्ध में सम्मति लेना ऐसा ही है जैसे किसी मुकदमे के एक पक्ष को जज का स्थान प्रदान किया जावे।

3. इसके पश्चात् ऐसे राजनियम बनाये जावें कि कोई भी व्यक्ति धन के लोभ में न तो झूठे प्रमाण-पत्र बेच सके न व्यवसाय रूप में चिकित्सा कर सके।

हमने इस विषय पर जहाँ तक मनन किया है, हम इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि इस समय हमारे देश के लिये सबसे श्रेष्ठ और आवश्यक आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा है। कुछ लोग आयुर्वेदिक और प्राकृतिक दो नामों के समन्वय से चौंकते हैं पर वास्तविकता यही है कि जो आयुर्वेद का ज्ञान नहीं रखता वह अधूरा प्राकृतिक चिकित्सक है और वह यदि पचास कठिन रोगियों को आरोग्य करके ख्याति प्राप्त करता है तो शेष पचास रोगियों को अपूर्व हानि भी पहुँचावेगा। इसी प्रकार जो अपने को केवल औषधि के भरोसे वैद्य या डाक्टर कहता है और प्रकृति के उन नियमों से अनभिज्ञ है जिनके सहारे कठिन ही नहीं कभी असाध्य कहे जाने वाले रोगी भी आरोग्य हो जाते हैं, वह वैद्य या डाक्टर नहीं किन्तु औषधियों और यमराज का एजेन्ट है। अतः सच्चा चिकित्सक वही है जो प्रकृति के सब गुणों और नियमों को जानता है, जिसमें औषधि भी है और वही आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा कर सकता है। आयुर्वेद का आधार पंचतत्व हैं जिनसे शरीर और समस्त प्रकृति बनी है, न कि केवल मनुष्य कृत औषधियाँ।

औषधि का स्थान

आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा औषधि प्रयोग का विरोध न करते हुये भी, औषधि प्रयोग को प्रोत्साहन नहीं देती। सिद्धान्त यह है कि जब शरीर से निकलने वाले मल शरीर से पूर्ण रूप में बाहर न निकल कर शरीर में स्थित वात, पित्त तथा कफ को विकृत कर देते हैं, तब सबसे सरल और प्रथम उपाय यह करना चाहिये कि भोजन बन्द करके शरीर की जीवनी शक्ति को शरीर की सफाई में लगा दें। भोजन बन्द करने से जीवनी शक्ति बढ़े हुये दोष को खाकर उसे सम अवस्था में लाने का यत्न करेगी।

दूसरा उपाय यह होना चाहिये कि शरीर में रुके हुये विकारों को वस्ती कर्म द्वारा बाहर निकाल दिया जावे। ऐसा करने से सौ में से पचास रोग तो बिना किसी अन्य उपचार के शान्त हो जावेंगे। पुराने, हठीले अथवा तीव्र घातक रोग हैज़ा इत्यादि में जहाँ अन्य प्राकृतिक साधनों से सहायता ली जाती है, वहाँ ऐसी औषधि का समय पर प्रयोग किया जाता है जो विकारों को निकालने में रुकावट न डाले। उदाहरण के लिये एक स्त्री को प्रदर (Leucorrhoea) है। आयुर्वेद में केला और मधु प्रदर की औषधि है। आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा में हम सबसे पहले रोगिणी को एक दो दिन का उपवास कराके जीवन-शक्ति को बढ़े हुये दोष पचाने का अवसर देंगे और और वस्ती कर्म द्वारा शरीर के विकारों को निकालेंगे तथा फिर 10-15 दिन शीघ्र पचने वाले फल संतरा, अनार, अमरूद इत्यादि खिलाकर और डूश तथा बाथ देकर रोगिणी के रक्त रज वीर्य की शुद्धि करेंगे। तब भोजन में अन्न के साथ एक दो केला और मधु देकर उसके शरीर और रजवीर्य को पुष्ट करेंगे। इस प्रकार रोगिणी सर्वदा के लिए स्वस्थय हो जावेगी। इसके विपरीत शुद्धि करने के पूर्व ही यदि केला और मधु का प्रयोग औषधि रूप में बता दिया जावे तो यद्यपि केला कोई विषैली औषधि नहीं है किन्तु भोजन का अंश है, फिर भी वह लाभ के स्थान में हानि करेगा और यदि इससे आगे बढ़कर हमने प्रदर की रोगिणी को को नैन, आइरन स्टकनीन की बनी औषधियाँ अथवा इलीट्रस कारीडयल इत्यादि पेटेन्ट दवायें देकर उसे पुष्ट बनाने का यत्न किया तो इसमें सफल होने पर भी हम रोगिणी के शरीर में विकारों को दबाकर इस अवस्था में कर देंगे कि शीघ्र या देर से उसको कोई भयानक क्षय रोग इत्यादि धर दबावेगा। बस यही अन्तर आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा और अन्य चिकित्सा विधियों में है। इसी को समझ कर हमें अपने राष्ट्र के और समस्त संसार के हित के लिए इस प्राकृतिक चिकित्सा का दत्त चित्त होकर प्रचार करना चाहिए।

रोगियों को स्वास्थ्य का संदेश

'यज्ञ-चिकित्सा' के आविष्कारक, सरकार द्वारा अनेकानेक बार पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त स्वर्गीय पूज्य डा० फुन्दनलाल जी अग्निहोत्री एम० डी०, डी० एस०, एम० आर० ए० एस० (लंदन) इत्यादि, मेडिकल आफ़िसर टी० बी० सेनेटोरियम की देश के विद्वानों तथा समाचार पत्रों द्वारा मुक्तकंठ और एक-स्वर से प्रशंसित पुस्तकें तथा कुछ दवायें।

हमारे प्रकाशन

(स्वर्गीय) डॉ. फुन्दनलाल अग्निहोत्री

एम.डी.,डी.एस.,एल.एम.आर.ए.एस.(लन्दन) द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें :

डॉ. साहब की उपलब्ध पुस्तकों की कागज़ी प्रति (हार्ड कॉपी) से डॉ धुरेन्द्र शास्त्री अग्निहोत्री ने सॉफ्ट कॉपी तैयार की है। यह सभी पुस्तकें वेबसाइट पर निशुल्क Free download के लिए उपलब्ध हैं।

यज्ञ चिकित्सा (क्षय रोग की प्राकृतिक अचूक चिकित्सा)

यह पुस्तक डॉ. फुन्दन लाल जी द्वारा 1940 के लगभग T.B. पर किए गये शोध कार्य पर आधारित है। यह पुस्तक 1949 में छपी थी। उस समय T.B. उतनी ही गम्भीर व्याधि थी जितनी 1960 के दशक में कैंसर थी। उनके इस शोध कार्य पर ब्रिटिश सरकार ने डॉक्टर साहब को पुरुस्कृत करने के साथ जबलपुर में टी. बी.सेनिटोरियम का अध्यक्ष भी नियुक्त किया। सेनिटोरियम में उनकी शोध आधारित चिकित्सा की सफलता का परिणाम 80% पाया गया जबकि शेष 20% भी वह रोगी थे जो सेनिटोरियम में जगह न होने के कारण आस पास किराये की जगह ले कर चिकित्सा करा रहे थे और उसका व्यय वहन न कर पाने के कारण बीच में ही चिकित्सा छोड़ कर चले गये थे।

उनकी चिकित्सा में गाय का दूध, घी, छाछ आदि पदार्थ भी उपयोग होते थे और इन पदार्थों की आपूर्ति के लिए सेनिटोरियम में ब्रिटिश सरकार से स्वीकृत एक गौशाला भी थी ताकि गायों और गौशाला की स्वच्छता और उचित भोजन से इन पदार्थों की अनुकूल गुणवत्ता बनी रहे।

आज़ादी के बाद भारतीय सरकार को सेनिटोरियम में गौशाला होने से भयंकर आपात्ति थी और वह इसे हटाने पर अडिग थी। उस समय के प. रवि शंकर शुक्ला, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद (यूनियन मिनिस्टर) डॉ राजेंद्र प्रसाद (संविधान सभा के अध्यक्ष, भारत के पहले राष्ट्रपति) आदि जैसे दिग्गज नेताओं को अज्ञात कारणों से यह बात समझने में नहीं आ सकी कि गाय, और गौ शाला की स्वच्छता और उसके भोजन आदि से उसके दूध की गुणवत्ता में भी कुछ फर्क आ सकता है और सारी की सारी सरकारी मशीनरी इस बात पर अडिग रही कि गौशाला हटा कर इन उत्पादों को आउटसोर्स किया जाये। डॉक्टर साहब ने इस बात पर समझौता करना उचित नहीं समझा और सेनिटोरियम के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे कर अपनी निजी प्रैक्टिस करने का निर्णय लिया और जबलपुर से स्थान परिवर्तन करके उत्तर प्रदेश के बरेली शहर में बापस आ गए और अनेक वर्षों तक अपनी निज़ी प्रैक्टिस की। 15 दिसम्बर 1962 , सायं 4 बजे 82 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ ।

देवयज्ञ

1941 में प्रकाशित इस पुस्तक में डॉक्टर साहब ने न केवल हवन यज्ञ की वैज्ञानिक विवेचना से उसके कृमि नाशक गुणों पर प्रकाश डाला है बल्कि यह गुण किस प्रकार और कैसे आते हैं, आदि सभी बातों की चर्चा करते हुए संक्रामक रोगों में यज्ञ की भूमिका और उसके महत्व, दैनिक यज्ञ से रोगों से वचाब आदि की भी चर्चा करके हुए यह भी बताया है कि किस रोग की हवन सामग्री में कौन कौन सी जड़ी बूटियां तथा अन्य पदार्थों का किस मात्रा में किस प्रकार से सम्मिश्रण किया जाना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न रोगों की हवं सामिग्री के नुस्खे और

ऋतुओं के अनुसार रोग रक्षक हवन सामग्री के नुस्खे इस पुस्तक की विशेषता हैं। साथ ही यह पुस्तक उन भ्रान्तियों को भी दूर करने में सक्षम है जो लकड़ी जलाने से संभावित हानि के विषय में फैलाई गई हैं और किस प्रकार से हवन करने से उन हानियों को लाभ में परिवर्तित किया जा सकता है। अर्थात हवन यज्ञ करने की सही और वैज्ञानिक और लाभकारी विधि जो धार्मिक रिवाजों पर आधारित न होकर पूर्णतया विज्ञान सम्मत बातों पर आधारित है।

आरोग्य शास्त्र

यह पुस्तक विक्रम संवत 2007 (वर्ष 1950) में छपी थी। पूज्य डॉक्टर साहब का मानना था कि वैद्य , डॉक्टर आदि की सही भूमिका उन बातों का प्रचार और प्रसारण होना चाहिए जिनको दैनिक जीवन में अपना कर हम कभी रोगी ही न हों। इस पुस्तक की पूरी की पूरी प्रष्ठभूमि इसी विचारधारा पर आधारित है। स्वस्थ जीवन या रोगयुक्त जीवन की बीजारोपण तो वाल्यावस्था में ही हो जाता है और जैसा कि हम सभी जानते हैं कि लगभग 12 वर्ष की आयु तक अन्य विषयों के साथ साथ स्वास्थ्य या रोग के बीजारोपण का दायित्व भी माता - पिता का होता है लेकिन उसके बाद जैसे जैसे किशोरावस्था में बालक आगे बढ़ता जाता है उसके स्वयं के विचार और धारणाएं धीरे धीरे अपना रूप लेने लगती हैं। इसीलिए डॉक्टर साहब ने इस पुस्तक का समर्पण भी नवयुवकों को किया है; जिससे वह स्वास्थ्य के मूलभूत पहलुओं को समझ कर अपना और अपने मित्रों, सम्बन्धियों आदि का भी जीवन सुखमय बना सकें। 1950 में छपी इस पुस्तक में स्वास्थ्य के आवश्यक विभिन्न पहलुओं के साथ साथ व्यायाम, प्राणायाम आदि का महत्व और विधि जैसे विषयों के साथ साथ भिभिन्न ऋतुओं में हमारी दिनचर्या में क्या और कैसे परिवर्तनों की आवश्यकता होती है जैसे विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक हर उस व्यक्ति के लिए अमृतकोष के समान है जो वास्तव में रोगमुक्त और दीर्घायु जीवन व्यतीत करना चाहता है।

डॉ. धुरेन्द्र शास्त्री अग्निहोत्री बी.एम.एस.,एम.डी.(ए.एम.),एम.डी.(नेचुरोपैथी), ए.आई.ए.सी.एच. (ग्रीस) द्वारा विचाराधीन पुस्तकें :

क्योंकि डॉ. धुरेन्द्र के पूज्य पिता डॉ. श्री फुन्दन लाल जी का देहांत उनकी किशोरावस्था में ही हो गया था जिस कारण उन्हें अपने पिता से चिकित्सा सम्बन्धी विशिष्ठ ज्ञान प्राप्त करने का अवसर तो नहीं मिल सका. तथापि उतने समय के सानिध्य से जितना कुछ भी समझ सके थे, उसके आधार पर उन्होंने होम्योपैथी में ज्ञान प्राप्त करने का निर्णय लिया और होम्योपैथी में बैचलर ऑफ़ मेडिसिन एंड सर्जरी (B.M.S.) की उपाधि प्राप्त की। जब वह इस पाठ्यक्रम के अंतिम बर्ष में थे, उनकी पूज्य माता को कैंसर हुआ और वह यह देख कर गहरा सदमा और आश्चर्य हुआ कि जिस चिकित्सा विधि को वह सर्वोपरि समझ रहे थे उसमें अत्यंत निपुण एवं अनुभवी ऐसे डॉक्टर जिनके पास लगभग 100 रोगी नित्य आया करते थे, उनके मार्गदर्शन में पूरी तन्मयता से चिकित्सा करने के बाद भी उनकी माता बच न सकीं। इस घटना ने उन्हें यह सोचने पर मजबूर किया कि कहीं न कहीं होम्योपैथी में कुछ कमी तो है और वह उसे ढूंढने में लग गये। उन्होंने पाया कि होम्योपैथी के भी प्राचीन ग्रंथों में गम्भीर रोगों की चिकित्सा में औषधियों के साथ अनेक उपसाधनों का भी जिक्र है जो नेचुरोपैथी पर आधारित थे। साथ ही उन्होंने अपने पूज्य पिताजी की उन पुस्तकों का भी दुबारा अध्ययन किया जिन्हें उन्होंने बचपन में आधी अधूरी समझ के साथ पढ़ा था। साथ ही उन्होंने अपने पूज्य पिताजी की एक ऐसी पुस्तक “आहार चिकित्सा” जिसका प्रकाशन नहीं हो सका था लेकिन उसकी हस्त लिखित प्रतिलिपि कुछ जीर्ण क्षीर्ण अवस्था में उपलब्ध थी, उसे भी पढ़ा। इस सब से उन्हें यह समझ में आया कि त्वरित (एक्यूट) बीमारियों में तो होम्योपैथी अपने आप में बहुत कारगर है लेकिन क्रोनिक और गंभीर रोगों के सफल, सम्पूर्ण और स्थायी उपचार के लिए उसके साथ साथ नेचुरोपैथी को भी अपनाना आवश्यक है और इस सबमें भोजन तो सर्वोपरि है जिसे ठीक किए बिना अच्छी से अच्छी दवा भी अपना काम नहीं कर

सकती। अतः इन विधियों को भी अपनी चिकित्सा में शामिल करने के लिए उन्होंने M.D.(A.M.) और M.D.(Nat.) की शिक्षा भी ली। साथ ही अपने होम्योपैथी के ज्ञान को और पुख्ता करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण पुरुस्कार the **Right Livelihood Award** (also known as the "Alternative Nobel Prize") के साथ साथ अन्य कई पुरूस्कार प्राप्त Shree George Vithoulkas ग्रीस द्वारा प्रस्थापित इंटरनेशनल एकेडेमी ऑफ़ क्लासिकल होम्योपैथी से होम्योपैथी के एडवांस शिक्षा भी प्राप्त की।

उन्होंने सभी गम्भीर रोगों की अपनी चिकित्सा पद्धति में होम्योपैथी के साथ, घर पर ही की जा सकने योग्य नेचुरोपैथी, भोजन सुधार , योग, एक्यूप्रेशर और हेर्बलिस्म का समन्वय करके गम्भीर रोगों से जूझ रहे अनेक रोगियों का सफल उपचार किया। यद्दपि बहुत देर से, लेकिन अब 79 वर्ष की आयु में परमपिता परमात्मा ने उनके मन में विचार उत्पन्न किया कि इस समन्वित चिकित्सा विधि द्वारा गम्भीर रोगों की सफल चिकित्सा के विस्तृत विवरण को पुस्तकों का रूप दे दिया जाये जिससे उनके जीवनोपरान्त भी यह ज्ञान इच्छुक चिकित्सकों और रोगियों का मार्गदर्शन करता रहे ।

हांलाकि यह लेखन कार्य अभी अपनी विल्कुल प्रारम्भिक अवस्था में है, फिर भी यहां इसकी चर्चा केवल इस उद्देश्य से करना प्रासंगिक लगा ताकि यह डॉ. धुरेन्द्र का संकल्प बन कर उन्हें इस कार्य को जल्द से जल्द अपने अंजाम तक पहूंचाने की प्रेरणा देता रहे।

क्योंकि स्वस्थ बने रहने और रोगोपचार दोनों में ही उचित आहार का महत्वपूर्ण योगदान है और भोजन सुधार के बिना किसी भी चिकित्सा विधि से गम्भीर रोग कदापि ठीक नहीं किए जा सकते इसलिए हम सर्वप्रथम इस विषय पर पुस्तक उपलब्ध करने का विचार रखते हैं। उसके बाद दूसरे आवश्यक साधन योग, प्राणायाम आदि पर और उसके बाद ओबेसिटी (मोटापा) जो अपने आप में एक गम्भीर समस्या होने के साथ अनेक दूसरी गम्भीर बीमारियों का जन्मदाता

भी है। उसके बाद एक एक करके क्रमशः दूसरी गम्भीर बीमारियों के सफल और स्थायी उपचार से सम्बंधित। प्रभु हमें इस कार्य की शीघ्र पूर्ण करने की शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करें ऐसी प्रार्थना है।

विचाराधीन पुस्तकों की सूची

1. भोजन और स्वास्थ्य : (स्वास्थ्य और उपचार में भोजन का महत्व)
2. व्यापक योग
3. मोटापा कारण और निवारण
4. कैंसर कारण और निवारण
5. हृदय रोग कारण और निवारण
6. डायबिटीज कारण और निवारण
7. वात रोग कारण और निवारण
8. श्वसन रोग कारण और निवारण
9. पाचन रोग कारण और निवारण
10. यकृत के रोग कारण और निवारण
11. किडनी के रोग कारण और निवारण
12. महिलाओं के रोग कारण और निवारण

हमारे हर्बल उत्पाद

सामान्यतया हर्बलिज्म का मतलब आयुर्वेदिक समझ लिया जाता है जबकि दोनों में थोड़ा अन्तर है। जड़ी बूटियों का उनके प्राकृतिक रूप में उपयोग हर्बलिज्म में आता है जब कि आयुर्वेदिक दवाओं में जड़ी बूटियों को कच्चे मॉल की तरह उपयोग करके उनका प्रसंस्करण किया जाता है। जड़ी बूटियों के प्राकृतिक रूप में उनका रस, छायादार धूप में सुखा लेना, उनका पाउडर ही सम्मिलित है जो बिना

किसी प्रसंस्करण के किया जाता है. उदाहरण के रूप में हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक सब्जियों, सलाद, उबली हुई सब्ज़ी, मसाले दार सब्ज़ी और पनीर की सब्ज़ी, या दूध और मावा, दूध से बनी मिठाइयां आदि में जो अंतर है कुछ वैसा ही अंतर हर्बलिज्म और आयुर्वेदिक दवाओं में है. जिस प्रकार किसी रोग स्थिति में कुछ सब्जियां, फल आदि लाभप्रद और कुछ हानिकारक हो सकती हैं; उसी तरह रोग अवस्था में कुछ जड़ी बूटियां उस रोग के उपचार में अत्यंत सहायक होती हैं और उनके उपयोग में उन व्यक्तियों को भी कोई हानि नहीं होती है जिन्हें आयुर्वेदिक दवाओं से असुविधा होती है।

स्वास्थ्य भण्डार के सभी उत्पात अत्यंत विशिष्ट हैं और केवल हमारे पास ही उपलब्ध हैं। हमने जानबूझ कर इनके व्यापक मार्केटिंग का प्रयास नहीं किया है क्योंकि ऐसा करने से:

1. इनकी कीमत कई गुना बढ़ जाएगी। और
2. इसके लिए हमें बाज़ार में अपनी स्थिति मज़बूत बनाने के लिए व्यावसायिक रणनीतियों को भी अपनाना पड़ेगा, जिससे हमारे उत्पादों की प्रभावशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

हमारे सभी उत्पाद बिल्कुल प्राकृतिक हैं और इनमें किसी भी प्रकार के प्रिजर्वेटिव, एडिटिव, रंग, गंध आदि का उपयोग नहीं किया गया है।

हमारे हर्बल उत्पादों की सूची

A. सामान्य चूर्ण (पाउडर)

SR. NO.	नाम	कोड	उपयोग
1	**अश्वगंधा**	101	किसी भी प्रकार की व्यग्रता, उत्कंठा , तनाव आदि में राहत देकर आरामदायक, प्राकृतिक नींद देने और

			संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली को सक्षम बनाने में मददगार।
2	**आमला**	102	विटामिन सी का अदभुत शक्ति श्रोत, एक शक्ति शाली रोग प्रतिरोधक क्षमता और श्वेत रक्त कोशिकाओं को बढ़ाने वाला, एंटी ऑक्सीडेंट्स, फाइटोकेमिकल्स से भरपूर, ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस और सूजन को कम करने में सक्षम जो कई गम्भीर बीमारियों का कारण बनती है। शरीर से प्राकृतिक रूप से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने और मस्तिष्क की कार्य क्षमता बढ़ाने में समर्थ।
3	**अर्जुन**	103	एक अच्छा एंटीऑक्सीडेंट, टैनिंस और ग्लाइकोसाइड्स युक्त, फ्री रेडिकल्स से लड़ने में सक्षम, हार्ट की मांसपेशियों और रक्त वाहिकाओं का रक्षक, धमनियों को चौड़ा करने और धमनियों में जमे द्रव्यों को गलाने, पिघलाने में सक्षम।
4	**ब्राहमी**	104	एक शक्ति शाली एंटी ऑक्सीडेंट्स, सूजन कम करने और मस्तिष्क की कार्य क्षमता को बढ़ाने में सक्षम। इसमें मौजूद बाकोसाइड्स मस्तिष्क की कोशिकाओं में समन्वय बनाने, याददाश्त, ध्यान, और नए ज्ञान को लम्बे समय तक याद रखने की क्षमता को बढ़ाने में सक्षम। कोर्टिसोल को संतुलित करके शारीरिक और भावनात्मक तनाव को कम करने में सक्षम। इसका नियमित उपयोग शांति और संतुलन को बढ़ा कर एकाग्रता, मानसिक सहन शक्ति, और सूचना प्रसंस्करण गति में सुधार करता है जिससे बच्चों

			और व्यस्कों में ए डी एच डी के लक्षणों को प्रतिबंधित करने में मदद करता है। इसके शांत और शामक गुण मानसिक बक बक को कम करने और बेहतर नींद की गुणवत्ता को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।
5	**हरीतकी**	105	इम्यूनिटी वर्धक, पाचक रसों का उत्पादन और अवशोषण बढ़ाकर पाचन सुधार में सक्षम। इसमें मौजूद टैनिंस और फ्लेवोनॉयड्स शरीर से विषहरण करके उसकी सफाई में सहायक। लिवर, खून और गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल ट्रैक्ट से टॉक्सिन और व्यर्थ पदार्थों को बाहर निकाल कर शरीर की प्राकृतिक सफाई में सहायक।
6	**पिप्पली**	106	इम्यूनिटी और चयापचय बढ़ाने, टॉक्सिंस निकालने, पाचन और अवशोषण में सहायक। वायु मार्ग से बलगम को साफ़ करने में मदद करता है और अस्थमा ब्रोंकाइटिस आदि जैसी स्थितियों के प्रबंधन में सहायक।
7	**पुनर्नवा**	107	शरीर को उत्कृष्ट रूप से फिर से जीवंत करता है। वात, पित्त और विशेष रूप से कफ़ को शांत करता है। पाचन तंत्र को उत्तेजित करता है। यकृत, गुर्दे, हृदय और जोड़ों के लिए एक प्रसिद्ध टॉनिक। फेफड़ों और श्वसन पथ में अतिरिक्त कफ़ को भी पिघलाने में सक्षम।
8	**सफ़ेद मुसली**	108	एक भारतीय वियाग्रा, एक प्राकृतिक प्रजनन समाधान, स्वस्थ शुक्राणुओं की मात्रा बढ़ाने में सक्षम,

			हार्मोनल संतुलन के सुधार में सक्षम, थायराइड और अनियमित मासिक धर्म की समस्याओं के नियंत्रण में सहायक, रक्त शर्करा के नियंत्रण और इंसुलिन संवेदनशीलता के सुधार में सहायक, साथ ही गठिया, चिंता और अवसाद में भी सहायक।
9	**शतावरी**	109	सैपोनिन और, रेसमोफुरन से समृद्ध, एंटीऑक्सिडेंट, सूजन निरोधी, मूत्रवर्धक, क्षमताओं से भरपूर; प्रतिरक्षा को बढ़ावा देने, निर्जलीकरण और इलेक्ट्रोलाइट असंतुलन का प्रबंधन करने में सक्षम; गैस्ट्रिक अल्सर, गुर्दे की पथरी के इलाज़ में अत्यंत सहायक, कोलेजन टूटने को रोकने, इंसुलिन उत्पादन में सुधार करने में भी सक्षम।
10	**शंखपुष्पी**	110	संज्ञानात्मक बूस्टर - स्मृति, फोकस और समस्या को सुलझाने के कौशल को बढ़ाने में सक्षम। अवसादग्रस्तता-विरोधी, चिंता-विरोधी, शांति और मानसिक स्पष्टता प्रदान करने में सक्षम। न्यूरोप्रोटेक्टिव गुणों के साथ एक शक्तिशाली मस्तिष्क टॉनिक के रूप में कार्य करने में सक्षम।
11	**सितोपलादि**	111	श्वसन संबंधी विकारों का एक प्राचीन अच्छी तरह से सिद्ध समाधान - ब्रोंकाइटिस, अस्थमा, सीओपीडी, तपेदिक, खांसी, साइनासाइटिस, एलर्जिक राइनाइटिस, हथेलियों और पैरों में जलन आदि में प्राचीन काल से उपयोग में। इसके प्रमुख गुणों में कफ निस्सारक, सूजन निरोधी, और प्रतिरक्षा - संशोधक होना शामिल है। यह फेफड़ों और वायुमार्ग

			से कफ और बलगम को ढीला करने और बाहर निकालने में मदद करने के लिए एक कफ निस्सारक के रूप में कार्य करने और सांस लेना आसान करने के लिए वर्षों से जाना जाता है।
12	**त्रिफ़ला 1:2:4**	112	इसमें विटामिन सी, फ्लेवोनोइड्स, पॉलीफेनोल्स, टैनिन, सैपोनिन और अन्य शक्तिशाली पौधीय यौगिक होते हैं। एंटीऑक्सिडेंट, डिटॉक्सिफायर, रेडियोप्रोटेक्टिव, केमोप्रोटेक्टिव में उच्च, आहार, प्रतिरक्षा, चयापचय, पाचन को बढ़ावा देने, हृदय रोग, कुछ कैंसर, मधुमेह और समय से पहले उम्र बढ़ने के जोखिम को कम करने में सक्षम।
13	**त्रिफ़ला 1:2:4 (केवल छोटे टुकड़ों में तोड़ा हुआ)**	113	इसमें विटामिन सी, फ्लेवोनोइड्स, पॉलीफेनोल्स, टैनिन, सैपोनिन और अन्य शक्तिशाली पौधीय यौगिक होते हैं। एंटीऑक्सिडेंट, डिटॉक्सिफायर, रेडियोप्रोटेक्टिव, केमोप्रोटेक्टिव में उच्च, आहार, प्रतिरक्षा, चयापचय, पाचन को बढ़ावा देने, हृदय रोग, कुछ कैंसर, मधुमेह और समय से पहले उम्र बढ़ने के जोखिम को कम करने में सक्षम। आंखों की दृष्टि रक्षा, कई रोग और दृष्टी वर्धन में सक्षम। साबुत होने के कारण इसे भिगोए हुए पानी से आँखें धोने के लिए भी उपयुक्त।

B. हमारी विशिष्ट उपयोगों की हर्बल चाय

1	**हर्बल टी - रेगुलर**	201	सीटीसी या ग्रीन टी का एक स्वस्थ विकल्प। एंटीऑक्सिडेंट, और एडाप्टोजेन से समृद्ध (एडाप्टोजेन्स अर्थात् ऐसे गैर-विषाक्त - पौधे, जड़ी-बूटियाँ जो शरीर को शारीरिक, मानसिक और रासायनिक तनावों का बेहतर ढंग से सामना करने में मदद करते हैं, शरीर को एक स्थिर अवस्था में लाने में मदद करते हैं, सहनशक्ति, ध्यान और मानसिक कार्यक्षमता को बेहतर बनाने में सहायक होते हैं। प्रतिरक्षा और चयापचय को बढ़ावा देते हैं।
2	**हर्बल टी - स्रोतास**	202	धमनियों के अवरोधों को दूर करने, बी पी और हृदय की अन्य समस्याओं को ठीक करने में मदद करती है। सीटीसी और/या ग्रीन टी के बदले नियमित रूप से सेवन करने पर हृदय की समस्याओं और कैंसर के लिए एक निवारक के रूप में भी कार्य करती है। हृदय की समस्याओं में सर्वोत्तम परिणामों के लिए हृदयामृत के साथ उपयोग करें। इस प्रकार की समस्याओं में आहार और जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण उपचार के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
3	**हर्बल टी - अंग स्थिरा**	203	रुमेटिक रोगों, जोड़ों के दर्द, गठिया, और अन्य सभी वात रोगों के उपचार में सहायक। इस प्रकार की समस्याओं में आहार और जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण उपचार के लिए हमारी वेबसाइट देखें।

4	**हर्बल टी - प्राण**	204	अस्थमा, सीओपीडी, क्रोनिक ब्रोंकाइटिस आदि पुरानी श्वसन समस्याओं के उपचार में सहायक। इस प्रकार की समस्याओं में आहार और जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण उपचार के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
5	**हर्बल टी - नियंत्रा**	205	मधुमेह के उपचार में सहायक, इसे अपने नियमित सीटीसी या ग्रीन टी के विकल्प के रूप में उपयोग करें। मधुमेह में आहार और जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण निवारण के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
6	**हर्बल टी - परिजात**	206	एक प्राकृतिक एनाल्जेसिक, सूजन निरोधी यौगिकों, फ्लेवोनोइड्स और ग्लाइकोसाइड से भरपूर। गठिया आदि जैसी स्थितियों के उपचार में उल्लेखनीय मदद मिलती है। शरीर के पुराने दर्द को कम करती है, रक्त परिसंचरण को बढ़ाकर सूजन और दर्द को कम करती है।
7	**हर्बल टी - आम पत्र**	207	फ्लेवोनोइड्स और एंटीऑक्सिडेंट, विटामिन सी, पॉलीफेनोल्स, मैंगिफेरिन से भरपूर। रक्त शर्करा, रक्तचाप, एसिड रिफ्लेक्स, गैस्ट्रिक अल्सर, तनाव और चिंता को नियंत्रित करने में मदद करती है। यकृत और गुर्दे के कार्य का भी समर्थन करती है।
8	**हर्बल टी - अमरूद पत्र**	208	एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटी-माइक्रोबियल , एंटीऑक्सिडेंट, विटामिन ए और सी से भरपूर पाचन स्वास्थ्य का समर्थन करती है। बी पी और कोलेस्ट्रॉल, एल डी

			एल को नियंत्रित करती है।, इंसुलिन संवेदनशीलता में सुधार करती है। मुक्त कणों से लड़ने में भी सक्षम।
9	**हर्बल टी - शीतहारी**	209	खांसी और जुकाम से तेजी से राहत दिलाने में मदद करती है। खांसी और सर्दी के कारण होने वाली बेचैनी, संताप और असहजता से शीघ्र राहत प्रदान करती है। ज्यादा अच्छे परिणामों के लिए इसके साथ साथ शीतहारी चूर्ण का भी सेवन करें।

C. हमारे प्राकृतिक मधुरक (स्वीटनर्स)

1	**रॉ शहद**	301	हिमालय की बहुत ऊंचाई वाली घाटियों से इकठ्ठा किया गया, सरकारी मान्यता प्राप्त लैब में जांचा, परखा, कच्चा जैविक प्राकृतिक 100% शुद्ध शहद।
2	**स्टीविया की सूखी पत्तियां**	302	शून्य कैलोरी, शून्य कार्बोहाइड्रेट और खनिजों के एक बंडल से युक्त, रिफाइंड चीनी का बिल्कुल हानिरहित और स्वस्थ विकल्प। सूरज की छायादार धूप में सुखाई गई स्टीविया की सूखी पत्तियां। बिल्कुल असंसाधित और किसी योजक या परिरक्षक के प्रयोग के बिना। आयरन, प्रोटीन, फाइबर, पोटैशियम, विटामिन ए और विटामिन सी जैसे पोषक तत्वों से भरपूर। रक्तचाप को नियंत्रित करने और हृदय रोगों के जोखिम को कम करने में, रक्त शर्करा के अवशोषण को कम करने में, और वजन घटाने में सहायक। अधिक मीठा खाने की इच्छा को कम करने में भी सहायक।

3	**स्टीविया का पाउडर**	303	ऊपर वर्णित सूरज की छायादार धूप में सुखाई गई स्टीविया की सूखी पत्तियों का पाउडर। बिल्कुल असंसाधित और किसी योजक या परिरक्षक के प्रयोग के बिना। उपरोक्त सभी गुणों से युक्त, केवल उपयोग में आसान कर देने के लिए पीसी गई स्टीविया की पत्तियों का पाउडर।

D. हमारे अपने फॉर्मूलेशन्स (प्राकृतिक जड़ी बूटियों का मिश्रण)

OUR PROPRIETARY FORMULATIONS

1	**शीतहारी चूर्ण**	401	सर्दी, खांसी, जुकाम आदि में तेज़ी से राहत दिलाने में सक्षम। इस प्रकार की समस्याओं से होने वाली बेचैनी, आकुलता, व्याकुलता, व्यग्रता आदि से शीघ्र राहत देने में अत्यन्त लाभकारी। सर्वोत्तम परिणामों के लिए सौम्य शीतहारी चाय के साथ उपयोग करें।
2.	**हृदयामृत**	402	धमनियों के ब्लाकेज आदि सहित हृदय के समस्त रोगों के लिए एक आदर्श हर्बल उत्पाद। सर्वोत्तम परिणामों के लिए हर्बल टी - स्रोतास के साथ उपयोग करें। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
3	**हृदय - वासासान्तक**	403	कोलेस्ट्रॉल और ट्राइग्लिसराइड्स को कम करने के लिए एक आदर्श और प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
4	**संधि - वातान्तक**	404	जोड़ों के दर्द, आर्थराइटिस, गठिया, और सभी आमवाती समस्याओं के लिए एक आदर्श और प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, जीवन शैली सम्बन्धी

			दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
5	**दमनान्तक चूर्ण**	405	पुरानी श्वसन समस्याओं जैसे अस्थमा, सी ओ पी डी, क्रोनिक ब्रोंकाइटिस आदि के लिए एक प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
6	**मधुहारी**	406	मधुमेह (डायबिटीज) के लिए एक प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
7	**LIV - SB**	407	लिवर को डिटॉक्सीफाई करने और फैटी लीवर, पीलिया, हेपेटाइटिस, जलोदर, सिरोसिस आदि जैसी लिवर संबंधित समस्याओं को ठीक करने के लिए एक प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, और जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
8	**वात-सोनीतान्तक**	408	यूरिक एसिड को कम करने के लिए एक प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।

9	**रक्तचापान्तक**	409	उच्च रक्तचाप को कम करने के लिए एक प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित आहार, जीवन शैली सम्बन्धी दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
10	**मूत्रघटान्तक**	410	मूत्र ट्रैक में संक्रमण (UTI) के लिए एक प्रभावी हर्बल उत्पाद। इस प्रकार के रोगों में वांच्छित दिशानिर्देशों और सम्पूर्ण चिकित्सा के लिए हमारी वेबसाइट देखें।
11	**मेध्या**	411	मस्तिष्क की कार्य क्षमता को बढ़ाने, मानसिक सहन शक्ति, शांति और संतुलन बनाने, स्मृति, फोकस और समस्या सुलझाने के कौशल को बढ़ाने, एकाग्रता, ध्यान, याददाश्त और नए ज्ञान को लम्बे समय तक याद रखने की क्षमता को बढ़ाने में अद्वितीय। कोर्टिसोल को संतुलित करके शारीरिक और भावनात्मक तनाव को कम करने में सक्षम। विद्यार्थियों, मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करने वालों और तनाव पूर्ण परिस्थितियों में कार्य करने वालों के लिए अत्यन्त लाभकारी और अवश्य सेवनीय शक्तिशाली मस्तिष्क टॉनिक।
12	**पाचक रसायन**	412	पाचन तंत्र में प्राकृतिक रूप से सुधार करता है।
13	**टेस्टोजाइम**	413	पेट की समस्याओं जैसे अपच, मंदाग्नि, एसिडिटी, गैस, भूख या स्वाद की कमी, अफरा, आदि को ठीक करने के लिए एक प्रभावी उत्पाद।

14	**नितान्त**	414	हर तरह के कब्ज जैसी समस्याओं का प्राकृतिक समाधान।
15	**निशान्त**	415	दस्त, पेचिश, आई बी एस, कोलाइटिस आदि का प्रभावी समाधान।

E. आसवन प्रक्रिया से बनाए गए कुछ प्राचीन प्राकृतिक अर्क :

1	**तुलसी अर्क**	501	फाइटोकेमिकल्स, एंटीऑक्सिडेंट और आवश्यक तेलों से समृद्ध। एक प्राकृतिक प्रतिरक्षा बूस्टर, सामान्य सर्दी, खांसी और बुखार को दूर रखता है। अस्थमा, सी ओ पी डी और ब्रोंकाइटिस जैसे सभी श्वसन विकारों में सबसे उपयोगी। अल्सर, कब्ज आदि में भी लाभकारी।
2	**पुदीना अर्क**	502	पाचन सम्बन्धी समस्याओं, अपच, पेट में बेचैनी, भारीपन, पेट फूलना, मतली, उल्टी, पेट दर्द, सूजन आदि में उपयोगी। पेट के स्तर पर पित्त और वात को संतुलित करता है।
3	**नीम अर्क**	503	रोगाणुरोधी, सूजनरोधी और एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर। एक प्रतिरक्षा बूस्टर, रक्त शोधक, संक्रमण, सूजन और कैंसर कोशिकाओं से लड़ने में सक्षम। श्वसन, पाचन, दंत और त्वचा रोगों में भी उपयोगी।

F. हमारे नेत्र रक्षा सम्बन्धी उत्पाद

1	**गुलाब जल आई ड्रॉप्स**	601	आसवन प्रक्रिया के साथ बनाया गया 100% शुद्ध गुलाब जल। कई नेत्र रोगों का एक प्रभावी समाधान।
2	**नेत्रामृत**	602	इसके नियमित उपयोग से चश्मा दूर रहेगा। आंखों के कई रोगों को ठीक करता है। कंप्यूटर, मोबाइल जैसी स्क्रीन पर अधिक काम करने वालों के लिए वरदान स्वरुप। आंखों की रोशनी और आंखों की बीमारियों के लिए प्रभावी होने के कारण, कुछ सेकंड के लिए आंखों में थोड़ी उत्तेजना होती है जो कुछ सैकड़ों में ही धीरे धीरे ठीक हो जाती है।
3.	**मोतियाबिंद नाशक** Cataract cure	603	कच्चे मोतियाबिंद को बिना सर्जरी के ही गला कर समाप्त करने में सक्षम, लेकिन मोतियाबिंद पक जाने पर कोई भी लाभ नहीं कर सकता। एक 100 % धर्मार्थ उत्पाद। हमारे क्लीनिक से कोई भी व्यक्ति निःशुल्क प्राप्त कर सकता है। दूर दराज़ के लोग भी केवल कोरियर शुल्क दे कर निसंकोच ले सकते हैं।

G. हमारे विशिष्ट उपयोग के तेल

1.	**न्यूरोशांतक**	701	हर तरह के जोड़ों के दर्द, स्पोर्ट्स इंजरी, मांसपेशियों के दर्द आदि में तुरन्त आराम देने में सक्षम। यह तुरन्त आराम देने के लिए एक दर्द निवारक (पेन किलर) के रूप में काम करता है।

2.	**रुहमा ऑयल**	702	सभी प्रकार के जोड़ों के दर्द, अर्थराइटिस, गठिया, स्पोर्ट्स इंजरी आदि सभी वात रोगों के दीर्घकालिक उपचार में सहायक। धीरे धीरे लगातार स्थाई आराम देने में सक्षम।
3.	**पक्षाघातान्तक ऑयल**	703	पक्षाघात (पैरालिसिस) के उपचार में और उसके स्थाई उपचार में अत्यंत सहायक।
4.	**लौंग का तेल**		दांत दर्द, मसूड़ों की समस्याओं, जोड़ या मांसपेशियों के दर्द और फंगल इन्फेक्शन आदि में तेज़ी से राहत देने में सक्षम।
5.	**नीम का तेल**	704	दांतों की देखभाल के लिए अद्वितीय रूप से अत्यंत उपयोगी। दांतों की सड़न और मसूड़ों की बीमारियों को रोकने में अद्वितीय। नियमित रूप से अपने टूथ ब्रश पर थोड़ा सा टूथ पेस्ट फैला कर उसके ऊपर दो बूंद नीम का तेल डाल कर ब्रश करने से कैबिटी सहित दांतों के समस्त रोगों से लम्बे समय तक सुरक्षित रखने में अत्यधिक सक्षम।

H. हमारे ट्रॉमा केयर उत्पाद

1.	**दाह - हरु**	801	जल जाने की स्थिति में उपयोगी। जली हुई त्वचा को जल्दी ठीक करने में उपयोगी। जल जाने पर ज़ल्दी ही लगा लेने पर छाले न पड़ने ने में भी सक्षम।

I. हमारे सिर और बाल सम्बन्धी उत्पाद

1	**रूक्षतामृत**	901	सिर की रूसी, बाल झड़ना, कैनाइटिस (समय से पहले बालों का सफ़ेद होना) आदि में अत्यन्त उपयोगी। किसी भी प्रकार के केमीकल से रहित एक बिल्कुल प्राकृतिक क्लींजर और कंडीशनर, बालों का स्वास्थ्य रक्षक, रूसी, बालों का झड़ना और पहले ही सफैद होने आदि का प्रभावी उपचारक।
2.	**केश तरंग**	902	बालों का प्राकृतिक रक्षक, बालों को लंबा और काला करने और लम्बे समय तक उनके स्वास्थ्य की रक्षा करने में पूर्णतया सक्षम। चूर्ण के रूप में एक प्रकार का प्रभावी सारकृत (कंसंट्रेट) शैम्पू और कंडीशनर जिसे प्रयोग के पहले कुछ घंटों तक पानी में भिगो कर तरल (लिक्विड) रूप में उपयोग करना होता है।

J. हमारे सामान्य स्वास्थ्य रक्षक उत्पाद

1.	**शिलाजीत**	1101	फुल्विक एसिड और 84 आवश्यक खनिजों से समृद्ध एक प्राकृतिक स्वास्थ्य पूरक। स्वाभाविक रूप से ऊर्जा और सहनशक्ति को बढ़ाता है, संज्ञानात्मक कार्य में सुधार करता है, प्रतिरक्षा को मजबूत करता है, हृदय स्वास्थ्य का समर्थन करता है, हार्मोन को संतुलित करता है, प्रजनन क्षमता में सुधार करता है, हड्डियों को मजबूत करता है और नींद की गुणवत्ता में सुधार करता है।

2.	**तुलसी के पत्ते**	1102	फाइटोकेमिकल्स, एंटीऑक्सिडेंट और आवश्यक तेलों से समृद्ध। प्राकृतिक छायादार धूप में सुखाए गए तुलसी के पत्ते। प्रतिरक्षा प्रणाली, तंत्रिका तंत्र, हृदय, श्वसन संबंधी समस्याओं, खांसी, जुकाम, बुखार, संक्रमण आदि में उपयोगी।
3.	**नीम कैप्सूल**	1103	छायादार धूप में सुखाए गए नीम के पत्तों का चूर्ण कैप्सूल में। शक्तिशाली सूजनरोधी, रोगाणुरोधी और एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर। मलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया, टाइफाइड और वायरल बुखार जिसमें पोलियोवायरस, एचआईवी, कॉक्ससैकी बी ग्रुप वायरस आदि शामिल हैं, के इलाज में लाभकारी। हृदय, रक्त वाहिकाओं, यकृत, गुर्दे, गैस्ट्रिक अल्सर, मधुमेह, आंतों के कीड़े, कुष्ठ रोग, यूटीआई, मसूड़ों के रोग, नेत्र विकार, अस्थमा, सीओपीडी, कम शुक्राणुओं की संख्या, बवासीर और यहां तक कि कैंसर जैसी समस्याओं में भी लाभकारी।
4.	**हर्बल टूथ पेस्ट**	1104	सामान्यतया बाजार में उपलब्ध ब्रांडेड हर्बल टूथ पेस्ट में भी केवल 10-15% जड़ी-बूटियाँ और शेष रसायन होते हैं; जबकि इस पेस्ट में 67% जड़ी-बूटियाँ होती हैं, उनमें से कुछ उपयोग किए जाने वाले रसायनों के प्रभाव को काफी कम करने में भी सक्षम हैं। टूथ ब्रश पर थोड़ा सा पेस्ट फैलाएं, हमारे नीम के तेल की दो बूंदें डालें। कैविटी और दांत और मसूड़ों की अन्य समस्याओं को दूर रखने के लिए नियमित रूप से उपयोग करें।

5.	**हवन धूप**	1105	सिंथेटिक सुगंध मुक्त, लेकिन उत्तम क्वालिटी की शुद्‌ध जड़ी बूटियों की प्राकृतिक सुगन्ध से भरपूर शुद्‌ध धूप। व्यस्त जीवन शैली के कारण दैनिक हवन करने जैसी संस्कृति के पालन की असमर्थता का बिल्कुल सरल विकल्प। रोजाना बस एक धूप जलाएं और पूजा के साथ साथ कम से कम अपने घर की हवा और पर्यावरण को शुद्‌ध करके प्रदूषण को दूर करें। बदले में बैक्टीरिया, वायरस आदि को मार कर अनेक बीमारियों से बचें। इसमें मौजूद जड़ी बूटियां अनेक प्रकार के बैक्टीरिया, वायरस जैसे कीटाणुओं का नाश करने और उनके संक्रमण के कारण होने वाली बीमारियों से बचाने में अत्यन्त सक्षम हैं। साथ ही फेफड़े, श्वसन तंत्र सम्बन्धी अनेक बीमारियों के उपचार में सहायक भी हैं।
6	**हवन सामग्री**		सभी रोगों के उपचार हेतु रोगनुसार तथा स्वस्थ्य अवस्था में किए जाने वाले यज्ञ की ऋतुओं के अनुसार कम से कम 5 किलो के आर्डर पर उपलब्ध